दवा

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

दवा

लेखक

डा. पुनत्तिल कुंजब्दुल्ला

अनुवाद

डा. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

भूमिका

जाने कितनी बार मुझे यह अहसास हुआ है कि रचनाकार पुनत्तिल कुंजब्दुल्ला के मानस में एक अधूरे इतिहास का रथनाद घुमड़ता-गूंजता रहा है। 'स्मारक शिलकल' (स्मारक शिलाएं) के रचनाकाल (1978) में एक पुरानी मस्जिद और मस्जिद की पृष्ठभूमि में जिंदगी का पूरा मजा लूटते और आखिर दर्दनाक मौत का शिकार होते हुए व्यक्तियों के जीवन की कड़वी-मीठी गाथाएं इस इतिहास-संकल्पना को आधार-क्षेत्र दे गयीं। लंपट, हंसोड़ एवं सबको मदद करने वाला पूक्कोया तंगल जिंदगी और मौत, दोनों में बहादुर साबित हुआ। उस अमर ग्राम-नेता की आश्चर्यजनक जीवन-गाथाएं 'स्मारक शिलकल' की आत्मा हैं। कोमप्पन वैद्यर ने चौदहवीं की चांदनी रात में गला फाड़-फाड़कर निरंतर रोते, एक कोमल शिशु के लिए एक छोटे आइने में चंदामामा को बांध दिया था। पूक्कोया तंगल का दुलारा घोड़ा गुलिस्तान की दास्तानों के घोड़े की भांति अपने मालिक के दिल की बात समझकर गजब की तेजी से दौड़ता था। पूक्कुंजि की बीवी ! वह गोसाईं पहाड़ी की घाटी में, निर्जन सागर-तट पर एक स्वर्ण-मत्स्य की तरह निर्जीव-सी समुंदर की लहरों द्वारा लायी गयी थी। इन सभी पात्रों ने इस आंचलिक इतिहास को गरिमा दी है। एक विशेष सामाजिक प्रसंग में, उत्तर मलाबार के एक देहात की घटनाओं का सिलसिला ही 'स्मारक शिलकल' का स्रोत है।

कुंजब्दुल्ला ने इसके पूर्व भी ऐसी कहानियों की रचना की है जिनमें अस्पताल के दहशत-भरे माहौल में, डाक्टरों व नर्सों की दुनिया के ताने-बाने हास्य के छींटों से बुने गये हैं। यह विषय मलयालम साहित्य में कृतित्व की व्यापक संभावनाओं से भरा है। कुंजब्दुल्ला इस विषय-वस्तु को आधार बनाने वाले इने-गिने लेखकों में अन्यतम हैं। 'दवा' तक पहुंचते-पहुंचते उनका कैनवास और विशाल हो जाता है; कथापात्र त्रिविम होते जाते हैं। समस्याओं में लेखक की पैठ और गहरी हो जाती है। 'दवा' की रचना कुंजब्दुल्ला के लिए एक तरह से अपनी आत्मा की खोज है। वे इस उपन्यास में अपनी जीविका की आंतरिक अस्मिता पर केंद्रित धर्म-अधर्म की विवेचना करते हैं। इस उपन्यास में विचारों के दौरान चिकित्सा-विज्ञान की संभावनाओं और सीमाओं पर लंबा शास्त्रार्थ चलता है। साथ ही, आधुनिक युग में चिकित्सा-विज्ञान के विषय में कुछ नैतिक प्रश्नों की चर्चा भी है। उपन्यासकार ने डा. ख्वाजा एवं ब्रिगेडियर ताजउद्दीन नामक दो पात्रों को आमने-सामने

खड़ा करके चिकित्सा-विज्ञान के दो विरोधी पहलुओं पर प्रकाश डाला है। संभव है, यहां उपन्यासकार स्वयं एक प्रकार का आत्म-निरीक्षण करना चाहता हो। एक तरफ विज्ञान-तृष्णा से अभिभूत, करुणा एवं सहानुभूति को जीवन की पूंजी मानकर चिकित्सा-विज्ञान में कार्यरत व्यक्ति की समर्पित भावना है; दूसरी तरफ, अन्य किसी भी पेशे की तरह, चिकित्सा-विज्ञान के संसार में भी छाया हुआ 'पद' का मद और नौकरशाही की शेखी अपनी पकड़ कसती ही जाती है। ढकोसलेबाजी बढ़ती जाती है। आज के किसी भी संवेदनशील डाक्टर की तरह कुंजब्दुल्ला ने भी ऐसे मानसिक द्वंद्व का अनुभव किया होगा। इसलिए अंतिम फैसला देने से बचते हुए वे, अपने संसार के वैचारिक द्वंद्वों को तटस्थता से पेश करते हैं। इस उपन्यास के पैंतीसवें अध्याय में मर्सी किलिंग पर जो लंबी बहस चलती है, उसमें भी अंतर्धारा के रूप में भिषग-वृत्ति के नैतिक आयामों पर एक प्रकार की हठीली तर्कवादिता मिलती है। यों 'दवा' का लेखन कुंजब्दुल्ला को परस्पर विरोधी सूत्रों में जकड़ी हुई अपनी अस्मिता को गहराई में पैठने का मौका देता है।

इस उपन्यास को पूरा पढ़ने के पहले सहृदय पाठक के मन में शायद एक खास आदर्श साहित्यिक रचना उभरकर आ सकती है। मेरा आशय बंगला उपन्यास 'आरोग्यनिकेतन' से है। 'आरोग्यनिकेतन' स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य के श्रेष्ठ उपन्यासों में अपनी तरह का अनोखा और गरिमापूर्ण उपन्यास है, जिसका मलयालम अनुवाद सन् 1961 में छपा था। यह उपन्यास हमारी साहित्यिक चेतना का अंग बन चुका है। ताराशंकर बंद्योपाध्याय इसमें जीवन महाशय नामक पात्र को प्रस्तुत करते हैं। कितनी ही गहन व्यथाओं को मन में छिपाये, विराग के कगार पर खड़े, इस वैद्यराज के माध्यम से 'आरोग्यनिकेतन' उपन्यास में मृत्यु की समस्या का एवं मृत्यु पर विजय पाने के लिए मानव के दैन्यतापूर्ण प्रयत्नों का चित्रण किया गया है। जीवन महाशय की विशिष्ट सिद्धि यह है कि वे अंधी, बहरी और पिंगलवर्णी मृत्युदे ो की पदचाप को पहचान सकते हैं। यही दुर्लभ सिद्धि उनकी रोग-निदान-प्रणाली और चिकित्सा-प्रणाली का स्वरूप निर्धारित करती है। जीवन महाशय अपने सामने हाथ-पांव पटकते, झगड़ते, रोग से मुक्ति के लिए रोते, गिड़गिड़ाते रोगियों में से प्रत्येक के भविष्य का पूर्व-निर्णय कर सकते हैं। चारों तरफ के लोग इसीलिए यह महसूस करते हैं कि कोई अज्ञात रहस्यमयी शक्ति जीवन महाशय के माध्यम से बात करती है। आधुनिक युग में क्षीण होती जाती ग्रामीण संस्कृति की पृष्ठभूमि में इस उपन्यास में पारंपरिक चिकित्सा-विधि एवं एलोपैथी चिकित्सा-विधि के बीच का द्वंद्व चित्रित किया गया है। यह चित्रण उपन्यास के भीतर उठती आध्यात्मिक जिज्ञासाओं को एक अतिरिक्त आयाम भी देता है।

चाहे कलात्मक सृजन की दृष्टि से हो, अथवा जीवन की समालोचना की दृष्टि से, 'आरोग्यनिकेतन' बीते हुए स्वर्ण-युग की कृति है। नये सिरे से उसकी पुनरावृत्ति संभव

नहीं है। उस उपन्यास के पात्रों या समस्याओं को किसी अन्य धरती में या अन्य सांस्कृतिक वातावरण में रोपने का सवाल भी नहीं उठता।

ताराशंकर बंद्योपाध्याय जैसे कृतिकार ने ऐतिहासिक स्तर पर जो विषय-वस्तु प्रस्तुत की थी, उसे कुंजब्दुल्ला ने आधुनिक रूप-रंग देने का दायित्व 'दवा' में निभाया है। उन्होंने भारतीय उपन्यास-वाङ्मय में, प्रारंभिक युग से ही प्रवृत्त सनातन भाव-बद्धता के प्रकाशन के लिए नये समीकरण-सूत्रों का पता लगाने का बीड़ा इस रचना में उठाया है। कुंजब्दुल्ला ने 'दवा' उपन्यास में मलयालम की प्रसिद्ध कवियित्री, सुगतकुमारी की एक लंबी मृत्यु-कविता उद्धृत की है। सुगतकुमारी ने 'आरोग्यनिकेतन' से प्रेरणा पाकर ही वह सशक्त कविता लिखी थी। उपन्यासकार ने संभवतया समझ-बूझकर ही ऐसा किया होगा। कुंजब्दुल्ला का यह उपन्यास दार्शनिकता के बोझ तले कुचले बिना, परोक्ष रूप से ही सही, मृत्यु से संबंधित विशिष्ट दर्शन प्रस्तुत करता है। वह दर्शन सौ फीसदी लेखक का अपना दर्शन है। इसके अलावा, इसे आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान द्वारा प्रस्तुत तथ्यों को छानकर प्राप्त की हुई संवेदना का नि ोड़ भी कहा जा सकता है।

प्रस्तुत उपन्यास की संरचना पर दृष्टि डालते हुए हमें सर्वप्रथम एक आख्यान-केंद्र का अभाव खटकता है। प्रारंभिक अध्यायों में हमें आभास होता है कि देवदास इसका नायक है और लेखक ने देवदास की दृष्टि को ही अपनी दृष्टि बनाया है। मगर उसका अस्तित्व परछाईं की तरह उससे भी बड़े तथ्य में विलीन हो जाता है। इसे हम अनुभव भी करते हैं। कुंजब्दुल्ला ने छोटे-छोटे रेखाचित्रों की रचना के साथ साहित्य में पदार्पण किया था। वे 'दवा' में रेंब्रां के रचना-कौशल का स्मरण कराते हैं। वे अनेक नर-नारी पात्रों के छोटे-बड़े चित्र प्रस्तुत करते हैं। सिर्फ अपने परिचित लोगों की रूपसादृश्य ही उन पात्रों को लेखक की तरफ नहीं खींचती। उपन्यासकार उन पात्रों के बदलते हाव-भावों के जरिये आंतरिक जीवन की व्याकुलता, त्रासदी और निर्वेदभाव का भी विश्लेषण करता है। कुंजब्दुल्ला के समान अपने कथापात्रों से घनिष्ठता रखने वाले लेखक आधुनिक पीढ़ी में शायद ही मिलेंगे। पात्र-सृजन की यह निरंतर क्षमता ही कुंजब्दुल्ला को मलयालम उपन्यास की प्रमुख धारा से जोड़ती है। इस पर भी 'दवा' के हर पात्र की अपनी अस्मिता है। साथ ही यह भी सच है कि पूरे उपन्यास में छायी हुई एक विषाद-संध्या इन पात्रों की संभावनाओं और सीमाओं को किसी अन्य दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा देती है। लगता है मानो इन पात्रों को कोई अज्ञात सूत्रधार कठपुतलियों की तरह नचा रहा हो। हम इन पात्रों के व्यवहार को उक्त समस्या से जोड़कर ही पूरी तरह स्वीकार कर सकते हैं। जब उपन्यास अंतिम बिंदु की ओर बढ़ता है, तब इन सभी पात्रों का जीवन अनिवार्य शिथिलता का शिकार हो जाता है। इस बीच उपन्यासकार टूट चुके देवदास के माध्यम से बुनियादी तथ्य को प्रस्तुत करता है—

"देवदास ने अभी तक नहीं सोचा कि उसे भविष्य में क्या बनना है या कौन-सा पेशा अपनाना है। उसे मालूम है कि दवा का और मौत की दुनिया उसका इंतजार कर रही है। देवदास नहीं जानता कि दवा बड़ी है या मौत, ये दोनों एक दूसरी को निरंतर हराती रहती है। सत्य भी यही है। देवदास को डा. ख्वाजा के शब्द स्मरण हो आये—

'मौत के बाद शरीर में दवा का कोई मतलब नहीं रहता। मगर मौत दवा से डरती है। दवा की दुनिया में मौत गिद्ध की तरह मंडराती रहती है और मौका पाते ही वह झपट्टा मारकर प्राणों को अंततः उठा ही ले जाती है'।

उपन्यास का प्रश्नजाल इन्हीं अवतरित शब्दों में समाया है। उपन्यासकार ने दवा और मौत की शक्तियों के चिरंतन संघर्ष से एक नये सत्य का सृजन कर लिया है।

दवा और मौत के द्वंद्व का परीक्षण-निरीक्षण सदा के बीमार जॉन बलदेव मिर्जा पर किया जाता है। उपन्यासकार ने इस रोगी की जान बचाने के प्रयास को आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान की सीमा-रेखा की निर्णायक घटना के रूप में प्रस्तुत किया है। हम जान बलदेव मिर्जा को जब पहली बार देखते हैं तब वह अपना पाप स्वीकार (कनफैशन) करने के लिए पादरी को खोज रहा है। आठों पहर बातें करता वह रोगी, एक दिन एकाएक बेजबान हो गया। धीरे-धीरे वह एक नली से दिये जाने वाले पेय को पेशाब के रूप में बदलने वाला यंत्र होकर रह जाता है। अस्पताल के पहुंचे हुए डाक्टर और नर्सें दिन-रात उसकी मूर्च्छा को दूर करने का प्रयास करते हैं। उस रोगी की जान बचाना उनके लिए एक चुनौती बन गयी। उपन्यास के आखिरी पृष्ठों में वह रोगी नर्स के मुंह से बाइबिल के भक्ति-भरे प्रसंग सुनते हुए बड़ी शांति अनुभव करता है। मृत्यु थोड़ी देर झिझकते रहने के बाद उसके सामने से हट जाती है। उसकी आंखों में झलकता विराग क्या मौत को हटा सका था? उपन्यासकार असहनीय पीड़ा झेलने वाले रोगियों की एक लंबी कतार से हमें मिलाता है। मानव आदि-सागर की लहरों की भांति सब की आखिरी शरणस्थली—मौत की ओर बहते आ जाते हैं। वे बंधुओं-बिरादरों से विदा लेने के पहले प्राणों से बिछुड़ते हैं। ऐसे दृश्यों के तटस्थ चित्रण के बाद उपन्यासकार ने आम आदमी के प्रतिनिधि, जॉन बदलेव मिर्जा को पार्थिव जीवन क्यों लौटा दिया? (उसके नाम की प्रतीकात्मक ध्वनि दर्शनीय है।) मिर्जा के स्वास्थ्य-लाभ में क्या चिकित्सा-विज्ञान के भविष्य के विषय में लेखक की आशावादिता झलकती है?

सचमुच 'वेडलाक' में जकड़ जाने के पश्चात लक्ष्मी देवदास को लंबा पत्र भेजती है। "वे मुझे जितने भी क्षण भोगते हों उनमें प्रत्येक क्षण मेरे मन में देवदास का चित्र रहेगा।" इस वाक्य में ज्वलंत रूप में उभर उठती आत्मीयता के विषय में आपका क्या खयाल है? यह प्रसंग इस उपन्यास की हृदयहारी घड़ियों में अन्यतम है। लक्ष्मी के आत्म-निवेदन से प्रकट होने वाला और एक तथ्य यह है कि भारतीय समाज की औसत कन्या की तरह

वह भी परंपरागत पिता की सत्ता से मुक्त नहीं है। इच्छानुसार चयन करना उसे मना है। जहां तक उसके पिता आचारी का संबंध है, वे अपने संस्थान में रोगियों पर जैसी मनमानी लादते हैं, उसी मनमानी की आवृत्ति पुत्री के प्रति व्यवहार में भी होती है। आधुनिक भारतीय परिस्थितियों में घर में और नौकरी के स्थान पर भी—चालू अधिकारों के घटक परस्पर जुड़े दिखाई देते हैं। जो व्यक्ति इन अधिकारों की इकाई का शिकार बनते हैं, उनकी निजी त्रासदी कई बार इतनी मार्मिक होती है कि शब्दों में नहीं समाती।

इस उपन्यास के अंतिम दृश्य को मेरी के दृष्टिकोण से रूपायित कराया गया है। मेरी अपेक्षाकृत गौण पात्र तो है, परंतु वह इस उपन्यास में निश्छलता की प्रतीक के रूप में उभरकर आती है। इसीलिए उपन्यासकार इस पात्र को हर आफत से बचाकर सुरक्षित कर लेता है। कथावस्तु के अंतिम प्रसंग पर कुमारी मेरी जमुना नदी के रेतीले किनारे, उसी स्थान पर कदम पर कदम रखती चलती है जहां कुंजम्मा ने अपने नवजात शिशु को गाड़ दिया था। मेरी को मातृत्व की पुकार सुनाई देती है। इसे उपन्यासकार ने स्वप्नात्मक अनुभूति के रूप में अभिव्यक्त किया है।

"मेरी ने उस समय एक नवजात शिशु का रुदन सुना। यह रुदन एकदम पास से सुनाई दे रहा था। हलके अंधेरे में मेरी टटोलने लगी। उसका हाथ एकाएक एक गुनगुने कोमल शिशु-शरीर पर पड़ा।

"हां, एक नवजात शिशु ही था। मेरी ने पूरे भावावेश और वात्सल्य से उस बच्चे को उठाकर अपनी गोद में ले लिया।"

'दवा' उपन्यास में बड़ी कुशलता से वर्णित एक विशेष प्रसंग है। जिस रात बाइक वाली दुर्घटना में तिवारी बाबू की मृत्यु हो जाती है उसी रात हेलन सिंह उनके साथ प्रथम सुहागरात मनाती है। यह दृश्य हेलन सिंह की कल्पना के माध्यम से रचा गया है। दोनों व्यक्तियों के संबंध को समाज ने मान्यता नहीं दी है। इसको लेकर हेलन के हृदय में अपराध-भावना भी है। हेलन के मन की तह में एक अधूरा अरमान है। वह विवाहित जीवन के बंधन में जकड़े हुए तिवारी बाबू को——एक रात के लिए ही सही——पूर्णतः अपनाना चाहती है। वह मदालसा महिला अपने किसी असफल प्रणय की स्मृतियों से मन-ही-मन जूझती रहती है। उसके अवचेतन में यह अभिलाषा दबी हुई है, परंतु उस नवोढ़ा के गालों की लाली के मुरझाने के पहले ही उसके प्रेमी का निष्प्राण शरीर मुर्दाघर में पहुंचता है। उपन्यासकार पाठक को इस मानसिक आघात के लिए पहले से तैयार भी कर लेता है। वह शब्दों का प्रयोग बड़ी किफायत से करते-करते उस सुहागरात के चित्र का अनावरण करता है जो कभी प्रारंभ नहीं होती।

मलयालम में ऐसे भी कहानीकार हुए हैं जो शब्दों से नृत्य कराते हैं और उन्हें चित्र-रचना के काम में लाते हैं। कुंजब्दुल्ला उनकी पंक्ति में नहीं आते। डाक्टर जब रोगियों

के लिए नुस्खा तैयार करते हैं तब उनका ध्यान अर्थ की सूक्ष्मता पर (सही अर्थ पर) रहता है। उन्हें पता है कि शब्दों के बढ़ने व घटने से क्या नुकसान हो सकता है। ओ. वी. विजयन जैसे उपन्यासकारों ने रूपकों के माध्यम से सोचने का नियम-सा बना लिया है। कुंजब्दुल्ला तो भाषा का व्यावहारिक अर्थ-स्तर कभी नहीं छोड़ते। इस प्रवृत्ति की व्याख्या संभवतया उपर्युक्त कथन में है।

कुंजब्दुल्ला सीधे, सरल और छोटे वाक्य पसंद करते हैं। उनका प्रत्येक वाक्य एक व्यापार की पूर्ति को सूचित करता है। लालित्य और स्पष्टता उनकी विशेषता है। इस उपन्यास के तैंतीसवें अध्याय में मृत्यु एक पात्र में रूप में आती है। उपन्यासकार मृत्यु-यात्रा की सीमा रेखाओं पर विचार करता है। उक्त प्रसंग में उपन्यासकार की शैली मननात्मक एवं अमूर्त हो जाती है।

सन् 1980-90 में मलयालम उपन्यास में भाव-परिवर्तन के क्षेत्र में एक विशेष हर्षदायक तथ्य का अनुभव होता है। वह यही है कि हमारे लेखक अनुभव के विशाल आयामों का पता करने तथा उन पर अधिकार प्राप्त करने की बड़ी लगन दिखाते हैं। हाल ही में किसी समीक्षक ने उपन्यासों पर सैद्धांतिक संवाद के दौरान "महान उपन्यास" की संकल्पना का उल्लेख किया था। वह संकल्पना––उसी सूक्ष्म रूप में न सही––हमारे लेखकों को प्रलोभन देने लगी है। उपन्यासकारों की खोज की सीमा-रेखाओं की व्याख्या नये सिरे से होने लगी है। उदाहरणार्थ, एम. टी. वासुदेवन नायर ने अपने 'रंडां उषम' उपन्यास में वेदव्यास के मौनों के विश्लेषण का प्रयास किया है। इसकी सीमाओं के बावजूद 'महाभारत' की नयी व्याख्या का प्रसंग उपस्थित हुआ है। आनंद ने 'अभयार्थिकल' में भारत की धरती, भूप्रकृति तथा सांस्कृतिक परंपरा के आधार पर गहरा ऐतिहासिक विकास रूपायित करने का प्रयत्न किया है। यह उपन्यास मलयालम का सर्वप्रथम वैचारिक उपन्यास कहा जा सकता है। हम आज जैसी नागरिकता से परिचित हैं, उसकी जड़ों को खोजने तथा उसके जरिये राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता पर उपलब्ध झूठी मान्यताओं को चुनौती देने के प्रयास ने 'अभयार्थिकल' को गहराई प्रदान की है। ओ. वी. विजयन का 'धर्मपुराणं', तीसरी दुनिया के देशों को उपनिवेशवाद से विमुक्त कराने वाले दशकों में विकृत राष्ट्रीय नैतिकता के विषय में मानो भविष्यवक्ता की निर्णय-घोषणा है। कुंजब्दुल्ला ने 'दवा' की रचना से लोगों को आश्वस्त किया है कि 'मैं भी अपने हृदय में कला का ऐतिहासिक ध्येय लिये चलता हूं।'

'दवा' की रचना के दौरान कुंजब्दुल्ला ने मन में कौन-कौन-सी मंजिलें देखी होंगी? वे एक अध्ययनशील व्यक्ति भी हैं। उन्होंने अवश्य ही टॉमस मान की 'मैजिक आफ दि माउंटेन' का स्मरण किया होगा। टॉमस मान ने रोग एवं निरोगता के द्वंद्वों की परिक्रमा करते हुए उस विलक्षण चिकित्सा-केंद्र तथा उस केंद्र के निवासियों की कथा लिखी थी। यह कथा कुंजब्दुल्ला के मन में संभवतया कलात्मक पूर्णता के आदर्श के रूप में रही होगी।

अलबेयर कामू की प्रसिद्ध रचना 'प्लेग' और उस उपन्यास के नायक डाक्टर की संदेश-चेतना ने कुंजब्दुल्ला को एक नयी दिशा में सोचने की प्रेरणा दी होगी। सोलसेनित्सिन के उपन्यास में एक कैंसर वार्ड और उसके चारों ओर की घटनाओं का वर्णन है। उससे भय और संदेह की सूक्ष्म कोशिकाएं बड़ी मात्रा में बढ़ीं तथा क्रांति-परवर्ती व्यवस्था की आत्मा की खोज की प्रक्रिया के विषय में विश्व के अंतःकरण को सचेत कर दिया। इस उपन्यास में यथातथ्य डाकुमेंटेशन (वृत्तचित्रण) के प्रतीकात्मक अर्थ-स्तर की ओर कथा-तत्व का विकास होता है, तथा उसी कारण उपन्यास विशेष महत्वपूर्ण है। मेरा अनुमान है कि इन साहित्यक स्मृतियों ने भी कुंजब्दुल्ला की सृजन-चेलना को नयी प्रेरणा दी होगी। यह भी असंभव नहीं है कि कुंजब्दुल्ला इस प्रकार स्वीकार की हुई चुनौती का सार समझने के फलस्वरूप 'दवा' की ही पृष्ठभूमि और विषय-वस्तु के आधार पर 'दवा' के शेष भाग के रूप में दूसरा उपन्यास लिखें। डाक्टर साहब अपने दिन का आधे से अधिक समय अपने क्लिनिक (चिकित्सालय) में चिकित्सार्थ आते रोगियों से मिलते हैं। किसी-न किसी शारीरिक कष्ट के चिह्न चेहरे पर जाहिर करते हुए भीतर आने वाला हर-एक रोगी कुंजब्दुल्ला को, मानव नामक जटिल प्रतिभास के विषय में नयी-नयी जानकारी देता है। कारण यह कि रोग जीवन की निशा है। वह मानवीय अस्मिता के भूगर्भांतर में स्थित पथ है। वह शून्यता की ओर बढ़ता जाता है। उस पथ की अनंत यात्रा, मानसिक खीझ, तकलीफ और थोड़ा-सा संतोष अनुभव कराती है। हमारी कामना है कि ये अनुभव कुंजब्दुल्ला की महान कला-सृजन सामग्री के रूप में परिणत हो जाये।

डा. वी. राजकृष्णन

एक

परदेसी देवदास जमुना-तट पर गाड़ी से उतरा है। वह जीवन की विडंबना के कारण, एक भीतरी पुकार सुनकर चिकित्सा-शास्त्र पढ़ने मेडिकल कालेज की तलाश में निकला है।

नदी-किनारे ऊंचाई पर बसा हुआ वह शहर, दूर से ही देवदास को दिखाई दिया। उसने शहर का शोर-गुल सुना।

यह कोई सामान्य नगर नहीं है। राजपथ नगर की छाती को चीरते हुए चार रास्तों में बांट देता है। हर रास्ता काफी दूर जाकर फिर से कई शाखाओं में बंट जाता है। सबसे पहले जो बड़े-बड़े मकान दिखाई पड़ते हैं वे मेडिकल कालेज के हैं। आगे का सतमंजिला भवन पुस्तकालय है--एशिया का सबसे बड़ा ग्रंथालय। यहां अध्ययन और अनुसंधान चलते हैं। बत्तियां यहां कभी नहीं बुझतीं।

देवदास आगे बढ़ रहा है। कतारों में खड़ी ईमारतें अस्पताल की हैं। देश के कोने-कोने से हजारों रोगी यहां इलाज कराने आते हैं। सैंकड़ों लोग यहां दाखिल होते हैं। असाध्य रोग वाले, दीनहीन लोग जुलूस बांधकर दुहाई देते हुए आते हैं। इस अस्पताल में सभी सुविधाएं हैं---जिसकी आंखें बेकार हो गयी हों, उसे नयी आंखें लगाकर दर्शनशक्ति देते हैं। नाक के नष्ट होने पर नयी नाक लगायी जाती है। जिसके बदन का खून बह गया हो, उसे ताजा खून दिया जाता है। पैर अगर कट गया हो तो नया पैर लगाया जाता है। इन सबसे बढ़कर, हृदय का आपरेशन करने वाले डाक्टर भी इस बड़े अस्पताल में हैं।

देवदास आगे ही बढ़ रहा है। कतारों में खड़े छोटे-छोटे अनगिनत घरों में नर्सें रहती हैं। उसके बाद, ऊंचा सिर उठाये बड़े बंगले प्रोफेसरों और डाक्टरों के हैं। लो, उनके आगे का मकान सिनेमाघर है। इसके बाद एक छोटा-सा बाजार है। नौ वर्गमील तक फैली यह एक चिकित्सा नगरी है।

यह नगर अपनी स्वर्ण-जयंती मना रहा है।

पहले, यानी बहुत पुराने जमाने में यह पूरा हरा-भरा गांव था। बाद में वीरान हो गया। वर्षों बाद, इंजीनियरों और मजदूरों ने बुलडोजरों से इसे हमवार किया तो मिट्टी के भीतर से अस्थियों के अंबार निकले। उन्हें ट्रकों में लादकर समुद्र में बहा दिया गया।

शायद आप पूछेंगे कि कंकाल आए कहां से? हरा-भरा गांव-का-गांव किसी जमाने में महामारी की चपेट में आ गया था।

हां, बहुत पुराने जमाने की बात है यह।

गांव की सरहद से लिपटी एक नदी बहती थी, जो अब नहीं है। वह नदी प्रकृति की माया से कहीं लुप्त हो चुकी है।

गांव में एक धनी महिला थी। उसका भव्य भवन नदी-तट पर बना था। उन्होंने नदी-किनारे महार्घ वृक्ष की डाल पर एक खूबसूरत पिंजरे में प्यारे पंछियों का एक जोड़ा पाल रखा था।

एक दिन नदी में बाढ़ आयी। नदी का जल कगारों को डुबोने लगा। जगह-जगह पानी किनारे को लील रहा था। कहीं-कहीं तो कोई अनजान व्यक्ति हिलते पानी को मानो हथेलियों से दबा-दबाकर सपाट बनाता नजर आया।

उस रात अचानक नदी की धार कुछ मुड़ी, तो महार्घ वृक्ष के नीचे की मिट्टी ढह गयी। सुग्गे, नरम और गरम पंख परस्पर रगड़ते, थककर सोये पड़े थे। वे पिंजरे समेत दूर जाकर गिरे, तो पल-भर के लिए जग पड़े। मगर उन्हें दुबारा जगने का मौका नहीं मिला।

किसी ने उन बेजान चिड़ियों को बहते जाते नहीं देखा। तब फिर उस मृत्यु की कथा कौन जानता होगा?

धनी महिला दूसरे दिन बिस्तर से उठी तो उसे अपनी विपदा पर बड़ा दुख हुआ। वह विराट और सर्वग्राही प्रकृति के चरण पर बड़ी देर तक, सिर झुकाये प्रार्थना करती रही।

धनी महिला विधवा थी। उसका पति कई साल पहले गुजर गया था। दुमंजिले भवन के निचले तल्ले में वह अकेली रहती थी। उसके साथ कुछ नौकर-चाकर और कहार थे।

शाम होते-होते नदी का पानी उतर गया। आसमान पर रोशनी और पंछी नजर आये।

बादल से घिरी रात! लगभग तीन बजने को थे। उस स्त्री के शयन-कक्ष में किसी ने कदम रखा। वह किस गांव का था? इरादा क्या था? उस व्यक्ति ने निद्रा में डूबे उस कक्ष की नीरवता को भंग करते हुए प्रश्न किया, "कहां हैं बीज?"

अचानक जग उठी स्त्री ने धड़कते दिल से कहा, "मुझे नहीं मालूम।"

घन-गंभीर स्वर में वह फिर बोला, "तो मैं यहां अभी बिछा रहा हूं।"

अंधेरे में वह कहीं अंतर्धान हो गया।

सवेरा हुआ तो वह धनी विधवा महिला जग नहीं पा रही थी। उसे सन्निपात ज्वर हो गया। साथ ही दस्त व कै भी। वैद्य को बुलाने या दवा खाने के लिए वह राजी नहीं हुई।

पिछली रात की घड़ियों में बीजों की तलाश में जो व्यक्ति आया था वह ईश्वर के नियोग से आया था। उसकी पुकार को अनसुना करना असंभव था।

उसी बिस्तर पर पड़ी-पड़ी वह स्त्री दूसरे दिन सूरज निकलने के पहले ही दुनिया से चल बसी। प्यारे सुग्गों के जोड़े की आत्मा के साथ उसकी आत्मा भी नदी के ऊपर

कुछ समय तक मंडराती रही, और फिर आकाश की तरफ उड़ चली।

वह अजनबी अगली रात एक बूढ़े के कमरे में पहुंचा, जो वर्षों से आठों पहर खाट पर पड़ा रहता था। न वह नींद का आनंद ले सकता था, न जागने का। भूंकते कुत्तों की परवाह किये बिना, पत्थरों और कांटों भरे रास्ते से होता हुआ ही वह अजनबी वहां पहुंचा था। उस समय घर में उसकी बुढ़िया औरत के सिवा तीसरा कोई नहीं था। अजनबी ने अपना सवाल दुहराया, "बीज कहां हैं?"

इस बार उसने शब्दों का क्रम जरा-सा बदला था।

नींद और झपकी के बीच, कानों में पड़े सवाल के जवाब में बूढ़े के होंठ बुदबुदाये, "मुझे नहीं पता!"

वृद्ध दूर देश से बीजों की खोज में आये उस अजनबी को देख नहीं सका। वह आंखों से ओझल हो गया।

बूढ़े को दस्त और कै होने लगी। दूर के रिश्तेदार, हिलने-डुलने में असमर्थ, बिस्तर पर पड़े बूढ़े को मन-ही-मन कोसते हुए दो दिन तक उसकी सेवा-टहल करते रहे। वे दरी व फर्श धोते रहे। पाखाना और कै निकालकर घर से बाहर फेंकते रहे। तीसरे दिन बूढ़े ने अपने ही मल-मूत्र और कै में पड़े-पड़े अंतिम सांस ली। तब तक वृद्ध की पत्नी भी निष्प्राण होकर गिर पड़ी।

लोगों ने उन मृतकों की ठंडी पड़ी लाशों को गड्ढे में दफना दिया।

तीसरे दिन, आधी रात को अजनबी मरे बूढ़े के पोते के पास पहुंचा। उसने नन्हें बच्चे को रंगीन गुब्बारे और लाल फूल दिखाकर चिढ़ाया। बच्चा आधी रात को गला फाड़कर चीख उठा। चिल्लाहट रोग में बदली। सिर्फ दो साल का बदनसीब नन्हा! ओझा और वैद्य बारी-बारी से कोशिश करते रहे। फिर भी तीसरे दिन बालक का जीवन-दीप बुझ गया। वह घर दुखी परिवार के करुण क्रंदन में डूब गया।

सबने मिलकर उस नन्हें की लाश को मिट्टी में दफना दिया।

इसके बाद अजनबी अदृश्य हो गया। इसी बीच उसने गांव भर में बीज छिड़क दिये। मृत्यु का प्रकोप हैजा बनकर नंगा नाच कर उठा।

हैजा अड़ोस-पड़ोस के दो घरों में दबे पांव घुस गया। पहले घर में नवविवाहित युवा पति-पत्नी थे। रोग, आमंत्रित अतिथि-सा, वहां पहुंचा। पिछली रात, दोनों ने जी भर गन्ने का रस पिया, अंडे और दूध से बना हलवा खाया था। पति अपनी अवस्था से भी अधिक विवेकी था। उसने पत्नी को खाते समय ही सावधान किया था कि दस्त का खतरा है। मगर मधुमास की मिठास में चेतावनी की चिंता न करके दुल्हन ने डटकर हलवा खाया।

इसे विडंबना ही कहिए! दूसरे दिन सुबह-सुबह दूल्हे को ही दस्त शुरू हुए। दोपहर तक वह थकान के मारे निढाल हो गया। बाहर कदम रखने में असमर्थ! पैरों ने जवाब

दे दिया। वह घर के भीतर ही पड़ा रहा। शाम होते-होते दुल्हन में भी बीमारी के आसार दिखाई पड़े। कै करते-करते वह परेशान हो गयी। वे एक-दूसरे की सेवा के काबिल न रहे।

दो दिन और दो रातें बीत गयीं। तीसरे दिन उजाले में दो लाशें ही दीख रही थीं।

दूसरा घर एक सम्मिलित परिवार का था, जिसमें दस-पंद्रह सदस्य थे। उस घर में हैजा बाढ़-सा आ धमका। सब-के-सब एक ही दिन बीमार पड़े। बुजुर्ग से लेकर मुन्ना तक, एक-एक कर ढीले हो, चटाई या फर्श पर गिरते गये।

कोई पड़ोसी उस घर में नहीं आया। पूरा गांव समझ गया कि यह छूत की बीमारी है।

उस घर के लोग थके-थके और परेशान होकर कराह रहे थे। उनका दीन रुदन बाहर सुनाई दे रहा था। मगर जिस किसी ने सुना, कान बंद किये गांव की सरहद की ओर भाग चला। उनकी मदद करने कोई नहीं आया।

इसी दौरान, देहात में कितने ही घरों में हैजा पैठ चुका था। बेसहारा, बीमार लोग इसे प्रभु की इच्छा मानकर खुशी से मृत्यु का वरण करते रहे।

गांव के मुखिया सचेत हो गये। बड़ी निर्णायक घड़ियों में ही वे जगते थे।

मुखिया के घर पर ज्योतिषी, ओझा, वैद्य और पुजारी इकट्ठे हुए। ज्योतिषियों ने प्रश्न-परीक्षा करके घोषणा की कि देवी का कोप ही महामारी का कारण है। माताजी रूठी हैं। मंदिर पर कोई दीपक नहीं जलाता। गांव के गृहस्थ उत्सव नहीं चलाते। माताजी की भविष्यवाणी है कि पूरा गांव लाशों से पट जाएगा।

मुखिया ने पुजारियों को देवी-कोप शांत करने के लिए प्रायश्चित कराने का दायित्व सौंप दिया।

ओझाओं को जप करते और मंत्रोच्चारण करते हुए पूरे गांव की परिक्रमा करने का आदेश मिला।

वैद्यों का सुझाव था कि पानी से ही रोगाणु फैल रहे हैं। उन्होंने लोगों को पानी पीने से मना कर दिया। वैद्य का सुझाव था कि क्या रोगी, क्या नीरोग——सभी सिर्फ नारियल का मीठा पानी ही पियें।

मुखिया ने पूछा, "रोगियों की सेवा-टहल कौन करेगा?"

पुजारी खामोश!

ज्योतिषी चुप!

ओझा ने ओंठ जबरदस्ती बंद रखे।

वैद्यजी ने आंखें बंद कर लीं।

"ठीक, हम डोम लोगों को बुलायेंगे," मुखिया ने कहा, "मगर वे भी बीमार पड़े

तो?"

आंखें बंद किये खड़े वैद्य ने कहा, "उसकी तो तरकीब है। सेवा-टहल के लिए जाने के पहले डोम को पेट-भर देसी शराब पिलानी चाहिए। शराब के सिवा और कुछ खिलाना-पिलाना नहीं।"

कुछ ही घंटों में गांव की सरहद से छह डोमों को खोज-पकड़कर लाया गया।

डोम भरी बोतलें लिये रोगियों की सेवा के लिए चल पड़े।

मुखिया भंडार में लकड़ी की पेटी में ठर्रा जमा करने लगे।

जंगल की आग की तरह हैजा पूरे गांव में फैल रहा था।

ठर्रा पीकर झूमते, लाल-लाल आंखों वाले डोम घर-घर में पहुंचने लगे। तब तक जीवित लोगों की अपेक्षा मृतकों की संख्या बढ़ गयी थी।

बीमारों की सेवा का मौका न पाकर डोम परेशान हुए। जब तक एक लोग को गड्ढे में दफनाते, कोई और रोगी लाश बन जाता। पूरा गांव रोग-शय्या में बदल गया।

डोम उस गांव को मरघट बना रहे थे।

वे गड्ढा खोदते, दफनाते थक गये। मंदिर में दीपक तक जलाने वाला कोई नहीं रहा।

दवा तैयार करने वाला वैद्य नहीं रहा।

गांव सूना हो रहा था।

एक दिन एकाएक आसमान में काला रंग छा गया। पश्चिम से काले बादल घुमड़ते आये और गांव के ऊपर ठिठक गये। ब्रह्मांड भी जैसे ठहर-सा गया। लाशों की बदबू चारों तरफ फैलने लगीं। गांव में पहले से पहुंची मृत्यु की गंध क्षीण होती-होती समाप्त हो गयी।

गांव की हवा में अब सीलन और चिता की गंध ही अधिक थी। हवा का हलका झोंका चला तो बूंदा-बांदी होने लगी। छींटे पड़ते ही रहे। बूंदा-बांदी ने धीरे-धीरे मूसलाधार वर्षा का रूप धारण कर लिया।

कै, दस्त और वर्षा का जल गलियों, तालाबों और बावड़ियों के जल में मिलकर एकाकार हो गया।

अब शेष लोग भी महामारी की चपेट में आ गये।

आखिर मुखिया के घर पर भी हैजे ने धावा बोल दिया। लंबे-तगड़े मुखिया, दो दिनों तक रोग से जूझने के बाद, तीसरे दिन मुंह-अंधेरे अपने ही दस्त में, निष्प्राण हो गिर पड़े।

छहों डोमों ने मिलकर मुखिया को धरती के भीतर दफनाया। उस कब्र के ऊपर ईख का पौधा लगा दिया।

गांव में उन छह डोमों को छोड़ और कोई नहीं बचा। दो डोमों ने आपस में सलाह करके मुखिया के भंडार में बची हुई शराब छिपाकर रख दी।

जब ठर्रा नहीं मिला तो चार डोम एकाएक हैजे से मर गये। चारों की लाशों को एक ही गड्ढे में दफनाया गया।

चार ईख के पौधे भी लगा दिये गये। उसके बाद डोम जी-भर शराब पीते रहे।

अंत में दो व्यक्ति और ठर्रे के दो घड़े ही शेष रह गये।

पहला डोम होशियार था। उसने दलील पेश की, "पता नहीं, हममें से कौन पहले मरे। इसलिए पहले ही हम दो गड्ढे तैयार करके ठर्रे का एक-एक घड़ा हाथ में लिये गड्ढे में, मौत के इंतजार में लेटे रहें।"

दूसरा डोम मान गया। दोनों ने मिलकर पहला गड्ढा तैयार किया। इस पर पहले ने और एक दलील पेश की।

"क्या गड्ढे की लंबाई काफी है?"

"पता नहीं।"

"तुम जरा लेटकर देख लो न?"

"हां।"

दूसरा गड्ढे में उतरा और पीठ के बल लेट गया। उसके लेटते ही पहले ने ऊपर से बहुत सारी मिट्टी गिरा दी। तनहाई की उस हालत में भी वह दुनिया का मजा लूटना चाहता था। उसमें जीने का हौसला था।

अब जोर की आंधी और भारी वर्षा की बारी थी। बाढ़ में एक डोम और दो घड़े ठर्रा न जाने कहां बह गये।

दो

बड़ी तेजी से आती ऐंबुलेंस 'ओ.पी.डी.'[1] के सामने एकदम ब्रेक लगाकर रुक गयी। ड्राइवर तो अपनी जगह से हिला नहीं। उसने पीछे की ओर तनकर पैंट की जेब से एक लंबी बीड़ी निकालकर सुलगायी। सलीब चिह्न से अंकित ऐंबुलेंस का दरवाजा खुला। तीन-चार आदमी जान बच जाने का अहसास लिये बाहर निकले। उनके चेहरों पर घबराहट थी, माथे पर पसीने की बूंदें चमक रही थीं।

अब एक स्ट्रेचर ऐंबुलेंस से बाहर लाया गया। लोहे के गोलों के पहरे में स्ट्रेचर पर खाकी पोशाक पहने एक रोगी अचेत पड़ा था।

बाहर खड़े लोगों ने गालियां और चेतावनियां देते हुए स्ट्रेचर बाहर निकाला। खाकी कपड़े पहने वह मनुष्य आसमान की तरफ ताक रहा था।

स्ट्रेचर फाटक की ओर बढ़ा! लोग उसे लट्ठे की तरह उठाकर आगे ले जा रहे थे।

प्यारेलाल ने फाटक पूरा खोल दिया। लोहे के छोटे पहिये कराह उठे। मुंह बाये लोहे के फाटक से स्ट्रेचर, लट्ठे जैसा रोगी मनुष्य और साथ आये लोग अंदर घुसे।

सेंट्रल आउटडोर[2] पर जिंदगी नये सिरे से शुरू हो गयी। एक नये दिन की शुरुआत!

अस्पताल की किरणें जिन-जिन दिशाओं में पहुंचतीं, उन सभी दिशाओं से लोग रोगियों को लेकर आते थे। वे रिक्शे से, साइकिल से और टैक्सी से आकर फाटक के सामने उतरते। गरमियों के दिन थे, इसके बावजूद गाढ़े की चादर ओढ़े पैदल आने वाले और पगड़ी बांधे बीमार कम नहीं थे। वे सब बड़ी अधीर नजरों से मुंह बाये फाटक के भीतर आ गये। प्यारेलाल ने उनके पसीने की गंध, रोग का ताप और रोगी की उसांस की हलकी गरमी महसूस की। प्यारेलाल उन्हें यों देखता रहा मानो वे बेजान मशीन हों।

किसी देहात से लोग फूले पेट वाले एक रोगी को लेकर भीतर आये। उन अनजानी जगह पर वे कुछ झिझके। उन्हें पता नहीं था कि बीमार को किधर ले जाना है। अपने-अपने मतलब से विभिन्न दिशाओं में चलती भीड़ को देख वे कुछ समय असमंजस में खड़े रहे। उनमें से एक आदमी ने आहिस्ता से फाटक के पास पहुंचकर प्यारेलाल से पूछा, ''डाक्टर

---

1. आउट पेशेंट डिपार्टमेंट--बहिरंग, जहां डाक्टर बाहरी रोगियों को देखते हैं।
2. अस्पताल का मुख्य प्रवेश-द्वार।

बाबू कहां बैठते हैं?"

प्यारेलाल को हंसी आयी। डाक्टर लोग सोलह कमरों में बैठते हैं। उन्होंने रोगों का विभाजन सोलह श्रेणियों में किया है——सिरदर्द से लेकर सिफलिस तक।

प्यारेलाल ने मुख्य ओ.पी.डी. की तरफ इशारा करके कहा, "उधर जाओ! वे लोग बतायेंगे कि कहां जाना है।"

लंबे और चारों तरफ फैले काउंटर पर डाक्टर और क्लर्क अपनी-अपनी जगह आ विराजे। वे हर रोगी की पहली पर्ची देखने लगे। पर्ची पर एक संख्या होती है। रोगी उस पर्ची को लेकर अपने नसीब में लिखे नंबर वाले कमरे में पहुंचते हैं। वहीं उनके रोग का निदान किया जाता है।

एक लंबी शानदार मोटरगाड़ी आकर रुकी। ब्रेक लगाने पर कोई आवाज नहीं हुई। एक चिड़िया के पंखों की-सी सरसराहट भर हुई। मगर प्यारेलाल चौंक उठा।

बड़े सुपरिटेंडेंट साहब की मोटर थी। भगवान हर आदमी को उसके जीवन-काल में अलग-अलग देवता को दान देता है। प्यारेलाल के प्रत्यक्ष देवता ही मोटर में आये थे।

प्यारेलाल फाटक के बाहर सिमेंट-लगे पायदान पर जमकर खड़ा हो गया। वह माल-जहाज की गंभीरता से अपनी खाकी वर्दी यथासंभव चुस्त करके अपने छह फुट के बदन की रीढ़ सीधी करके खड़ा हो गया।

ड्राइवर मोटर से निकला। उसके सांवले, नाटे बदन पर सफेद वर्दी थी। गाड़ी की परिक्रमा करते हुए दूसरी तरफ आकर उसने गाड़ी का दरवाजा खोला।

बड़े साहब मोटर से बाहर निकले। वे बीस वर्ष तक पलटन में रहे थे। ब्रिगेडियर के पद से अवकाश ग्रहण किया था। उनकी रीढ़ सीधी थी। लंबाई छह फुट। सधे कदम बढ़ाते धीरे-से आगे बढ़े।

प्यारेलाल ने तनकर फौजी ढंग की सलामी दी।

आदमी को बड़ी मुश्किल उठाकर सलाम बजाते देखकर भी बड़े साहब उस पर ध्यान दिये बिना फाटक पार कर भीतर समा गये। प्यारेलाल ने अपने अकड़ाये बदन को कुछ ढीला कर लिया, माथे का पसीना पोंछा और फाटक के पीछे रखी बेंच पर फिर से बैठ गया।

प्यारेलाल को फौजी कायदों की अच्छी जानकारी है। आदमियों के लिए जानवर खाली जानवर होते हैं। मगर फौज में आदमी जानवर हो जाते हैं और जानवर आदमी।

बड़े साहब जब तक पूरी तरह अपने कमरे में गायब नहीं हो गये तब तक प्यारेलाल उनकी ओर देखता रहा।

प्यारेलाल की नजर घड़ी पर गयी। साढ़े आठ बजे हैं। अब और ढाई घंटे यहां ड्यूटी करनी है। ग्यारह बजते ही प्यारेलाल की हुकूमत चालू होगी। ग्यारह बजे के बाद कोई

भी बीमार आ जाये, उसे प्यारेलाल वापस भेज सकता है। और ढाई घंटे बिताने हैं। दूसरों पर रोब जमाने की प्रवृत्ति प्यारेलाल के अंतस्तल में रोगाणु की तरह दबी पड़ी थी।

सैंट्रल आउटडोर पर लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही है। सैकड़ों लोग खुले फाटक से भीतर आये। रोगी, रोगियों के रिश्तेदार। हर रोगी बड़ी शान से चार-पांच लोगों से घिरा हुआ आ रहा है।

प्यारेलाल ने बीड़ी सुलगायी। ऊब से बचने का एकमात्र साधन बीड़ी है। सालों से वह बीड़ी फूंकता आया है। जवानी में ही सीखी आदत जो ठहरी!

बड़े साहब के आ जाने के बाद प्यारेलाल की हालत जेल से छूटे कैदी की-सी हो जाती है। अब उसे किसी का डर नहीं है। असल में वह किसी से भी डरता नहीं है, सिर्फ परमात्मा को छोड़कर। मगर जो रोटी देता है, उससे डरे बिना काम कैसे चलेगा?

नौ बजते-बजते छात्रों का दल आने लगा। वर्दी पहने, खिलखिलाते, मस्ती से चलते छात्रों की तरफ प्यारेलाल देखता रहा। उसे छात्राएं अधिक पसंद हैं। वे शांत होती हैं। वे न तो स्टेथस्कोप को हाथ में झुलाती चलती हैं और न ही उसे कंधे पर लापरवाही से डालती हैं।

ओ.पी.डी. पर रोगियों की भीड़ मधुमक्खियों की तरह बढ़ती गयी। वे अपना-अपना काम निकालने के लिए परस्पर होड़ करने लगे। अपनी पर्ची को सोने की तरह संभालकर उसमें लिखी संख्या देखते हुए आगे बढ़ते थे। स्वागत-काउंटर की कन्या अपनी कुर्सी पर बैठ गयी। वह प्यारेलाल से सिर्फ बीस गज की दूरी पर है। मगर बाहर से आने वाला उसकी गर्दन तक ही देख पाता है। शेष अंग संगमरमर की मुंडेर में छिपे हैं। उस कन्या का हाथ हमेशा टेलिफोन में व्यस्त दीखता है। होंठों पर मुस्कान खेलती रहती है।

प्यारेलाल समय काटने के लिए अकसर उस कन्या पर नजर गड़ाये रहता है। उसे उस कन्या की भरी-भरी छातियां ही पसंद हैं। मगर वह बाहर दिखाई नहीं देतीं। रिसेप्शन-काउंटर के संगमरमर के पत्थरों से वह सुरक्षित हैं। पत्थरों के पीछे ब्रा भी है।

सैंट्रल आउट डोर पर प्यारेलाल की व्यस्तता चरम पर पहुंच गयी। लोगों की एकदम खचाखच भीड़। अपने-अपने नाम की पट्टी धारण किये हुए प्रोफेसर, लेक्चरर, हाउस-सर्जन और नर्सें लोगों के बीच से चल रहे थे।

धोती व जूता पहने एक लालाजी ने फाटक पार किया।

प्यारेलाल ने पूछा, "टाइम कितना है?"

लाला ने मोटा-तगड़ा रोएंदार हाथ उठाकर काफी देर तक घटा-जोड़ करने के बाद कहा, "साढ़े दस!"

अब आधा घंटा और। फिर फाटक बंद किया जा सकता है। कैंटीन जाकर चाय पी जा सकती है। मगर बंद फाटक पर भी ड्यूटी होती है। शाम को चार बजे तक। चार

बजे अगली पारी का आदमी आयेगा। फाटक पर रोज तीन आदमी ड्यूटी करते हैं। आठ-आठ घंटे!

प्यारेलाल को उस दिन ज्यादा थकान महसूस हुई। ग्यारह बजे के बाद ही वह फाटक बंद करके अपने बच्चे को डाक्टर के पास ले जा सकता है। तीन दिन से बुखार है।

प्यारेलाल अब अपने बच्चों की फूटी किस्मत के बारे में सोचने लगा। जब वह खुद एक बच्चा था तब यहां कोई अस्पताल नहीं था। उन दिनों बीमार पड़ने पर अकसर आदमी मर जाता था।

उसने किसी से सुना था कि चालीस-पचास वर्ष पहले अस्पताल वाला यह पूरा गांव महामारी .का शिकार हुआ था, और यहां के सारे-के-सारे जीव मिट्टी में मिल गये थे।

जमाना कितनी जल्दी बदल जाता है! औरतों की जवानी की तरह!

उस जमाने में यह सारी धरती परती पड़ी थी। परती जमीन के उस तरफ, खेतों में उसके परिवार वालों ने गेहूं और ज्वार बोये थे। खर-पतवार गोड़ते, खाद डालते, फसल की कटाई के बाद जमींदार का खलिहान अनाज से भर जाता। सिर्फ मेले के दिनों में किसान को पेट-भर खाना नसीब होता था।

जमाना बदल गया। हमें आजादी मिली। हमने कितनी ही बार चुनावों में मतदान किया। कितने ही नेताओं को देखा। लड़ाई में भाग लिया। अनेकों लोगों को जान से मार डाला। खुद मौत से बचकर और रिटायर होकर गांव लौटा।

गांव का नक्शा ही बदल गया। फैली पड़ी बंजर भूमि पर एक दिन लोगों की भीड़ दिखाई दी। पूछताछ करने पर पता चला, बंजर जमीन पर अस्पताल बनेगा।

गांव पुलकित हो उठा। रिटायर होने के बाद प्यारेलाल को और कोई काम नहीं था। किसी काम के लायक न रहने पर ही तो रिटायर किया जाता है। कई दिन तक प्यारेलाल देखता रहा। तीन टांगों पर खड़ा करके किसी यंत्र से इंजीनियर लोग देखते और नक्शा बनाते थे। इसके बाद नयी बनाई गयी सड़क से ट्रक आने लगे।

ट्रक पत्थर और मिट्टी ले आय। फिर पत्थर उठते गये। सड़कें बनने लगीं। लाल सड़कें काली बनीं। मजदूर, मिस्त्री और ठेकेदार गांव की शोभा बढ़ाने लगे।

गांव फलने-फूलने लगा। नौ वर्गमील के भीतर ईंट-गारे का काम शुरू हुआ। सड़कों का निर्माण भी। दूर देश से आये मवेशियों जैसे मजदूर भी गांव में आ पहुंचे। उनके तन, बदन और कपड़े एक ही रंग के लग रहे थे। ईंट का-सा रंग। स्त्री-पुरुष, सबका!

वे सफेद तंबू लगाकर मैदानों में रहने लगे।

उन्होंने रोशनी में काम किया। खाने-पीने और शौच आदि के लिए वे कुछ क्षण ही लेते थे। खाना क्या? मक्के की सूखी रोटी और प्याज! औरतों का दांतों से प्याज काटने का स्वर सुनना प्यारेलाल को बहुत पसंद था। प्याज काटने से आंखों में पानी भर आता,

तो उन्हें प्यारेलाल कुतूहल से देखता। उनके कान लंबे होते थे। कान में धातु की वजनी बालियां होती थीं। नाक में गोल नथनी भी।

वे स्त्रियां रोटी खाकर और पानी पीकर चेहरा जरा-सा चमकाकर चलतीं तो पायलें बजतीं। पीतल की आवाज प्यारेलाल ध्यान से सुनता। नौ वर्गमील की जमीन पर छाया हुआ यह विशालकाय अस्पताल उन्हीं औरतों और उनके पुरुषों ने बनाया है।

काम पूरा हो जाने पर वे यहां से विदा हुए। अपने ठेकेदार की दो घोड़ों से जुती गाड़ी के पीछे घंटियां बजाती हुई उनकी बैलगाड़ियां चल पड़ीं। एक दिन शाम को सब गांव से विदा हो गये। गाड़ी के पहिये जब लुढ़कने लगे तब वे कंगन वाले हाथों से तालियां बजाती और राजभक्ति के गीत गाती हुई आगे बढ़ीं। सड़कें, लोहे के खंभे और बंजर खेत उनके पीछे निश्चल खड़े रहे।

वे और किसी अट्टालिका के निर्माण की खातिर आगे बढ़ गये।

प्यारेलाल बड़े कुतूहल से वह दृश्य देख रहा था। जब वे गांव की सरहद को पार कर गये, तब सिर्फ ढोलक की आवाज प्यारेलाल की कानों में गूंज रही थी। उस रात प्यारेलाल ने खाना नहीं खाया।

उसकी औरत ने पूछा, "क्या आज भूख नहीं लग रही है?"

"पेट में दर्द हो रहा है।"

प्यारेलाल ने झूठ कहा था। दर्द तो दिल में था। विराट अस्पताल का काम करते-करते महीनों साथ रहे कामगार गांव से आज चले गये थे।

गांव सूना-सा हो गया था। अब कौन गांव की सुरक्षा करे? यह अस्पताल?

प्यारेलाल एकाध रात बड़ा दुखी रहा। फिर धरती पर नये जीवों के समान, भवनों में नये लोग आने लगे।

पहले मोटरगाड़ियां आयीं। अस्पताल की ईमारत के पीछे, एक फर्लांग की दूरी पर बने घरों को मोटरों और लोगों ने आबाद कर दिया।

चपरासियों के घरों में चूल्हे से धुआं उठने लगा।

आखिर एक दिन मंत्रीजी भी आये। वे ही तो सारी बातों की मंगलसमाप्ति सूचित करते हैं। गांधी टोपी और नोकदार जूता पहने, लाल आंखों वाले लंबे-से सज्जन! वे हाथ को हवा में उछालते हुए माइक पर गरजे। उनका गर्जन समाप्त हुआ तो तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी। शायद पहले से उसका इंतजाम किया गया था।

दूसरे दिन अस्पताल का काम शुरू हो गया। उस रात प्यारेलाल ने अपने गांव में बैठे-बैठे आलोकित अस्पताल को देखा। उसे लगा कि दीप-पंक्ति से जगमगाता कोई बड़ा जहाज लंगर डाले खड़ा है। उसने पत्नी को बुलाकर कहा, "देखा? हमारा अस्पताल चमक रहा है।"

रोज रात के समय अस्पताल प्रकाश बिखेरा करता था।

दो रिक्शे फाटक के सामने आ खड़े हुए तो प्यारेलाल ने घड़ियाल पर नजर डाली। साढ़े-ग्यारह। घड़ी की बड़ी व छोटी, दोनों सुइयां ठीक समय बता रही थीं। ग्यारह बजकर तीस मिनट हो गये हैं। प्यारेलाल ने जोर से फाटक बंद किया।

तब तक रिक्शे से उतरा धोती वाला देहाती फाटक के पास पहुंचा। फाटक की छोटी-सी दरार से हाथ भीतर बढ़ाकर प्यारेलाल को बुलाते हुए उसने कहा, "फाटक खोलो।"

प्यारेलाल लापरवाही से खड़ा रिसेप्शन-काउंटर की लड़की की अस्पष्ट मूर्ति की ओर देख रहा था।

"दोस्त, जरा दरवाजा खोल दो न! बड़ा नाजुक मामला है।"

प्यारेलाल ने बाहर की तरफ नजर डाली। फिर इत्मीनान से बोला, "समय खतम हो गया।"

"दोस्त, वह मौत के नजदीक है। छुरे की सख्त चोटें लगी हैं।"

प्यारेलाल ने सामने आकर रिक्शे की तरफ देखा। रिक्शा वाला पसीने से तर था, गीली व बदन से चिपकी गंजी पहने रिक्शे का हत्था थामे खड़ा था। रिक्शे में दो व्यक्ति सवार थे। एक की गोद में दूसरा। दोनों खून से सने। गोद में बैठे आदमी की आंखें मुंदी थीं। दूसरा आदमी उसे कसकर पकड़े हुए था। मुंदी आंखों वाला थका, मुरझाया और आंधी में धराशायी हुए केले के बड़े गाछ-सा दूसरे के कंधे पर पड़ा था। गाढ़ा खून बहकर रिक्शे के पायदान पर मोम की तरह जम गया था।

प्यारेलाल फाटक खोलकर रिक्शे के पास गया। आंखें खोलकर लेटे हुए आदमी ने प्यारेलाल की तरफ देखा। कहा, "दोस्त, हमें बचाओ।"

प्यारेलाल ने छुरे से घायल आदमी को छूकर देखा। बदन बिलकुल बर्फ-सा ठंडा था, चेहरे और सिर पर मिट्टी लगी थी। कुर्ता जगह-जगह से फट गया था। ठंडे, गोल पुट्ठे अब भी मजबूत लग रहे थे।

शक दूर करने के लिए प्यारेलाल ने रोगी की बंद आंखें खोलकर देखा। आंख की पुतली नये पैसे-सी खिली थी। उसके बाद प्यारेलाल ने देर नहीं की।

"सीधे जाओ! पड़ोस की बिल्डिंग में 'दुर्घटना' वाला कमरा पूछ लो। कोई भी बता देगा।"

"तो यहां?..." पसीने से तर, बेतरतीब मूंछ वाले देहाती ने पूछा।

अनमना होकर प्यारेलाल ने कहा, "यहां का वक्त खतम हो गया।"

"क्या दुर्घटना वाले कमरे में अब डाक्टर बाबू मिलेंगे?"

"हां, हां, वहां तीन-चार डाक्टर हैं," प्यारेलाल बोला। उसे जोर से कहने की इच्छा तो हुई कि, 'दोस्त, अब कोई उम्मीद नहीं है।'

खून बह जाने से ठंडा पड़ा शव लिये, दोनों रिक्शे और थोड़े-से लोग कैजुअल्टी की तरफ बढ़े।

प्यारेलाल खड़ा उनको देखता रहा।

तीन

देवदास मेडिकल कालेज की छह-मंजिला इमारत के सामने आकर रुक गया। मुख्य द्वार के सामने लोगों की भीड़ बढ़ रही थी। मोटर, स्कूटर, पैदल यात्री, छात्र और नर्सें—इन सबके छोटे-से समाज को वह थोड़ी देर तक खड़ा देखता रहा।

देवदास मेडिकल कालेज में इसी साल प्रवेश पाया हुआ मेडिको[1] है। मेडिकल कालेज में उसका पहला दिन है——सुनहले अक्षरों में लिख लेने लायक तारीख।

बाईं कलाई पर नया ऐप्रन (सफेद कोट) था, जिससे कोरे कपड़े की गंध आ रही थी। नेकटाई को और एक बार कस लेने के बाद देवदास फाटक की तरफ बढ़ चला।

चौकीदार प्यारेलाल, मौन खड़ा देवदास का स्वागत कर रहा है। मुस्कुराहट उनके भावी जीवन का पहला नजराना है। मगर बड़ी मूल्यवान मुस्कुराहट है। देवदास को पता नहीं कि लंबे, बड़े हॉल से किस तरफ चलने पर अपने गंतव्य स्थान पर पहुंचेगा। हॉल की बाईं तरफ स्वागत-कक्ष है। स्वागत-कक्ष से रास्ता पूछना शान के खिलाफ लगा। वह तो मेडिको है। स्वागत-कक्ष आम लोगों के लिए है।

हाल की चार दिशाओं में कुल नौ लंबे गलियारे थे। हाल में पहुंचकर लोग, बिखरकर एक-एक गलियारे में गायब हो रहे थे। तभी देवदास की नजर एक बोर्ड पर पड़ी——

"प्री-क्लिनिकल सैक्शन"

तीसरे गलियारे के कई बोर्डों में वह भी था। देवदास समझ गया कि तीसरा गलियारा ही उसका रास्ता है।

वह गलियारा अंतहीन लग रहा था। रोगी और दूसरे लोग उसे ठेले जा रहे थे। गलियारे से गुजरते समय उसे दाएं-बाएं छोटी शाखाएं भी दिखाई दीं।

"हलो...!" किसी अज्ञात दिशा से आवाज सुनाई पड़ी। देवदास ने मुड़कर देखा। ऐप्रन और पुस्तकें लिये एक मेडिको खड़ा था। सीनियर छात्र हो सकता है।

"गुड मार्निंग!" देवदास ने आदर से नमस्कार किया।

"आओ, मेरे साथ चलो!" सामने आकर उसने कहा।

---

1. मेडिकल कालेज के छात्र को प्यार व सम्मान से 'मेडिको' पुकारते हैं।

स्वर में आदेश का पुट था।

भीड़ में से आगे बढ़ते हुए वे एक कमरे में पहुंचे। वहां पंद्रह-बीस नये मेडिको थे। कुछ सीनियर मेडिको उनकी सावधानी से जांच कर रहे थे।

देवदास के कमरे में प्रवेश करते ही एक सीनियर मेडिको ने उसकी गरदन हाथ में दबोच ली। टाई गरदन से निकाली। बेल्ट कमर से खोलकर गरदन पर डालने और टाई कमर पर बांधने का हुक्म हुआ।

"क्यों वे कुत्ते! दाढ़ी-मूंछ नहीं बनायी?" कायदा था कि नये मेडिको मूंछ नहीं रख सकते। सफाचट दाढ़ी, नीली पैंट, सफेद कमीज, नीली टाई——यही पोशाक होनी चाहिए।

उसने एक सेफ्टी रेजर और आइना देवदास को थमाकर बाथरूम की ओर इशारा करके कहा, "जाओ, जाकर साफ करो।"

देवदास बाथरूम की तरफ बढ़ा तो उसने पीछे से कहा, "सारे बाल!" हंसी का फव्वारा छूटा।

बाथरूम का दरवाजा खोल देवदास के बाहर आते ही फिर अट्टहास! कमरे में हंगामा बढ़ रहा है। वह कमरा हंसी, रुलाई और अट्टहास से गूंज रहा है।

वह एक कक्षा है। एक कोने में, कांच के कठघरे में एक अस्थि-पिंजर टंगा है। किसी जमाने में जीवित रहे एक आदमी का संपूर्ण कंकाल। दीवार पर शरीर के भीतरी अंगों के नक्शे हैं। जिगर, फेफड़े, गुर्दे, हृदय——सब एक कतार में।

एक सीनियर मेडिको बोर्ड पर लिख रहा था। लिखना समाप्त करके उसने शीर्षक दिया——"पालन के लिए दस आदेश!"

1. सीनियर मेडिको को देखने पर सादर अभिवादन करना।
2. दाढ़ी-मूंछ सफाचट रखना।
3. नीली पैंट, सफेद कमीज और नीली टाई पहनना।
4. बिना जूते के कालेज के अहाते में पांव न रखना।
5. धूम्रपान न करना।
6. लड़कियों को देखते ही आंखें बंद कर लेना।
7. टट्टी जाने के बाद पानी का प्रयोग न करना।
8. महीने में एक बार खुदकशी करना।
9. पाठ्य-पुस्तकें कभी न खोलना।
10. परीक्षाओं का बहिष्कार करना।

सीनियर छात्र कुरसियों पर जमकर बैठ गये। नये छात्रों को दीवार की तरफ चेहरा किये खड़ा किया गया है। बीस-तीस छात्र हैं। किसी ने आवाज दी——

"सब मुड़कर खड़े हो जाओ!"

सब एकदम मुड़े, मानो कवायद कर रहे हों। गले पर बेल्ट और कमर पर टाई बांधे, मसखरों का दल।

देवदास ने कनखियों से एक बार साथियों की तरफ देखा। सब के चेहरों पर परेशानी थी। कुछ छात्र पसीने से तर थे। कुछ के चेहरे ऐसे कि मानो काटो तो खून नहीं। भविष्य की बात सोचकर सब-के-सब व्यग्र थे।

सीनियर छात्रों में शिकार पाने की मस्ती है। वे इसी में अपने को भी भूले हुए हैं। लाल आंखों वाला एक मुस्टंडा मूंछों पर ताव देता आया और प्रत्येक छात्र के पेट में घूंसा मारने लगा। कुछ छात्र दर्द से तड़प उठे। कुछ छात्रों ने दांत भींचकर चुपचाप सह लिया।

मूंछ पर फिर से ताव देते हुए उसने चेतावनी दी, "किसी ने आज्ञा न मानी तो इसी तरह घूंसा मारकर मरम्मत कर दूंगा।" वह जूनियर छात्रों में से एक हृष्ट-पुष्ट युवक को ' ऽकड़कर सामने ले आया।

"नाम क्या है?"

"अनिल कुमार।"

"किस जंगल से आ रहे हो?"

अनिल कुमार कुछ बोल न पाया। बगलें झांकने लगा।

"अरे! पूछते हैं, किस जंगल से आ रहे हो!"

झिझकते हुए अनिल कुमार ने क्षमा-याचना के स्वर में कहा, "बरेली।"

"क्या बरेली जंगल है?"

"खच्चर के बच्चे! पूछते हैं, क्या बरेली जंगल है?"

कुछ भी कहने में असमर्थ होकर अनिल कुमार ताकता रहा।

किसी ने पूछा, "तू मर्द है या औरत?"

अनिल बोला, "मर्द।"

"बोलो, मर्द व औरत में क्या-क्या फर्क है?"

सोच-विचारकर अनिल कुमार फर्क बताने लगा।

"मर्दों के सिर के बाल छोटे होते हैं, औरतों के लंबे।"

"वाह-वाह! और एक बार बताओ।"

"मर्दों के बाल छोटे होते हैं, औरतों के लंबे।"

"तो सरदारजी लोग की बात? वे शायद औरत हैं न? है न, कमबख्त?"

फिर जोर की हंसी!

एक आदमी एक सोडा-बोतल ले आया। उसे आगे बढ़ाते हुए अनिल कुमार से कहा, "इसे सीधा खड़ा करो और उस पर बैठ जाओ।"

बोतल लेकर अनिल कुमार चुप खड़ा रहा। उसकी सांस मानो रुक गयी। चारों तरफ

से हुक्म आने लगा––'बैठ।' किसी ने उसकी तरफ सड़ा अंडा दे मारा। कमरे में बदबू फैल गयी।

बोतल फर्श पर खड़ी करके अनिल कुमार बड़ी सावधानी से उस पर बैठ गया।

"दोनों हाथ आगे फैला!"

उसने दोनों हाथ आगे की ओर फैलाये। हाथ-पांव हवा में बहते से ऊपर आये। उसकी कोहनी और घुटने कांपने लगे।

इसी बीच किसी ने पीछे से आकर धीरे से पैर से बोतल ठेल दी। अनिल कुमार एकदम उलट गया। हंसी के फव्वारे कमरे में फिर से गूंज उठे।

महाशय ने हाथ में सोडा-बोतल लिये जूनियर छात्रों से पूछा, "बोतल और लड़की में क्या फर्क है? बताओ।"

सब चुप!

"किसी को नहीं मालूम? उल्लू के पट्ठे! तो सुनो," वह कहने लगा, "बोतल पहले भरते हैं, उसके बाद कार्क लगाते हैं। मगर लड़की में कार्क पहले लगाते हैं, बाद में भरते हैं।"

"ओ हो, हो... हर हर महादेव!"

सम्मिलित ठहाका गूंज रहा था।

देवदास अपनी बारी की बात सोचकर पसीने से तर है। क्योंकि इस बीच वे एक-एक कर छात्रों को बुला रहे थे।

एकाएक दरवाजा खोलकर तीन-चार लोग कमरे में आ गये। उनके साथ एक छात्रा भी है। लंबी, गोरी लड़की। वह अपनी बड़ी-बड़ी आंखें खोलकर चारों तरफ देख रही है। उसके चेहरे पर घबराहट या शिकन नहीं। वह एकदम लापरवाह-सी खड़ी है। फिर भी कनपटियों पर पसीने के मोती नजर आ रहे हैं।

उसने काली किनारी की, बिस्कुटी रंग की रेशमी साड़ी पहनी है। महंगी है। गले में सोने की मोटी चेन है। एक कलाई पर हीरा-जड़ी सोने की घड़ी और दूसरी कलाई पर सोने की पतली चूड़ियां।

उसने बटुए से रूमाल लेकर माथा पोंछा। किसी ने पूछा, "तुम्हारा नाम?"

लापरवाही से वह बोली, "सुरैया रहमान!"

उस कन्या को लेकर आए छात्रों में से किसी ने कहा, "यह नवाबजादी है। घमंड की पुतली।" कमरे में खामोशी। उसी छात्र ने आगे कहा, "यह वर्दी नहीं पहनेगी। कहती है कि महंगी साड़ियां ही इसके लिए ठीक हैं। नवाबजादी है न? कोई इसकी नजर में नहीं जंचता।"

"तुम यूनिफार्म नहीं पहनोगी?"

वह कुछ नहीं बोली।

"अरी छोकरी, सवाल का जवाब दे। क्या तू यूनिफार्म नहीं पहनेगी?"

"नहीं!" उसने मुंहतोड़ जवाब दिया।

बस क्षण-भर में छात्रों ने उस कन्या के चारों ओर एक घेरा बना लिया। सब ने कलम खोलकर उसकी साड़ी पर स्याही छिड़कना शुरू किया। उस मेडिकल कालेज की सारी कलमें उसके खिलाफ उठीं। बिस्कुटी रंग की साड़ी नीली हो गयी। उसके बदन पर, चेहरे पर——स्याही का रंग।

वे ऊंची आवाज में कोरस स्वर में बोलने लगे, "नीली गोरैया। नीली गोरैया! कल भी इस सूरत में आना।" किसी ने उसे एक कोने में कुरसी पर बिठा दिया।

वहां नये आने वालों को कोई नहीं पूछता। सीनियरों की बात माननी ही पड़ती थी। भूल से भी खिलाफ उंगली उठी तो जोर का घूंसा छाती पर। मवेशियों की तरह चुपचाप खड़ा रहने पर आसानी से मुक्ति मिल सकेगी।

स्याही में नहाई, खूबसूरत राजकुमारी कुरसी पर सिमटी बैठी है। हिम्मत दिखाने की कोशिश करने पर भी उसकी आंखों से दीनता छलक रही है। बीच-बीच में धीमी आवाज में उसांस उठ रही है।

रैगिंग वाला कमरा भट्ठी की तरह धधक रहा है। भयभीत नये मेडिको पसीने से तर! वह जगह इस दुनिया की दोजख-सी हो गयी है।

लो! कुछ लोग एक मुटल्ले को लिये दरवाजा खोलकर भीतर आते हैं। वह मुटल्ला, मूंछ वाला नया मेडिको है। दरवाजे के भीतर आते ही वह औंधे मुंह गिर पड़ा। किसी ने उसे पीछे से धकेल लिया था। मुंह से खून बह रहा था। नये ऐप्रन में खून का दाग!

"कहां है रेजर?"

एक सीनियर छात्र रेजर लेकर आगे आया। मुटल्ले जूनियर को तिपाई पर बिठाया और रेजर गाल के पास ले गया तो एक जोर की आवाज सुन पड़ी। जूनियर के घूंसे की चोट से सीनियर धरती पर गिर पड़ा और पलटी खायी। पता नहीं, कहां से हिम्मत पाकर मुटल्ला उठा और ललकारते हुए गरजा, "जिस कुत्ते में हिम्मत है, वह सामने आये, मूंछ शेव कर डाले।" उसने चारों तरफ देखा। वह मुक्का बांधकर फिर से ललकार उठा।

कमरे में सन्नाटा खिंच गया। शोरगुल, सीटी, ताली——सब थम गया। सीनियर छात्रों को एक अप्रत्याशित विरोध का सामना करना पड़ा है। नये छात्रों के सामने बेइज्जती हुई है। इस अनुशासन-भंग की कड़ी सजा तुरंत न दी गयी तो उनका स्वाभिमान चूर-चूर हो जायेगा।

भीड़ में से एक साहसी सीनियर उठा, बोला, "इसकी मूंछ अभी सफाचट करनी चाहिए।" दूसरों को बढ़ावा देते हुए वह आगे आया।

खलनायक जूनियर मेंडिको चुपचाप बैठा रहा, मानो कुछ हुआ ही नहीं। वह एकदम निश्चल था।

साहसी सीनियर ने जूनियर मुटल्ले की कमीज पकड़कर कहा, "उठ रे कुत्ते!"

मुटल्ले जूनियर ने सिर्फ सिर ऊपर उठाकर धमकाया, "छुरा मार दूंगा।"

किसी ने पूछा, "क्या छुरा मारोगे?"

"हां, छुरा भोंक दूंगा।"

सीनियर ने मुटल्ले की गरदन दबोच ली। दो छात्र पास आये। एक ने रेजर गाल से सटाया कि इतने में किसी जादुई ताकत से जूनियर एकदम भड़क उठा। हाथ-पांव, बदन जोर से हिलाते हुए वह उठा और पैंट के नीचे रखा छुरा निकाला और दे मारा।

कमरा खून से लथपथ हो गया।

स्याही लगी विस्कुटी रंगवाली साड़ी पर जब खून के छींटे पड़े तब नवाबजादी फूट-फूटकर रोती हुई उठकर भाग गयी।

चार

सफेद कमीज के ऊपर नीली टाई बांधे मेडिको एनाटमी हाल के सामने आकर खड़े हो गये। पाठ्यक्रम की पहली क्लास है। अधिकांश चेहरों पर घबराहट है। कई लड़कियों में तो न कोई घबराहट है, न गड़बड़ी। वे फुसफुसाती और मंद-मंद हंसती रहती हैं। ऐसी ही होती हैं वे। नरक में भी वे फुसफुसाती और हंसती हैं।

वर्दीधारी चपरासी और दो ट्यूटर आ पहुंचे। ट्यूटरों के हाथों में मोटी-मोटी पोथियां हैं। चाभियों का गुच्छा झुनझुनाते हुए चपरासी ने कमरा खोला।

"भीतर बैठ जाइए!" ट्यूटर बोले।

छात्र तेजी से भीतर जाकर बैठ गये।

लंबा-चौड़ा हाल। हर विद्यार्थी के लिए डेस्क और कुर्सी। बड़ी व लंबी मेज पर कांच के कितने ही मर्तबान रखे हैं। उन मर्तबानों में मानव-शरीर के अंग दवा में डालकर सुरक्षित रखे हुए हैं। किसी जमाने में जीवित रहे लोगों का मस्तिष्क, हृदय, गुर्दा, फेफड़े और कोख!

देवदास को लगा कि मर्तबान के भीतर के शरीर के अंग भावी डाक्टरों की तरफ देखकर अपने जीवन की व्यथाएं दोहरा रहे हैं।

इस बीच एनाटमी के प्रोफेसर के जूते की चरमर कक्षा में सुनाई देने लगी।

ट्यूटर महोदय रजिस्टर खोलकर हाजिरी लेने लगे।

नाम पुकारने पर छात्र अपनी जगह खड़ा हो जाता। प्रो. डी. कुमार उससे सवाल पर सवाल पूछते——गांव, पिता की नौकरी, पुराने कालेज, मनोरंजन, आदि-आदि।

प्रो. डी. कुमार हरएक छात्र का बड़ी सावधानी से निरीक्षण करते हैं। उनकी तेज आंखें पूरी कक्षा में घूमती हैं।

उनका शरीर नाटा है। रंग गेहुंआं! उभरे पुट्ठों वाले कंधे, छोटी गरदन। लगता है, कंधे पर सिर अलग से उठाकर रख दिया गया है। उनकी चाल-ढाल अत्यंत नियमित है और आवाज कोमल। दोनों हाथ प्रायः ओवरकोट की जेब में। आधे बाल सफेद हैं, जो खोपड़ी से चिपटे हुए हैं। दृष्टि ऐसी कि जैसे बड़े-से चश्मे के भीतर से आंखें क्षितिज की ओर छलांग भर रही हों।

वे एक मसीहा की सरल शैली में वाक्य दुहराते हैं।

"प्रिय डाक्टर्स!"

वे छात्रों को डाक्टर ही पुकारते थे। मेडिकल कालेज में फंसी हुई बिल्ली तक को वे डाक्टर ही पुकारेंगे।

डी. कुमार कहने लगे——

"आप सब डाक्टर हैं। आप लोगों को अपने जीवन का एक बड़ा महत्वूपर्ण दायित्व निभाना है। आप के लिए न धर्म है, न मजहब। न स्त्री है, न पुरुष। न रात है, न दिन। न परिवार है, न बच्चे। याद रहे कि सारी दुनिया ही एक डाक्टर का परिवार है। वसुधा ही कुटुंब है।"

वे अपने चश्मे का कांच चमकाने लगे। आंखों से चश्मा उतारा, तो लगा कि उनकी मुखाकृति कुछ बदल-सी गयी है। जल्दी से अपना चश्मा आंखों पर गाते हुए वे कहने लगे, "आपके लिए एक ही संसार है, रोगियों का संसार। वे ही आपकी ख़ुशी व रंज हैं। अगर आप उन्हें अपना खिलौना मानना चाहते हैं तो आप अभी, इसी समय इस पेशे से विदा ले सकते हैं। रोगियों से आप अपनी रोटी की उम्मीद कर सकते हैं। मगर यदि धूमधाम की जिंदगी की उम्मीद उनसे करते हैं, तो आप के लिए बाहर जाने का रास्ता वह रहा।"

उन्होंने मुड़कर दरवाजे की तरफ़ इशारा किया।

"आपका परिश्रम, सहानुभूति, उदारता, दया, प्यार——सब कुछ मरीजों के लिए है—जी खोलकर उन पर लगाइए।

जीवन-यात्रा वहुत लंबी नहीं होती। छोटी होती है। इस क्षणिक जीवन-यात्रा में अपना महत्वपूर्ण योगदान देना ही आपका ध्येय रहे।

इस देश की धरती में चरक और सुश्रुत का जन्म हुआ है। यह देश अविसेन्ना का स्मरण करता है। यह ऋषियों का देश है। हर डाक्टर को ऋषि-तुल्य होना चाहिए।

मेरे प्यारे छोटे डाक्टर्स...! मैं भक्त हूं, आस्तिक हूं। विज्ञान व तर्क की दृष्टि से असंगत बातें सोचा करता हूं। मूर्तिपूजक हूं। मंत्र जपता हूं। साधुओं की सेवा करता हूं। आप पूछेंगे कि ये सब क्यों करता हूं?"

वे भावावेश में आ गये।

"डाक्टर्स!" उनकी आवाज बड़ी ऊंची है। "दवा और रोग के बीच में एक बड़ा राज़ है। मैं उस राज़ की चर्चा अभी नहीं करूंगा। आगामी वर्षों में आप लोगों को उस राज़ का पता चल जायेगा। ऐसा राज़ होने से ही मैं आस्तिक और भक्त हो गया। रोगियों को बचाने का काम न डाक्टर का है, न दवाओं का। वह प्रभु का है।"

पूरा घंटा बीत गया। पर किसी को पता नहीं चला। देवदास को लगा कि एक आंधी उभरी और थम गयी।

"मैं अपनी बात समाप्त करता हूं। डाइसैक्शन हाल में आप सबका स्वागत है।"

डाइसैक्शन हाल बगल वाली बड़ी बिल्डिंग में है।

डाइसैक्शन हाल में प्रवेश करने पर देवदास के नथुनों में ऐसी तेज बदबू घुसी जिसका अनुभव पहले कभी नहीं किया था——उबाऊ तीखी गंध! देवदास को लगा जैसे कोई जलती चीज दिमाग के भीतर घुस गयी हो।

लंबा, विशाल हाल। तीन कतारों में पड़ी नौ मेजें। हर मेज पर लंबी पड़ी लाशें।

हाल की दक्खिनी ओर कडावर टंकी[1] है जिसमें लाशें पड़ी रहती हैं।

टंकी तालाब जितनी वड़ी है। उसमें फार्मलीन भरा है। हाल में फार्मलीन की गंध फैली है। उसमें लाशें पड़ी रहती हैं। मानो मौत का कुआं हो। हाल की पूर्वी दिशा में छोटे-छोटे कमरे हैं। ट्यूटर व लेक्चरर इन्हीं में बैठते हैं। मेडिको अपनी शंकाओं के समाधान के लिए बीच-बीच में इन्हीं के पास पहुंचते हैं।

आठ छात्रों के एक दल को एक पूरी लाश दे रखी है। दो छात्रों को केवल हाथ। दो छात्रों को एक पांव। देवदास को हाथ मिला है।

देवदास की सहयोगी है लक्ष्मी। लक्ष्मी को वह बंटवारा बिलकुल पसंद नहीं आया। वह कोई लड़की सहयोगी चाहती थी। मगर नाम के आद्यक्षरों के क्रम से छात्रों के दलों का बंटवारा होता था। हाजरी के रजिस्टर में वे जे. लक्ष्मी और के. देवदास हैं। नामों के आद्यक्षरों ने छोटे-छोटे हिताहितों को शुरू में ही तोड़ डाला है।

देवदास अपने सामने लंबी पड़ी लाश को कुछ क्षणों तक देखता रहा। इस शरीर से उसे जटिल एनाटमी सीखनी है। वह इस शरीर की एक-एक नब्ज व पुट्ठा अलग करके जीवन-कणिकाओं का विश्लेषण करने जा रहा है। देवदास ने क्षण भर उस लाश की मन-ही-मन पूजा की।

नश्तर, कैंची, फोरसेप्स——सब खनकने लगे। ट्यूटर व लेक्चरर लोग हाल में आ गये।

डाइसैक्शन हाल में जान आ गयी। तब तक किसी अज्ञात दिशा से आवाज उठी——

"डाक्टर्स!"

प्रो. डी. कुमार डाइसैक्शन हाल में आ गये हैं।

"देखिये! जानते हैं कि आपके सामने क्या पड़ा है? कभी न सोचना कि ये स्टील की मेजों पर लंबी पड़ी लाशें हैं। ये लाशें मानव के विलक्षण अंतरंग अवयवों का निरीक्षण और अध्ययन के मार्ग में आप लोगों का पहला महत्वपूर्ण कदम हैं। आपको इनके लिए ऐसी दया व सम्मान से पेश आना होगा कि जैसे ये जीवित हों। सोचिए कि कभी इन्होंने भी हमारी ही तरह सम्मानित जीवन बिताया है।

"प्रभु ने इन्हें हमारी मदद के लिए भेजा है। मरने के बाद भी ये लोग अपनी जाति

---

1. शव-संरक्षण कुंड।

के काम आते हैं। आप लोगों ने पेटी से चाकू निकाला है न? जब आप चाकू चलायें तब वही सावधानी व दया इस शरीर पर चलाते समय दिखायें। ये लेटे हुए शव नहीं, जिंदा लाश भी नहीं, जीवात्मा हैं।"

उन्होंने आंखों से चश्मा उतारा।

"शुभकामनाएं!"

इतना कहकर प्रो. कुमार हाल में एक बार घूम आये। फिर लंबी आह भरते हुए वे अपने कमरे को लौट गये।

परंतु एक आदमी इन शवों के प्रति पूरा क्रोध व विद्वेष पालता है। वह है मुर्दाघर का चौकीदार, सोना। 'सोना' शब्द का अर्थ है स्वर्ण! मगर वह एक विडंबना है। काला शीशम-सा! गठी हुई चट्टान-सी मजबूत पेशियां। विद्वेष की लाल रक्तनलियों से भरी लाल व गोल आंखें। सिर और पलकों के अलावा शरीर के किसी अंग पर एक भी रोम नहीं।

सोना और उसके साथी कडावर टंकी से लाशें यों निकालकर मेज पर डालते हैं, मानो वे लट्ठे हों। वे इन लाशों को उठाते-हटाते जरा भी दया या सम्मान नहीं दिखाते। सोना बद्दुआ देते हुए ही इन लाशों पर हाथ रखता है।

देवदास ने डाइसैक्शन बाक्स खोलकर औजार बाहर रखे। चाकू की मूठ में ब्लेड लगाकर देवदास भक्ति-भाव से थोड़ी देर उसे देखता रहा।

देवदास ने लाश को एक बार छू लिया। लक्ष्मी ने भी अपनी लंबी कोमल उंगली से उसे एक बार छुआ। दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा। फिर वे एनाटमी की प्रारंभिक पुस्तक के पृष्ठ पलटने लगे। उस पुस्तक में साफ लिखा है कि कहां से कैसे शुरू करना है। तब तक ट्यूटर उनकी मेज पर मदद के लिए पहुंच गये। चाकू-कैंचियां चल रही थीं।

लाश के अकड़े हुए चमड़े में देवदास का नया चाकू तेजी से घुस गया। लाश पर एक हलकी सफेद लकीर लगी। खून या पेशियां बाहर नहीं आयीं। वह शरीर एकदम सूखा पड़ा था। फिर भी देवदास को लगा कि कोई अनजान चेतना उस शरीर में है।

घंटी बजी। उस दिन की क्लास खतम हो गयी।

छात्र अपने औजार लिये बाहर निकले। पता भी नहीं कब समय बीत गया। शाम हो गयी। अधिकांश मेजें खाली थीं। ट्यूटर लोग अपना कमरा बंद करके जा चुके थे। औजारों की खनखनाहट थम चुकी थी।

लक्ष्मी भी चली गयी।

देवदास ने पूरे हाल में नजर घुमायी। डाइसैक्शन हाल सूना है। खिड़कियां और दरवाजे बंद। कडावर टंकी के पास भी कोई नहीं। सोना और उसके साथी भी वहां नहीं। हाल में धीरे-धीरे हलका अंधेरा छा रहा है। अंधेरा गाढ़ा होता जा रहा है। हाल में अचानक बत्तियां जल उठती हैं। एक हलकी-सी मर्मर ध्वनि.... हवा चल रही है...

देवदास के सामने की स्टील मेज पर कराहने की आवाज सुनाई देती है। तब तक बेजान पड़ी लाश उठने लगती है। वह कुहनी टेककर उठती है और नीचे फर्श पर उतरती है। देवदास के बनाये घाव की तरफ देखते हुए वह रोती है। सूखी आंखों से आंसू छलछला आते हैं। देवदास के बनाये घाव से खून टपकने लगता है...

'डरो मत!' खरखरी-सी आवाज आ रही है, 'हम लोग हर रात को उठा करते हैं।'

तब तक सारी मेजों से खून टपकाते शव उठकर फर्श पर उतर आये। कडावर टंकी में फार्मलीन का कलकल नाद गूंज रहा था। टंकी से लाशें एक-एक करके किनारे आ रही थीं, मानो तरण-ताल से निकली हों। हाथ, पैर, सिरविहीन लाशें घिसटती हुई डाइसैक्शन हाल में आ रही थीं।

वे प्रेत-गान करती हुई नृत्य करने लगीं। वे सब नृत्य करते हुए देवदास की परिक्रमा कर रही थीं। उसे घेरे के भीतर ला रही थीं। उनमें से कोई लाश कह उठती है—'तुम यहां हमारी चीर-फाड़ करने आये हो न? हम तुम्हें जान से मार डालेंगे।'

प्रेत हाथ बढ़ाकर देवदास को पकड़ने की कोशिश कर रहे थे।

देवदास उनसे बचने के लिए भागा।

दरवाजे बंद थे।

वह कहीं पहुंच न पाया।....

देवदास उस चारदीवारी में थके पांवों भागने लगा...पीछे-पीछे लाशें भाग रही थीं...

पांच

फिजियालाजी विभाग के पीछे हरी घास का छोटा मैदान है। उसकी एक तरफ सिमेंट का तालाब हमेशा सजग रहता है क्योंकि उसमें मेढ़क भरे रहते हैं। मेढ़कों को बचाने के लिए ऊपर लोहे की जाली बिछाई गयी है। ऊपर चीलें मंडराती हैं। तैरते हुए मेंढ़क ऊपर उड़ते पक्षियों की ओर देखकर मन-ही-मन यह सोचकर लापरवाही से हंसते हैं कि वे पक्षी उनकी घूरती आंखों से पराजित हो गये हैं। मेंढ़कों को पूरा भरोसा है कि वे सुरक्षित हैं। मगर बेचारे यह कभी नहीं सोच पाते कि वे डाक्टरों की प्रयोगशाला के साधन हैं और किसी भी क्षण पकड़े जा सकते हैं। जब तक प्रयोगशाला की मेज पर इनके प्राण निकल नहीं जाते तब तक ये नौकरों का दिया भोजन खाते, बड़ी खुशी से तैरते रहते हैं।

तालाब के बिलकुल पास खरगोशों का बाड़ा है। चार-पांच बड़ी कोठरियां हैं। पौधों के पत्ते काटते-चबाते खरगोशों के परिवार उच्च-वर्ग के लोगों की तरह बढ़ रहे हैं। उनके भी दिन सीमित होते हैं। उनका नसीब लिखा जा चुका है। मगर उछलते-कूदते इन जीवों को ऐसी फिक्र नहीं सताती।

लोहे की जालियों वाले और भी कई कमरे यहां हैं। उनमें चूहे और गिनिपिग भरे पड़े हैं।

खाली स्थान के एक कोने में कुत्तों का बाड़ा है। कुत्ते बीच-बीच में सेवकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं।

डाक्टर हसन प्रयोगशाला के पीछे का दरवाजा खोलकर मैदान में पहुंचे। उनके हाथ में एक किताब और कुछ कागज हैं।

हसन कभी बिना किताब के दिखाई नहीं देते। उन्होंने एक बार कहा था कि जब मैं मरूं तब मेरी पुस्तकों को भी मेरे साथ दफन कर देना।

मेडिको छात्र उनके पीछे चल रहे थे।

डाक्टर हसन के कपड़े ढीले और मैले थे। नेकटाई गुड़ीमुड़ी थी। बाल संवारे हुए नहीं थे। शायद कई दिनों से नहाये तक नहीं।

डाक्टर हसन थोड़ी देर तक छात्रों को ध्यान से देखते रहे। उनमें से एक छात्र को बुलाया। वह पास आया।

डा. हसन ने उसे सिर से पांव तक ध्यान से देखा। अपनी हथेली से उसकी ठुड्डी

सहलायी। टाई जांची। पैर से पैंट ऊपर उठाकर जूते की जांच की।

"गधे! क्या तू डाक्टर बनने आया है? तेरा चेहरा वैसे भी बदसूरत है। तूने दाढ़ी भी ठीक नहीं बनायी है। टाई इस्तरी नहीं की है। न जूता पालिश किया है। चल बाहर! मेरे सामने से हट जा।"

वह एक क्षण भी बरबाद किये बिना बाहर की ओर बढ़ा।

हसन ने उसे वापस बुलाया, "इधर आ रे! गधे के बच्चे!" अपनी पैंट टटोलकर दस पैसे का सिक्का निकाला। पूरी क्लास को दिखाने के बाद उसे दिया और कहा, "एक नया ब्लेड खरीद लेना।"

पूरी क्लास हंस पड़ी।

एक छात्र सब की हंसी थम चुकने के बाद भी हंसता रहा तो डा. हसन ने उससे कहा, "ज्यादा मत हंसो। तुम्हारी बारी भी आयेगी।"

हसन नये मेडिको छात्रों की रैगिंग करने में होशियार हैं। वे बोले, "रैगिंग डाक्टरी शिक्षा की संस्कृति है। रैगिंग से तुम्हें अच्छा डाक्टर बनाया जाता हैं। जो धूप में मुरझायें उनकी यहां जरूरत नहीं है। वे यहां न आयें। डाक्टरों को किसी भी समस्या का सामना करने लायक होना चाहिए। कितनी ही हंसी उड़ायी जाये, उसे नहीं बोलना चाहिए। कितना ही दर्द पहुंचाया जाये, रोना नहीं चाहिए। दिल चट्टान जैसा होना चाहिए। मगर इलाज करते समय उसे मोम हो जाना चाहिए।"

डा. हसन लोहे की जालियों के साथ-साथ चलने लगे। छात्र उनके पीछे हो लिये। खरगोश व गिनिपिग्स की तरफ इशारा करके उन्होंने कहा, "ये जीव तुम लोगों से अधिक चतुर हैं। ये कोट व टाई तो नहीं पहनते, मगर इनकी सेवा अनमोल है। ये बेचारे तुम मूर्खों के बलि के बकरे बनते हैं।"

हसन छात्रों को फटकारने में लाजवाब हैं। अध्यापन की भी उन्हें बड़ी लगन है। उनके सवालों का जवाब जरा भी चूके तो बस इंपोजीशन तक लिखायेंगे। गलत जवाब देने पर बेंच पर मुर्गा बना देंगे।

छात्रावस्था में हसन बड़े कुशल थे। उन्होंने कितने ही स्वर्णपदक जीते! एम.बी.बी. एस. करने के बाद उन्होंने अपना निजी क्लिनिक प्रारंभ किया। मगर प्रैक्टिस नहीं चला पाए। प्रतिभा व कुशलता के बावजूद उन्हें रोगियों का सम्मान नहीं मिला। पहनावे में हसन देहाती थे, व्यवहार में रूखे। यही बात रोगियों को उनसे दूर रखने के लिए काफी थी।

जब चिकित्सा में अपनी असफलता स्पष्ट हो गयी, तब हसन ने उच्च शिक्षार्थ फिर से कालेज में प्रवेश लिया। फिर से वे सर्वोत्तम छात्र प्रमाणित हुए। सर्वाधिक अंकों से सारी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए।

अध्यापन के क्षेत्र में डाक्टर हसन का जवाब नहीं। उनका जीवन प्रयोगशाला और

पुस्तकालय को समर्पित हो गया। वे शादी करने की बात भूल गये। ग्रंथ ही उनका परिवार था। जब तक आंखें नींद से बंद नहीं होतीं तब तक पढ़ते रहते। पढ़ते-पढ़ते सो जाते और किताब छाती पर रखी रहती। नींद टूटते ही वे फिर से पढ़ने लगते। जागते समय कभी वे आंखों को आराम नहीं देते थे।

डाक्टर हसन ऐसे अध्यापक हैं जो छात्रों को प्यार करना नहीं जानते। पता नहीं, कि कहीं प्यार दिखाने की असमर्थता उसका कारण तो नहीं। वे छात्रों से ऐसा व्यवहार करते मानो काढ़ा पी रहे हों। उनकी कक्षा में कोई मजाक, चुटकुला या निश्छल हंसी तक नहीं फूटती।

डा. हसन को न कपड़ों का शौक था, न भोजन का। भूख लगने पर कुछ-न-कुछ खाते-पीते। सोते समय कपड़े नहीं बदलते थे। उन्हीं कपड़ों को दूसरे दिन भी चलाते। कभी पैरों में दो तरह के मौजे दिखाई पड़ते। खुदा जाने वे कब नहाते!

हसन प्रयोगशाल में घंटों प्रयोगार्थ अपने प्यारे जीवों को दवाओं की सुई लगाते, उन्हें दुलारते-पुचकारते। कभी उनकी चीरफाड़ करनी पड़ती तो उन्हें बड़ा कष्ट होता। वे अपने दुर्लभ जीवों पर बड़ी नजाकत से और दयापूर्वक चाकू चलाते।

डाक्टर हसन बड़ी देर तक उन जीवों के बीच घूमते रहे, चक्कर लगाते रहे। वे कुछ भूले हुए-से लगते हैं। "हां, वही।" उन्होंने किसी खास व्यक्ति को संबोधन किये बिना कहा। उनके बर्ताव में एक बुद्धिजीवी की सारी सनक प्रकट होती थी।

वे एक कुत्ते को लेकर प्रयोगशाला के भीतर चले गये। छात्र चुपचाप उनके पीछे पहुंचे। मेज पर कुत्ते को लिटाया।

चपरासी एक बड़ी सिरिंज में बेहोशी की दवा भरकर ले आया।

डा. हसन बोले, "मैं इस श्वान महोदय को निश्चेत करने जा रहा हूं। तुम लोग इस कुत्ते से भी बदतर हो।" उन्होंने छात्रों की तरफ दृष्टि डालकर जोड़ दिया।

सुई शरीर में प्रवेश कर गयी तो कुत्ता भूंकता, कुछ शरारत करता रहा। सिरिंज का पिस्टल आधा बढ़ चुका तो कुत्ता शांत हो चला। पूरा भीतर पहुंचा तो पूरी तरह शांत हो गया। कुत्ते के शरीर पर चाकू चला। खून व मवाद बाहर आया। चाकू, कैंची और फोरसेप्स बारी-बारी से चलते रहे तो कुत्ते का हृदय बाहर प्रकट हुआ। इस बीच कुत्ते ने हिलने की कोशिश की तो डाक्टर अनजाने बोल उठे--"नो!"

कुत्ता निश्चल हो गया। दवा की बेहोशी में भी वह मालिक के आदेश का पालन कर रहा था।

कुत्ते के हृदय से बिजली का उपस्कर जोड़ने के बाद डा. हसन कुत्ते में अलग-अलग दवाएं सुई से चढ़ाने लगे।

छात्र ध्यान से मेज के चारों ओर खड़े थे। देवदास व लक्ष्मी अगल-बगल में थे।

सबकी निगाहें मशीन में लगे ग्राफ पर लगी थीं।

डा. हसन को किसी शीशी की दवा के विषय में शक हुआ। वे निश्चेत पड़े कुत्ते के शरीर में उस दवा को चढ़ाने में झिझके। उस दवा की शीशी की नाम-पर्ची उतर गयी थी।

डा. हसन ने ज्यादा नहीं सोचा। उन्हें वह औषधि संदिग्ध लगी। उस दवा का असर जानने के लिए उन्होंने वह दवा अपनी बाईं बांह की नब्ज में सिरिंज से चढ़ा ली।

डा. हसन की आंखों की पुतलियां ऊपर की तरफ चढ़ने लगीं। उनका चेहरा सफेद हो रहा था। उनके हाथ से सिरिंज नीचे गिर पड़ी।

डा. हसन बेहोश होकर गिर पड़े। सबका सम्मिलित चीत्कार उठा। लड़कियों का चीत्कार जोर से सुनाई दिया।

डाक्टर और अटेंडेंट लोग दौड़े आये। वे डा. हसन को एक स्ट्रेचर पर लिटाकर मेडिकल वार्ड ले चले। किसी छात्र को वहां प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी गयी।

देवदास और लक्ष्मी कैंटीन की तरफ चले।

लक्ष्मी को देवदास—एक पुरुष—को पार्टनर स्वीकार करने में दिल से एतराज था। मगर मेडिकल कालेज ऐसी जगह नहीं है जहां अपनी पसंद-नापसंद चल सके। वहां वर्णमाला का कायदा होता है। इसलिए प्रियजनों को एक-दूसरे से दूर रहना पड़ा, और दूसरे लोगों को पास।

लक्ष्मी कठोर अनुशासन में पली हुई लड़की है। लक्ष्मी के पिता बड़े होशियार व मेहनती तो हैं, साथ ही बड़े रूखे भी। लक्ष्मी पिता को पसंद नहीं करती थी। उलटे नफरत करती थी। उनका जीवन-दर्शन था——टाइम इज मनी। एक-एक मिनट मूल्यवान है।

कठोर पिता के घर पर फौजी कायदा है। वे संतान पर आदेश थोप देते थे। लक्ष्मी को बगीचे में एक फूल तोड़कर सूंघने, बिल्ली की पीठ सहलाने, सांझ के आसमान को क्षण-भर देखने या चांदनी रात में घर के बाहर टहलने की अनुमति न थी। लक्ष्मी जैसे पाठ्य-पुस्तकों की चारदीवारी में आजीवन कारावास के दिन बिता रही थी।

कालेज में बड़ी मुश्किल से मिलने वाली छुट्टी के दिन लक्ष्मी के लिए बेहद खुशी के मौके होते हैं।

धीरे-धीरे लक्ष्मी में कुछ परिवर्तन नजर आने लगा। वह देवदास से पाठ्य-पुस्तकों से बाहर की बातें करती। शुरू में देवदास लक्ष्मी का दिल बहलाने की कोशिश करता था। उसके प्रिय विषय का पता लगाना बड़ा कठिन रहा। फीका खाना, बोर करने वाले कमजोर अध्यापक, सेशनल मार्क, प्रयोगशाला की झंझटें, आदि तक उनकी बातें सीमित रहती थीं।

प्रयोगशाला में दो-दो छात्रों को एक माइक्रोस्कोप मिलता है। हिस्टोलाजी में बड़े

ध्यान से स्लाइड को माइक्रोस्कोप से होकर परखते समय देवदास का पांव या हाथ अगर लक्ष्मी के बदन को अनजाने में कहीं छू जाता, तो अस्वस्थ लक्ष्मी की परेशानी देखते ही बनती थी। उन दिनों देवदास अपने आकर्षण व व्यक्तित्व के बारे में कम आश्वस्त था। वह बार-बार अपने आइने में अपनी सूरत निहारता रहता। त्वचा को नरम बनाने वाली कई तरह की क्रीम लगाता। इसमें उसका समय और पैसे बरबाद होते थे।

उन दिनों देवदास लक्ष्मी को एक बार छूने के लिए ललकता तो था, मगर उसे कभी उसका मौका नहीं मिलता था। देवदास लक्ष्मी के बदन से निकलती सुगंध पर, या टेलीफोन पर उसकी बातचीत में महसूस होती मिटास के बारे में नहीं बोलता था। ऐसे सस्ते तरीके एक युवक के योग्य नहीं थे।

वह मेडिकल कालेज की खास कैंटीन है। वहां रोगी या बाहरी लोगों का प्रवेश मना था।

अकसर सभी मेजों पर भीड़ होती थी। एक प्याला चाय के बहाने दुख बांटने वाले लोग। अधिकांश मेजों पर जोड़े नजर आते।

कुछ मेजों पर ट्यूटर और सीनियर रेजिडेंट बैठे हैं। उनकी बातचीत सेमिनार पर, वेतनमान पर, या विभागाध्यक्षा की त्रुटियों पर होती। वे बड़ी धीमी आवाज में फुसफुसाते थे।

लक्ष्मी और देवदास एक कोने में बैठ गये। लक्ष्मी ने वेजिटेबिल कटलेट और लस्सी का आर्डर दिया। देवदास ने फ्रेश लेमन-जूस का।

देवदास ने कहा, "तुम तो वैसे भी मोटी होती जा रही हो। कटलेट, घी और मक्खन और चर्बी बढ़ायेंगे। तुम ऐसी मोटी गैया बन जाओगी कि कोई मर्द तुम्हें हांक नहीं पायेगा।"

"तुम तो सींकिया पहलवान हो, कुछ न खाने वाले सींकिया।"

लक्ष्मी थोड़ी देर तक खूब हंसती रही। छोटे-छोटे मजाक करते हुए खूब हंसना उसकी आदत है। फिर भी लक्ष्मी की हंसी खुबसूरत लगती है। खासकर खिलखिलाहट! उस समय उसका सारा बदन हिल उठता है। वह चलती गुड़िया जैसी हो जाती है। मगर कोई भी शरारत करते समय उस गुड़िया का धागा देवदास की उंगलियों में रहता है। वह जरा-सा धागा खींच लेता है और लक्ष्मी चुप!

कैंटीन में उस दिन की बातचीत का विषय रहा——डा. हसन की विशेषताएं। वैसे वे उनकी चर्चा नहीं करते थे।

जिस दवा के विषय में शक हुआ, उसे जानवरों में प्रयोग करने के पहले अपनी देह में प्रयोग करने वाले उस महान व्यक्ति की ईमानदारी के सामने देवदास देर तक मौन रहा।

"क्या सोच रहे हो? किस दुनिया में हो?"

''लक्ष्मी! मैं अब किसी भी दुनिया में नहीं हूं। न मेरी कोई दुनिया ही है। मेरी अपनी दुनिया आने वाली है।''

''देखो जी!'' लक्ष्मी ने कहा, ''यह मजाक करने का वक्त नहीं है।''

''हंसी-मजाक? अरे, यह मजाक नहीं। स्त्रियों के लिए रसोईघर की सब्जियां ही गंभीर विषय होती हैं। खाना खाना और बच्चा जनना——इनसे बढ़कर और कोई गंभीर विषय उनके लिए नहीं होता। हाय री मेरी फूटी किस्मत! तुम मेरी पार्टनर निकलीं।''

''मेरी बात भी दुर्भाग्य की है।'' लक्ष्मी ने कहा, ''बुद्धिजीवी काठ के उल्लू होते हैं। अभी इसका पूरा पता लगा।''

लक्ष्मी की बात सुनकर देवदास खुश हुआ। लक्ष्मी मामूली बात से आगे बढ़कर गहराई से सोचने लगी है।

गलियारे में चलते-चलते वे सैंट्रल आउटडोर पर पहुंचे। शाम का वक्त था। दर्शकों की भीड़ बढ़ गयी थी।

रिसेप्शन की बत्तियां जलती-बुझती रहती हैं। रिसेप्शन काउंटर की सुंदर गोरी युवती काले टेलीफोन को चूम रही है।

फाटक पार करते हुए देवदास ने चौकीदार प्यारेलाल से पूछा, ''कुछ पता लगा?''

सिर झुकाये प्यारेलाल ने पूछा, ''किसका?''

''डा. हसन का?''

''किसी को भीतर आने नहीं देते, मालिक!''

असमंजस में ही वे भीड़-भरे गलियारों में से आगे बढ़े।

छह

जाड़े का मौसम शुरू हो गया। दिन छोटे होने लगे। सुनहले गेहूं के लंबे-चौड़े खेतों की छाती पर कुहरा छा गया। खेत के उस पार क्षितिज में आसमान और धरती घुल-मिल गये थे।

डा. डी. कुमार ने महीन, ऊनी चादर बदन से उतार दी और बिस्तर से उठे। कांच की खिड़की खुली तो ठंडी पछुआ हवा और ओस की नमी भीतर पहुंची।

नाइट गाउन की डोरी कमर में कसकर बांध ली। उन्होंने खिड़की पर कुहनी टेके, सर्द सीखचों पर माथा लगाये, बाहर की ओर देखा। टाट ओढ़े हुए गधे कतार में अपने काम पर जा रहे हैं। उनके पीछे एक आदमी भी। उसने भी टाट ही ओढ़ रखी है। ठंड से बचने के लिए जानवर और आदमी दोनों के लिए एक ही टाट। सन के धागों से मिलती गरमी का मजा दो भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीर ले रहे थे। एनाटमी के प्रोफेसर यह दृश्य बड़ी देर तक देखते रहे।

वैसे शरीर शरीर में क्या अंतर होता है? पच्चीस साल से शरीर-विज्ञान सिखाते डा. कुमार ने सोचा। आदमी के मांस और जानवर के मांस में क्या अंतर है? संभवतः उन दोनों के फाइबर्स की बुनावट में फर्क है! स्वाद में अंतर हो सकता है। मगर स्थाई रस कौन-सा है? प्रोटीन। आग में जलते समय आदमी के मांस और जानवर के गोश्त, दोनों ही से बू आती है। चिता में जाने पर सभी समान हैं।

डा. कुमार के लिए आज बड़ा व्यस्त दिन है। दो-दो कक्षाओं में अध्यापन करना है। प्रथम वर्ष के छात्रों का विषय है– 'मस्तिष्क' तथा दूसरे वर्ष के छात्रों का–'गर्भपात्र'। अध्यापन के दिनों में डा. कुमार बड़े तनाव में रहते हैं। पच्चीस साल से पढ़ाते तो हैं, फिर भी अध्यापन उनके लिए सहज नहीं हो पाया है। वे नयी-नयी जानकारी हासिल करते रहते हैं। अन्य अनुसंधाताओं के निष्कर्ष का अध्ययन करते रहते हैं।

डा. कुमार एनाटमी के आचार्य ग्रे का संदर्भ-ग्रंथ फिर से खोलकर बैठ गये। मेडिकल कालेज में जिस वर्ष प्रवेश लिया, उस वर्ष से प्रतिदिन वे यह ग्रंथ खोलकर देखते हैं। इसका हर पृष्ठ उनके लिए सुपरिचित है। आंखें बंद करके भी इस ग्रंथ का कोई भी प्रसंग वे बता सकते हैं। वे पूरा ग्रंथ बंद आंखों से ही पढ़ सकते हैं।

खुद सब-कुछ समझने से क्या लाभ? दूसरों को समझाना भगीरथ की साधना है। पचास छात्र पचास दिमाग रखते हैं। सबसे कम होशियार छात्र की समझ में जैसे आये वैसे सिखाना होगा। इसीलिए डा. कुमार इतनी मेहनत करते हैं।

वे अपने छात्रों को जान से भी ज्यादा प्यार करते हैं। वे उनकी हर शरारत को माफ कर देते हैं। वे उनके लिए एक आदर्श पिता समान हैं।

उनके विभाग से उत्तीर्ण होकर शिष्य बाहर चले जायें तो उसके बाद वे उन्हें मित्रवत मानते हैं। उनका यों सम्मान करते हैं मानो वे बुजुर्ग हों।

डा. कुमार ही छात्रों को पास और फेल करते हैं। उनकी अपनी राय यह है कि कक्षा के सारे छात्रों को परीक्षा में पास होना चाहिए। उनका दृढ़ मत है कि कोई छात्र अगर फेल होता है तो अध्यापक के नालायक होने से, न कि छात्र की अयोग्यता से। वे बारंबार अपने सहयोगी प्राध्यापकों को यह बताते भी हैं। वे फाइनल परीक्षा में बैठने वाले हर छात्र को पास करवाकर अपने विभाग से बाहर भेजने की पूरी कोशिश करते हैं। किंतु इस कोशिश के बावजूद कुछ छात्र ऐसे भी होते हैं जो मानो कसम खा चुके होते हैं कि वे नहीं सुधरेंगे। वे परीक्षा में फेल होने के लिए पैदा होते हैं।

"क्या पूरा नहीं हुआ?"

डा. कुमार की पत्नी विमला देवी ऊनी चादर ओढ़े बाहर आयीं और पूछने लगीं, "कल रात भी पढ़ते रहे। फिर भी जी नहीं भरा जो अब फिर से कसरत शुरू कर दी! क्या रात और दिन दोनों पर तुम्हारा हुक्म चल सकता है?"

विमला देवी उन्हें कोसने लगीं वे बिस्तर छोड़ते ही महाभारत छेड़ देती हैं। या तो पति शिकार होते हैं या नौकर। कोई न मिलता तो अपने आपको कोसती हैं।

विमला देवी पतिदेव से लंबे कद की हैं। थुलथुला बदन। ब्रा खोलने पर छातियां नीचे लटक पड़ती हैं। नितंब भारी-भरकम और भरी-भरी जांघें।

बाल संवारते और गाल पर हाथ फिराती वे बाथरूम चली जाती हैं।

नौकर नियमानुसार कॉफी के दो प्याले ले आया और बड़े विनय से मेज पर डाक्टर के लिए प्याला रख दिया। वे नौकर की तरफ निगाह डालकर मुस्कुराये। नौकर दूसरा प्याला हाथ में लिये विमला देवी के कमरे के बाहर उनकी प्रतीक्षा करने लगा। कमरे से बाहर निकलते समय अगर नौकर हाथ में कॉफी लिये न मिले तो विमला देवी आपे से बाहर हो जायेंगी।

विमला देवी दरवाजा खोलकर बाहर आयीं और नौकर के हाथ से कॉफी लेकर चुस्कियां लेने लगीं। नौकर दौड़कर अखबार ले आया। विमला देवी ने अखबार ले लिया, प्याला लौटाया और दरवाजा बंद कर लिया।

अब वे बड़ी देर तक बैठी रहेंगी। ऐसे समय में वे बड़े चैन से रहती हैं। प्रभु को धन्यवाद!

डा. कुमार ने नाइट गाउन उतारकर कुर्ता-पाजामा पहन लिये। वे बगीचे में थोड़ी देर टहलते रहे। अन्य दिनों की अपेक्षा आज अधिक फूल झड़े हैं। पौधों व फूलों को उंगलियों से सहलाते हुए वे बाहर निकले।

डा. कुमार प्रतिदिन प्रातःकाल मंदिर जाते हैं। वे बड़े भक्त हैं। यदि एक भी दिन मंदिर न जा पायें तो दिनभर बड़े बेचैन रहते हैं। बात-बात पर चिड़चिड़ाते हैं। विभाग में बड़ी गड़बड़ी होती है। छात्रों को डांटते हैं।

उस दिन मंदिर में भीड़ नहीं थी। वह देवी का मंदिर था। मंदिर की छत पर वानरों का खेल जारी था। कुमार को देखकर वे पीपल से नीचे उतरे। वे कुमार से हिले-मिले रहते थे। कुमार ने उनके लिए पीपल के थाले में मूंगफली, नारियल और गुड़ की भेली छोड़ दी। अपना हिस्सा हाथ लगते ही वानरगण पेड़ पर चढ़ गये। कुमार कुछ समय तक खड़े उन वानरों को देखते रहे। उन्होंने कुमार की तरफ मूंगफली के छिलके फेंक दिये।

मंदिर की घंटियां मौन हैं। डा. कुमार ने मंदिर की बड़ी घंटी को जरा-सा छू दिया। मौन भंग करते हुए घंटा गूंज उठा।

कुमार ने प्रार्थना की, "देवी! हमारी रक्षा करो।"

अपने नियमित रास्ते से लौटते हुए उन्होंने सोचा--विमला आज नहीं आयी। शुरू-शुरू में वह भी नियमित रूप से मंदिर आती थी। चार-पांच वर्ष यह क्रम चलता रहा। उसके बाद वह मंदिर आकर हर बार देवी से अपनी मनोकामनाएं मांगती थीं। प्रार्थना ने याचना का स्वर ग्रहण किया।

वह अब पूछा करतीं, "देवी! क्या तूने मुझे ठुकरा दिया?"

तब भी विमला देवी पर भगवती की कृपादृष्टि नहीं हुई।

विमला देवी गर्भवती नहीं हुईं। उसके विषय में वर्षों की प्रार्थना बेकार प्रमाणित हुई। प्रार्थना और प्रभु पर उनकी आस्था खत्म हो गयीं।

डा. कुमार को स्मरण हो आया। आज के अध्यापन का विषय है-- गर्भपात्र, स्त्री के पेट के अंतस् में लंगर डाले पड़ी हुई कोख। ध्यानपूर्वक भाषण सुनने वाले पचास सिर डा. कुमार को दिखाई देने लगे।

कम भीड़ वाली राह से डा. कुमार आगे बढ़े। भक्तगण बीच-बीच में फूल और प्रसाद लिये आ रहे थे।

घर के फाटक के भीतर आते हुए कुमार ने देखा कि विमला हाथ में कैंची लिये बगीचे में खड़ी है। वह गुलाब के पौधों की सेवा कर रही थी। उनसे वह लिपटती भी जा

रही थी। वह बगीचा और उसके फूल ही विमला के बच्चे हैं। डा. कुमार की नजर अनजाने विमला के पेट की तरफ गयी। हां, हां, कोख की तरफ। शायद देर हो गयी। डा. कुमार कालेज की तैयारी शीघ्र करने लगे। दो कक्षाओं में अध्यापन करने के दिन वे अधिक तनाव महसूस करते हैं। मंदिर की देवी भी उनका तनाव दूर नहीं कर पाती।

टाई बांधी तो लंबाई बढ़ गयी। कोट का बटन उलटा-सीधा हो गया। भीतर कमीज के बटन ठीक नहीं लगे थे।

नींबू का पानी पीकर डा. कुमार गैरेज की तरफ चल पड़े। वहां मोटर एक नयी ब्याहता की तरह उनकी प्रतीक्षा में है। कार का दरवाजा खोला तो अगरबत्ती की सुगंध आ रही थी। एक बार देवी की फोटो की ओर देखा। देवी मंदहास कर रही है। कुमार भी हंस पड़े।

देवी का स्मरण करते हुए वे मोटर चलाने लगे। गाड़ी पार्क करके सीधे कक्षा की तरफ बढ़ गये। कक्षा में चहल-पहल थी। उनके आते ही एकाएक खामोशी छा गयी। हमेशा की तरह उनके जूतों की चरमराहट गूंज उठी।

"प्रिय डाक्टर्स! आज मैं आदमी के सबसे सजीव अंग के बारे में बातचीत करूंगा। मन, चिंतन आदि क्या हैं? और कुछ नहीं, आदमी का मस्तिष्क है। क्या आप लोग समझते हैं कि कांच के मर्तबान में आराम करता मस्तिष्क निर्जीव है?"

मस्तिष्क को जिस मर्तबान में सुरक्षित रखा था उसकी ओर इशारा करते हुए उन्होंने आगे कहा, "यह मरा नहीं है। यह मरेगा भी नहीं।"

छात्र हंस पड़े।

"हंसना मत। यह तो लोगों की सहज प्रवृत्ति है कि गंभीर बातें सुनकर हंस पड़ते हैं। मगर आप लोग मामूली आदमी नहीं हैं। मामूली लोगों के बीच विशिष्ट व्यक्ति होने वाले हैं। आप लोग तो डाक्टर होने वाले हैं।

आप लोग मेरी सिखाई बातें भविष्य में स्मरण करें या न करें, एक बात बताये देता हूं। जीवन एक तराजू है, जिसके पलड़ों में वस्तु और बाट रखे जाते हैं। प्राण इस तराजू की सुई है। एक पलड़े से चीज हटाने पर तराजू उलट जायेगा। वही मौत है।"

डा. कुमार पढ़ाते समय हमेशा विषय से बहक जाते हैं। जीवन व मृत्यु उनके प्रिय विषय हैं।

क्लास के बाद छात्र डाइसैक्शन हाल में पहुंच गये।

सभी मेजों पर दोनों तरफ छात्र खड़े थे।

देवदास और लक्ष्मी को एक सिर मिला। वे उस सिर की तरफ देख रहे हैं। ट्यूटर और लेक्चरर लोग शंका-समाधान के लिए मेजों के नजदीक चक्कर लगाते रहे।

ट्यूटर की मेज पर मस्तिष्क के कई प्रकार के खंड पंक्तिबद्ध रखे हैं। ट्यूटर उन पर ब्रह्मस्वरूप दृष्टि गड़ाये बैठे हैं।

सबको लक्ष्य करके उन्होंने एक जनरल क्लास शुरू की।

गोल आंखों वाले, डा. ब्रह्मस्वरूप मस्तिष्क के बारे में बताने लगे। एक-एक वाक्य पूरा करते-करते उनके माथे पर पसीने की धारा बह पड़ती। वे उंगलियों से पसीना पोंछते। नजदीक खड़े छात्रों पर पसीने की बूंदें छिटक पड़तीं। कुछ क्षण बीतते-बीतते वे हांफने लगते थे। उनके कपड़े पसीने से तर होते। वे कक्षा में यों आते मानो दौड़ की प्रतियोगिता में भाग ले रहे हों।

हर प्राध्यापक कक्षा में अलग-अलग ढंग से पढ़ाता है। कुछ लोग धीमी आवाज में यों बोलते हैं मानो मंत्रोच्चारण कर रहे हों। कुछ लोग सब-कुछ तेज रफ्तार से कह डालते हैं, मानो जादू करते हों। कुछ लोग पहले से तैयारी किये बिना ऐन वक्त पर कक्षा में पहुंचते हैं और मनमाना बकते जाते हैं। कुछ अध्यापक कष्ट उठाकर तैयारी करके, धीरे से कक्षा में आकर अध्यापन करते, बीच में छात्रों के बीच में आकर उनकी शंकाएं दूर कर देते, और उस तरह से अध्यापन के आनंद में स्वयं अपने को भूलते हैं।

हॉल में शीघ्र ही हथौड़ी और बसूलों की आवाज उठने लगी। अटेंडेंट और लाशों के चौकीदार खोपड़ी फोड़ने में छात्रों की मदद कर रहे थे।

खोपड़ी फोड़ने में सोना ही सबसे माहिर है। हर मेजवाले 'सोना, सोना' पुकारते थे। चारों तरफ से छात्र उसकी मदद चाहते थे।

सोना आरी और हथौड़ा लिये देवदास की मेज पर पहुंचा। उसने खोपड़ी मेज पर लुढ़कायी और हथेली में लेकर उसका वजन देखा। फिर आरी लेकर एक खास बिंदु पर चलानी शुरू कर दी। हड्डी का चूरा इस्पाती मेज पर बिखरने लगा। आरी से बनायी छोटी दरार पर बसूला रखकर वह हथौड़ा चलाने लगा। तीन-चार बार हथौड़ा चलाया कि खोपड़ी फट गयी और मस्तिष्क बाहर दिखाई दिया। सोना खोपड़ी को यों फोड़ता, मानो नारियल तोड़ रहा हो। दोनों तरफ की हड्डियां हटायीं तो नवजात शिशु की तरह मस्तिष्क मेज पर आ गिरा! दो-तीन दफा लुढ़कने के बाद वह निश्चल हो गया।

वे मानव-मस्तिष्क को उसके स्थिर रूप में देख रहे थे। लक्ष्मी ने कोमल उंगलियों से उस मस्तिष्क का स्पर्श किया--सुनहले अक्षरों में अंकित करने की घड़ी! कितना ही घटनापूर्ण जीवन बिताकर मरे हुए एक आदमी के मस्तिष्क पर एक जीवित व्यक्ति उंगलियां रख रहा है! सचमुच वह 'वर्जिन टच' ही है। अगर जिंदा रहते समय ऐसा अनुभव होता तो वह व्यक्ति अवश्य गर्व करता।

मृत व्यक्ति ने, होश आने के दिन से लेकर कितनी ही अच्छी-बुरी बातें, मतलब

की और बेमतलब की बातें इस दिमाग से सोची होंगी।

"आर यू ड्रीमिंग?" डा. ब्रह्मस्वरूप ने देवदास के कंधे पर हाथ रखकर पूछा।

लक्ष्मी की ओर इशारा करते हुए ब्रह्मस्वरूप ने देवदास से कहा, "वैसे भी, तुम बुद्धू हो। ए वैरी मीडियाकर स्टुडेंट। सपने देखते रहोगे, तो तुम्हें छोड़ परीक्षाएं आगे बढ़ जायेंगी। यह लड़की भी चली जायेगी।"

ब्रह्मस्वरूप के शब्दों में व्यंग्य था। देवदास कुछ सकपकाया। बड़ी सावधानी से पढ़ने की घड़ी में सपना देखते रहना जुर्म है। अपराध-भावना से असमंजस में पड़े देवदास ने मस्तिष्क का स्पर्श किया। उस कोमल मस्तिष्क पर देवदास की खुरदरी उंगली का निशान लग गया।

देवदास की तरफ देखते हुए ब्रह्मस्वरूप ने कहा, "डोंट स्पायल इट। इट्स बैटर दैन योर्स।"

ठीक है। देवदास ने जितना चिंतन किया उससे कहीं अधिक चिंतन इस मरे हुए व्यक्ति ने किया होगा। इस मस्तिष्क का स्वामी कौन है——कलाकार? चौकीदार? हत्यारा? पुरोहित? पागल? हो कोई भी। जीवित रहते समय वह व्यक्ति सोचता रहा होगा। नहीं तो मस्तिष्क में क्या इतनी सिलवटें पड़तीं?

लक्ष्मी भी उस राय से सहमत हुई।

इसी समय प्रिंसिपल के कार्यालय का चपरासी एक नोटिस ले आया।

डा. वजीरुल हसन नहीं रहे।

मानो एक बम-विस्फोट हुआ!

कालेज की छुट्टी! सभी लोग मेडिकल की तरफ चल पड़े। लोगों का तांता।

डा. हसन का पार्थिव शरीर लोगों की श्रद्धांजलि के लिए आडिटोरियम में रखा गया।

शव पर फूलों के हार और गुलदस्ते चढ़ाने वालों की भारी भीड़।

आडिटोरियम में शोक-सभा होने वाली थी। पूरी खामोशी!

रिटायर्ड ब्रिगेडियर, प्रिंसिपल सिर उठाये माइक के सामने खड़े हुए। वे आंसू-भरे, भीगे स्वर में कुछ देर तक बोलते रहे। और भी कई लोगों ने भाषण दिये। सभी डा. हसन की निःस्वार्थ सेवा की प्रशंसा कर रहे थे। अनुपम विद्वत्ता, कर्तव्य के प्रति लगन, जीवों के प्रति दया आदि का स्मरण बारंबार किया गया।

पूरे कालेज ने खड़े होकर उस महान अध्यापक की स्मृति को श्रद्धांजलि दी और दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की। हसन ऐसे महान अध्यापक थे, जिन्होंने किसी जानवर पर प्रयोग करने की दवा अपनी नब्ज में चढ़ाकर प्रयोग किया और मृत्यु का

वरण किया।

डा. हसन की लाश को दफनाया नहीं जा सका। उन्होंने अपना शव मेडिकल कालेज को दान देने का वसीयतनामा पहले से लिख रखा था। अपने प्रिय शिष्यों को एनाटमी सीखने के लिए अपना शरीर भी दिया।

सात

ठंड से ठिठुरती रात! बाहर हवा सांय-सांय चल रही है। बंद खिड़कियों की दरार से सर्द हवा तीर की तरह कमरे में सीत्कार करती आ रही है। कमरे का साथी रजाई ओढ़े सुहावनी नींद का मजा ले रहा है। मेज के नीचे से सर्दी पैंट के अंदर सरकती बढ़ रही है।

बाहर गाढ़ी खामोशी! हवा की सांय-सांय के अलावा कोई स्वर या आहट नहीं। सभी छात्र ऊनी पोशाक पहने, ऊनी चादर ओढ़े कमरे के भीतर सो रहे हैं। सख्त जरूरत पड़ने पर भी बाहर जाने की हिम्मत को तोड़ती सर्दी। परीक्षा के दिन होने के कारण सभी कमरों में बत्ती जल रही है।

"जागते रहो...!"

चौकीदार छज्जे से पहरे की आवाज दे रहा था। उस आवाज से वातावरण मानो सजीव हो उठता था।

रूम-हीटर जल रहा था।

देवदास ने हीटर के सामने तलवे बढ़ाकर गरमा लिये। ताजगी महसूस हुई।

कमरे में पहुंचते-पहुंचते रात के आठ बज चुके थे। विलंब के लिए देवदास को जरा भी रंज नहीं रहा। एक बड़ा पवित्र कार्य करते-करते विलंब हुआ था। देवदास और साथी आज डाक्टर हसन के भौतिक अवशेषों को पिरोने में व्यस्त रहे।

प्रथम वर्ष के छात्रों को डा. हसन की लाश डाइसैक्शन के लिए मिली थी। डाइसैक्शन पूरा होते-होते दो-तीन महीने हो गये। छात्रों ने हसन के शरीर को काटते-छांटते अपने भावी जीवन के लिए लाभ उठाया। प्रोफेसर कुमार ने शुरू में ही चेतावनी दी थी कि सारी हड्डियों को सुरक्षित रखना चाहिए।

देवदास, लक्ष्मी और अन्य सीनियर छात्रों ने मिलकर डा. हसन की सारी हड्डियां इकट्ठी करके उबालीं और साफ करके तथा पालिश करके उन्हें स्थायी रूप से पिरो दिया है। पूरे महीने की कड़ी मेहनत। डा. हसन का अस्थि-कंकाल कांच के खूबसूरत कठघरे में प्रो. कुमार के कमरे में लटकाया गया है। एक छोटी उंगली की हड्डी तक नष्ट नहीं हो पायी।

प्रो. कुमार ने कांच के कठघरे में ताला लगाकर, जेब में चाभी रखी। फिर हाथ बांधे उसके सामने खड़े-खड़े आंखें बंद करके कोई वेदमंत्र दुहराते रहे। प्रार्थना समाप्त होने

पर उनकी आंखों की लाल नसें उभरी थीं। उन्होंने कहा, "लाडले बच्चो! तुम लोगों ने आज एक पुण्य कार्य किया है। डा. हसन आगे युग-युग तक हमारे साथ होंगे। स्वर्ग में बैठी उनकी आत्मा हमारी ये हंसी-मजाक देखती रहेगी।"

देवदास और बाकी सब लोग जब बाहर निकले, तो उनकी आंखें गीली थीं। देवदास कुछ परेशान है। परीक्षा में अब बहुत कम दिन रह गये हैं। पढ़ने की सामग्री तो पहाड़-सी पड़ी है। उस पर चढ़ना है तो नीचे से शुरू करना है।

वह बार-बार सोचा करता है, कि किस शक्ति ने मुझे मेडिकल कालेज में पहुंचाया। जो भी हो, उसे महसूस नहीं होता कि वह शक्ति उस पर दया या प्रेम रखती है।

रोज आठ बजे क्लास शुरू होती है। एक बजे तक चलती है। कोई अध्यापक किसी दिन न आये, तब भी छुट्टी नहीं होती। दूसरे अध्यापक पढ़ायेंगे। विश्राम या छुट्टी का पता तक नहीं। कभी-कभी एक बजे भी क्लास समाप्त नहीं होती। कुछ अध्यापक एक बजे तक ही मूड में आते हैं। उन पर मानो तब देवता आ जाते हैं। फिर क्लास और लंबी होती जायेगी। कोई छात्र अगर अध्यापक को घंटा बीत जाने की याद दिलाये तो फिर उसे जिंदगी भर उसी क्लास में बैठना पड़ेगा।

दोपहर को दो कौर निगलकर कालेज लौटने के बाद अधिकांश समय प्रयोगशाला में रहना पड़ेगा। पांच बजे तक दमघोंटू, तंग, छोटी प्रयोगशाला में रहना पड़ेगा। आंख व मन, पढ़ते-सोचते थक जायेंगे। कहीं कोई भूल कर दी तो गालियों की बौछार पड़ेगी। वापस कमरे में पहुंचते-पहुंचते सांझ हो जायेगी। फिर अगले दिन के लिए प्रैक्टिकल रिकार्ड तैयार करना होगा। पुस्तक देखते-देखते आंखें अपने आप बंद हो जायेंगी। रोज-रोज इम्तिहान चलता है। ज्यादातर मौखिक ही। बीच-बीच में अप्रत्याशित रूप से लिखित परीक्षा भी। अध्यापक ने भाषण की ठीक तैयारी न की हो, तब भी छोटी-मोटी परीक्षा हो ही जायेगी।

जो हड़बड़ाता है उसे तो सबेरे से सबेरे तक काम-ही-काम होगा। फिल्म देखने, किताब पढ़ने या गाना सुनने तक की फुरसत न रहेगी। जीवन के बाहर के दिन लोहे से ढंके पत्थर जैसे हो गये।

देवदास ने स्टोव जलाकर केतली में पानी रखा। प्याला भर गरम चाय गले के नीचे उतरे तो ठंड कम हो, नींद भी नहीं सतायेगी।

चाय पीकर देवदास एकाध बार कमरे में चहलकदमी करता रहा। दरवाजा खोला और धीरे से बाहर निकलकर बरामदे के छोर वाले बाथरूम की तरफ चलने लगा। ऐसा महसूस हुआ कि वह बर्फीले पानी में तैर रहा है। हथेली व कान सुन्न हैं।

बाथरूम से लौटा और हथेलियों को आपस में रगड़ते हुए गरम करके पढ़ने लगा। दस मिनट भी नहीं बीते थे कि चेहरा पुस्तक से चिपक गया।

पांच बजे के लिए अलार्म लगाकर देवदास रजाई में सिमट गया। बत्ती नहीं बुझायी।

दिन मानो सरपट दौड़ रहे थे।

परीक्षा का दिन आ गया।

पचपन परीक्षार्थी थे। पिछली बार 40 प्रतिशत छात्र ही पास हुए थे। विभाग में यह खबर फैली थी कि अब की बार पास होने वालों का प्रतिशत उससे भी कम रहेगा।

एनाटमी की प्रैक्टिकल और मौखिक परीक्षा शुरू होने वाली है। हॉल के सामने छात्र व्यग्रता से परीक्षा की आखिरी तैयारी कर रहे हैं। परीक्षा शुरू होने की घंटी बजी। हथेली को जानकारी और खून देने वाले स्नायुमंडल का जो उद्गम कांख में है उसे डाइसैक्ट करना था।

प्रैक्टिकल दो घंटे में पूरा करना था।

देवदास चाकू, कैंची, फोरसेप्स आदि बक्से से बाहर निकालते-निकालते कांपने लगा। कुछ देर में हृदय की धड़कन स्थिर हो गयी। उंगलियों पर काबू पा लिया।

एक घंटा पूरा होते-होते देवदास को यकीन हो गया कि बड़े खतरे के बिना काम चल जायेगा। एक भी नस या नाड़ी कहीं टूट जाये, तो एक साल गया।

देवदास ने सिर उठाकर देखा कि लक्ष्मी कहां है। वह सातवीं मेज पर एक खोपड़ी हाथ में लिये खड़ी, देवदास की तरफ देख रही थी।

दोनों मुस्कुराये।

लक्ष्मी ने भी सफलता के राज का पता लगा लिया होगा। वरना वह कभी नहीं हंसती।

किंग जार्ज मेडिकल कालेज के एनाटमी विभाग के अध्यक्ष, डा. चौधरी बाहरी परीक्षक थे। वे सज्जन थे। छात्रों को प्यार करते थे। इतना ही नहीं, डा. कुमार उनके शिष्य भी थे।

अधिकांश छात्रों का डाइसैक्शन पूरा हो गया तो प्रो. चौधरी और डा. कुमार डाइसैक्शन हाल में पहुंचे। हॉल में एकदम खामोशी थी।

डा. चौधरी छह फुट लंबे और इतने ही मोटे व्यक्ति थे। डा. कुमार उनके साथ जब चलते तब हाथी और हाथी का बच्चा जैसे लगते। डा. कुमार सिर उठाकर डा. चौधरी से बातें करते थे।

वे दोनों पहली मेज के छात्रों के पास पहुंचे। छात्र कांपता खड़ा है। चौधरी उसके कंधे पर हाथ रखे ढाढ़स देते हुए सवाल पूछते हैं। कितने अच्छे परीक्षक!

चौथी मेज पर शमीम अहमद है। शमीम अहमद जन्म से हकलाता है। चौधरी के सवाल के जवाब में शमीम की ठुड्डी हिल उठी, पर कोई आवाज बाहर नहीं आई। बेचारे की घबराहट बढ़ी तो हकलाहट भी बढ़ी। चौधरी ने शायद सोचा कि वहां खड़े रहे तो बेचारे की ठुड्डी की हड्डियां टकराकर टूट जायेंगी। वे अगली मेज पर पहुंचे। कैसी विडंबना थी! उस मेज का छात्र मदनन, शमीम से भी ज्यादा, हकलाने वाला निकला। प्रो. चौधरी

ने कोई प्रश्न किया तो मदनन पहले से अधिक हकलाने लगा।

"अरे धर्मेन्द्र!" डी. कुमार को प्रो. चौधरी इसी प्रकार पुकारते थे।

"क्या तुम यहां एक ही नस्ल के जानवरों को पाल रहे हो?"

डी. कुमार दौड़े आये। दोनों जोर से हंस पड़े। हकलाने वाले छात्र भी हंसे। दोनों बच गये। डा. चौधरी निश्चय ही एक दयालु व्यक्ति हैं।

चौधरीजी एकाएक देवदास के पास पहुंचे। वे क्रम से परीक्षा नहीं लेते। मन में जैसा सूझता वही क्रम! कभी दाएं चलते। फिर पीछे की तरफ। प्रो. चौधरी एक कलाकार हैं। उन्होंने देवदास से दो-तीन प्रश्न पूछे। देवदास ने मूर्खतापूर्ण उत्तर तो नहीं दिये। फिर भी उसके उत्तर संतोषजनक नहीं रहे।

"चलो!"

प्रो. चौधरी देवदास को स्पेसिमेन वाले कमरे में ले चले। वहां कितने ही प्रकार की चीजें हैं, जैसा कि बड़ी स्टेशनरी दुकान में होती हैं। अनेक हड्डियां, अनेक शीशियों में भीतरी अवयव, डाईसेक्ट करने से पूर्णतः बाहर दिखाई देता हुआ लगा पूर्ण शव-शरीर।

चौधरी ने देवदास को एक एक्सरे दिखाया। छाती और पसलियों का।

देवदास कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे सका।

"नाम क्या है?" प्रो. चौधरी ने पूछा।

"देवदास।" उसने कहा।

प्रो. चौधरी ने हंसते हुए कहा, "वैरी गुड एंड करेक्ट आन्सर! कम-से-कम एक सवाल का जवाब तो ठीक दिया!"

देवदास को यकीन हो गया कि इस परीक्षा में बुरी तरह फले हो जायेगा।

प्रो. चौधरी ने पूछा, "योर रोल नंबर?"

"थर्टीन।"

"थर्टीन!" चौधरी जरा-सा चौंके। फिर क्षण भर सोचकर प्रश्न किया, "इज इट ए लकी नंबर?"

देवदास में जाने कहां से, हिम्मत आ गयी।

"सर, आफ कोर्स इट इज एन अनलकी नंबर। बट नाउ इट इज अप टु यू! हां, प्रो. चौधरी, यू कैन मेक इट लकी ऑर अनलकी।"

देवदास की पीठ थपथपाते हुए प्रो. चौधरी हंस पड़े।

"यू कैन गो।"

परीक्षा का परिणाम निकला तो पचपन छात्रों में से सिर्फ उन्नीस पास हुए। उनमें देवदास व लक्ष्मी दोनों हैं।

वे अब अपने प्रिय डा. कुमार से विदा लेने के लिए मजबूर हैं। एनाटमी और

फिजियालाजी की पढ़ाई खतम हो गयी। कल से क्लिनिकल क्लास शुरू होगी। आगे वे स्टेथस्कोप का संगीत सुनेंगे। रोगी, नर्स और आह-कराह का संसार उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

परीक्षा पास करने पर प्रोफेसरों और अध्यापकों से आशीर्वाद व विदा लेने की परंपरा है। देवदास और लक्ष्मी डा. कुमार से मिलने गये।

डा. कुमार बढ़िया रंग का सूट पहने हैं। हीटर जल रहा है। देवदास व लक्ष्मी पर एक नजर डालने के बाद वे फिर से पुस्तक पढ़ने लगे।

देवदास प्यार व आदर से प्रो. कुमार की तरफ देखता रहा। आगे उनसे भेंट नहीं होगी। लगता है, बहुत कमजोर हो गये हैं। पलकें सूजी हैं। जैसे रात भर जागकर पढ़ते रहे हों। पके, महीन बाल बिलक्रीम लगाकर संवार रखे हैं। बीच-बीच में काले केश चमक रहे हैं।

प्रो. कुमार रोलिंग चेयर में बैठे थे। सिर उठाकर उनकी तरफ ध्यान से देखा। उनका मुखमंडल कांतिमय हो उठा। वे छात्रों को अपने बच्चे की तरह प्यार करते हैं।

डा. कुमार ने प्रश्न किया, "क्या बात है, डाक्टर्स?"

"हम पास हो गये, सर!"

देवदास और लक्ष्मी ने एक ही स्वर में कहा। संगीत की-सी ध्वनि! लक्ष्मी की तरफ देखकर डाक्टर ने कहा, "तुम्हारे पास होने की बात मेरी समझ में आती है। बट व्हाट एबाउट द अदर डाक्टर ?"

"मैं भी पास हुआ ! सर।"

देवदास ने एकाएक उत्तर दिया।

अप्रत्याशित सफलता ने उसे मानो पागल बना दिया हो।

डा. कुमार बोले, "वंडरफुल डाक्टर! मैंने कभी उम्मीद नहीं की थी कि तुम पास हो जाओगे। मैं इसका यकीन नहीं कर पाता।" डा. कुमार एक बैरागी साधु की तरह बोल रहे थे।

उन्हें तब लगा कि कोई पुकार रहा है——

"हे धर्मेंद्र!"

देवदास व लक्ष्मी उनके सामने भक्ति, श्रद्धा और बड़े प्रेम से हाथ जोड़े खड़े रहे। प्रो. कुमार के ओंठ धीरे-धीरे हिलने लगे। उन्होंने कमरे की दाईं तरफ के कोने में रखे कांच के कठघरे की तरफ देखा। उसमें एक और महान व्यक्ति का कंकाल लटक रहा था।

"मेरे सामने नहीं, वहां जाओ, उस अस्थि-कंकाल के सामने हाथ जोड़ो। सारा जीवन छात्रों के लिए प्रयोगशाला में आहुति देने वाले उस महापुरुष को नमस्कार करो। उनके सामने मेरी कोई हस्ती नहीं।"

देवदास और लक्ष्मी कांच के कठघरे के सामने हाथ जोड़े खड़े रहे। उनके पीछे पैरों की आहट सुनाई दी। हां, प्रो. कुमार। वे भी हाथ जोड़े खड़े हैं। वहां एक सामूहिक प्रार्थना हो गयी।

देवदास की आंखें नम हो रही हैं।

अस्थि-कंकाल हिल रहा है। उसमें मांस, खून, मज्जा, नब्ज आदि सब लौट रहे हैं। डा. हसन की आंखें हिल रही हैं। उनके उपहास के शब्द सुनाई दे रहे हैं---

'कौन-से जंगल से आ रहा है, भाई तू?'

डा. हसन की आवाज पूरे कमरे में गूंज रही है। देवदास उसकी लहरों में बहता जा रहा है।

आठ

तीनों तरफ कांच की दीवारों से घिरे ड्यूटी-रूम में नर्स और हाउस-सर्जन अपने काम में बहुत व्यस्त हैं। मैट्रन हेलन सिंह बड़ी खूबसूरत और चुस्त हैं। अवस्था चालीस वर्ष के करीब है। उनकी मोहक आंखों में पूरा अस्पताल झलक रहा है। हल्की लिपिस्टिक-लगे ओठों पर मुस्कुराहट लुका-छिपी खेल रही है। जिस रास्ते से वह जाती है उसमें बेला की खुशबू महकती है।

फर्श पर कागज का एक टुकड़ा पड़ा मिला। इसी पर मैट्रन हेलन सिंह सिस्टर मेरी को डांट रही हैं। अंग्रेजी में गाली दे रही हैं। सिस्टर की समझ में बात आयी या नहीं, क्या पता! सिस्टर मेरी अपना-सा मुंह लेकर ड्यूटी-रूम के भीतर चली गयी।

सफेद कोट पहने सात-आठ मेडिकल छात्र वार्ड में आ गये। उनमें देवदास और लक्ष्मी भी हैं। वे छह नंबर वाले बेड के पास चले। आज उन्हें उसी बेड पर पड़े हुए रोगी को जांचना है।

उनकी पहली क्लिनिक क्लास है। सभी स्टेथस्कोप सावधानी से लिये चल रहे हैं। कुछ लोगों ने कोट की बड़ी जेब में स्टेथस्कोप रखा है। देवदास ने उसे अपने गले में ढंग से टांग लिया है। लक्ष्मी उसे हथेली में कसकर पकड़े हुए, शान से दोनों तरफ देखती चल रही है।

रोगी पूरे बदन पर चादर ओढ़े लेटा है। दो-दो कंबल भी ओढ़े हैं। उसका सूखा बदन सर्दी को हरा नहीं पाता। वह बेड से स्थायी रूप से चिपका हुआ है। चादर के भीतर हलकी-सी भी हरकत नहीं दीखती। शक था कि सांस भी चल रही है या नहीं।

देवदास ने चादर सिर से हटा दी। छोटा-सा गोल सिर, सिर पर उठे हुए छोटे बाल, वह भी सफेद रूई जैसे। बंद पलकें, सूजे कोरों में बिजली की बत्ती की रोशनी प्रतिबिंबित हो रही है। पीला चेहरा, खून बिलकुल नहीं। रक्तहीन, मोटे होंठ, उनके बीच से लार के साथ बुलबुले उठते हैं, और बीच में फूट जाते हैं।

रोगी ने बड़ी मुश्किल से आंखें खोलीं। उसने उनकी तरफ मानो सवाल-सा करते हुए देखा——आपको क्या चाहिए? आंखें बेजान तो थीं, फिर भी वे मानो कह रही थीं, कि मुझे तंग मत कीजिए।

सिस्टर मेरी स्टील ट्रे लिये रोगी के पास पहुंची। उसने शीशी की दवा सिरिंज में

भरने के बाद चादर के भीतर से रोगी की कमजोर बांह बाहर निकाली। उसके सूखे-से पुट्ठे में जब दवा चढ़ाने लगी, तब उस पीले चेहरे में दर्द की शिकन धीरे से नजर आ रही थी। सुई लगी हुई जगह को नर्स थोड़ी देर तक सहलाती रही। कुछ क्षणों तक ही सही, वह कोमल स्पर्श पाने से रोगी के चेहरे की सिलवट-भरी पेशियों में राहत महसूस हुई।

रोगी के पास कोई सहायक नजर नहीं आया। गरीब देहाती होगा। ईश्वर के बुलावे के इंतजार में बेड पर पड़ा था।

डा. ख्वाजा हाथ में नीले रंग की अटैची लिये मंद पवन की तरह वार्ड में प्रविष्ट हुए। वार्ड में खामोशी छा गयी। रेजिडेंट और हाउस-सर्जन दौड़े-दौड़े आये। उनके पीछे सिस्टर्स और स्टाफ नर्सें भी। जो रोगी बेड पर उठकर बैठ सकते थे, उन्होंने बेड पर बैठकर हाथ जोड़ डा. ख्वाजा का स्वागत किया। जो हिलने-डुलने में असमर्थ थे उन्होंने मुस्कुराते होठों से उनकी अगवानी की। सिस्टर ने उनके हाथ से अटैची ले ली और उनके पीछे जाकर खड़ी हो गयी।

''वार्ड में कोई समस्या नहीं है न?''

''नहीं सर!'' रेजिडेंट बोले।

सिस्टरों व नर्सों को संबोधन करके डाक्टर ने पूछा, ''सब कुशल-मंगल?''

''आपकी मेहरबानी है,'' वे बोलीं।

डा. ख्वाजा फरिश्ते जैसे हैं। वे इतना आहिस्ता चलते हैं मानो चलते हुए चींटी तक को तकलीफ नहीं देना चाहते।

डा. ख्वाजा का जन्म एक राज-परिवार में हुआ था। उन्हें छात्र-जीवन में कई स्वर्णपदक मिले थे। दिखावे या टीमटाम का उन्हें बिलकुल शौक नहीं था। मुशायरों और किताबों से उनकी खास दोस्ती थी। शांत प्रकृति। गेहुंआं रंग, चौड़ी छाती। डा. ख्वाजा जब हंसते मानो सारा संसार हंसता। उनके बोलते समय पूरी दुनिया सुनती। फाटक पर खड़ा प्यारेलाल तक उनका लेक्चर सुन सकता था।

''नया बैच है न?'' नवागत छात्रों को ख्वाजा ने देखते हुए पूछा।

''जी सर!'' छात्रों ने सम्मिलित स्वर में कहा।

''वेल्कम, एंड आल दि बेस्ट।''

''थैंक्यू सर!'' कोरस गूंज उठा।

डा. ख्वाजा ने प्रत्येक छात्र का स्टेथस्कोप श्रद्धा व भक्ति-भाव से लेकर कुछ प्रार्थना करके उसे लौटा दिया। यह उनका नियम था। वे स्टेथस्कोप पर गुरु के आशीर्वाद की मुहर लगाते हैं।

आठों छात्र बेड के चारों तरफ खड़े हो गये। डा. ख्वाजा एक तिपाइ पर जम गये।

उन्होंने रोगी के बदन से चादर हटायी। उसके छोटे बालों को सहलाया।

"बाबा! तबीयत कैसी है?" ख्वाजा ने सवाल किया।

बूढ़े ने जरा-सी आंखें खोलीं। देवदास ने श्रद्धापूर्वक उस रोगी को देखा। वह उसके भविष्य के जीवन का शुभारंभ था।

देवदास को डा. ख्वाजा ने बुलाया।

"येस, कम आन!"

देवदास ने जिंदगी में पहली बार स्टेथस्कोप अपने कानों में लगा लिया। डायाफ्राम रोगी की छाती पर रखा। दिल की धड़कन गूंज रही थी। किसी दिव्य लोक से सुनाई देने वाली धड़कनें।

"सुना?" डा. ख्वाजा ने पूछा।

"जी सुना।" देवदास ने कहा।

"क्या सुना?"

"दिल की धड़कन की आवाज।"

"नहीं।" डा. ख्वाजा ने कहा, "वह धड़कन नहीं, लब-डप, लब-डप——वही है। वही हृदय का संगीत है।"

डा. ख्वाजा एक अभिनेता की-सी कुशलता से सिखाते हैं। उनकी सिखाई बातें छात्र कभी भुला नहीं पाते। सिखाते समय वे गाते-नाचते, अभिनय करते। खुदा ने मानो ख्वाजा को पढ़ाने के लिए ही पैदा किया हो।

डा. ख्वाजा को धन-दौलत और पद-प्रतिष्ठा में कोई दिलचस्पी नहीं है। आज तक उन्होंने प्राइवेट प्रैक्टिस नहीं की। वे विलायत में कई साल रहे। पर लौटते समय सिर्फ दो जोड़ी पुराने कपड़े ही लिये भारत लौटे। और कुछ नहीं लाये। लाने के लिए उनके पास और कुछ नहीं था।

डा. ख्वाजा क्लिनिक मेथड के प्रारंभिक पाठ सिखाने लगे। उनका प्रत्येक शब्द श्रोता के मन की गहराई में उतरता था।

डा. ख्वाजा बोले, "सुनो, बात समझ में न आये तो जरूर बताना। मैं दस बार दुहराने को तैयार हूं, सौ बार भी। जरूरत पड़े तो दिन भर सिखाऊंगा।"

वे अपने अध्यापन के विषय में तल्लीन होते जा रहे थे। आंखें खुलती और बंद होती हैं। होंठ हिल रहे हैं! गालों में सिलवटें उभरती व गायब होती हैं। वे अध्यापन के नशे में मस्त हो रहे हैं।

वार्ड के रोगियों को जांचने का वक्त हो गया। डा. ख्वाजा ने घड़ी देखते हुए आवाज दी——

"सिस्टर, राउंड्स!"

डा. ख्वाजा आगे चले। सीनियर रेजिडेंट, हाउस-सर्जन, छात्र, सिस्टर, नर्स और आया का एक छोटा-सा दल उनके पीछे चला।

डा. ख्वाजा को देखने भर से रोगी की आधी बीमारी दूर हो जाती है।

"बाबा, कैसे हैं?" डाक्टर ने पूछा।

रोगी का पेट फूला था। उसने उठकर बैठने की कोशिश की, पर उठ नहीं पा रहा था। डाक्टर ने उसे मना किया। रोगी हाथ जोड़े बेड पर लेटा रहा।

रोगी के पेट में शोथ भरा है। सिस्टर और नर्स उसे सिरिंज से बाहर निकालने के साधन लिये तैयार खड़ी हैं।

डा. ख्वाजा ने रोगी के पेट को हाथ से सहलाया। कुछ देर उसी तरह उनकी हथेली पेट को टटोलती रही।

"देखो छात्रो! यह हथेली और उंगलियां ही हमारे मुख्य औजार हैं। भीतर की चीज का पता करने के लिए ये ही काफी हैं। किंतु मन की एकाग्रता चाहिए। दिमाग से भी थोड़ा काम लेना चाहिए। सूझ-बूझ चाहिए। सबसे बढ़कर, रोगी के प्रति दया-भाव चाहिए।"

शरीर के भीतर से पानी बाहर निकालने का छोटा-सा औजार रोगी के पेट में लगाया। अक्सर प्रोफेसर लोग ऐसे छोटे-छोटे काम नहीं करते। मगर ख्वाजा हर काम खुद करना पसंद करते हैं। वे रोगियों को यहां तक समझाते हैं कि गोली कैसे निगलनी चाहिए। एक रोगी को उन्होंने सुझाव दिया कि नींबू का रस, अंडों का पीला हिस्सा और शक्कर मिलाकर पीना चाहिए। झट कुछ याद आया तो उन्होंने कहा कि मैं समझा भी दूंगा। इसके बाद उन्होंने स्वयं एक गिलास साफ करके उसमें एक नींबू निचोड़ा, अंडे का पीला हिस्सा और चीनी डालकर चम्मच से खूब हिलाया और रोगी को पिला दिया। यह घटना कालेज में मशहूर है।

कुछ लोग ऐसे हैं जिनको विश्वास होता है कि वे जिस तरह बताते या करते हैं दूसरे लोग वैसा नहीं कर पायेंगे।

रबड़ की नली से पीला द्रव बाहर आने लगा। एक साफ शीशी में वह जमा हो रहा था। डा. ख्वाजा रोगी के पेट पर एक धाय की तरह हाथ रखे बैठे हैं।

आधी शीशी भर गयी तो डा. ख्वाजा ने सुई पेट से निकाल ली। शीशी को सावधानी से हाथ में लिया। हलके पीले रंग का साफ जल! धूल या मिट्टी बिलकुल नहीं। देवदास ने इतना प्यारा रंग पहले नहीं देखा था। चितेरा भी इस रंग को शायद ही कागज पर उतार पाये।

हाउस-सर्जन उस शीशी को लिये पैथोलाजी विभाग की तरफ चल दिया। वहां माइक्रोस्कोप उस शीशी का इंतजार कर रहा है। माइक्रोस्कोप और वैज्ञानिक मिलकर उस पीले द्रव के रहस्य पर प्रकाश डालेंगे।

"बाबा, डरने की कोई बात नहीं, चार-पांच दिन में आप चंगे हो जायेंगे," डा. ख्वाजा बोले, "सिस्टर, इसका रिश्तेदार कहां है?"

"कोई नहीं है," सिस्टर मेरी बोली।

"ऐं! कोई नहीं है?" डा. ख्वाजा ने अचरज भरी नजर से देखा।

"जिस दिन एडमिट हुआ था, उसी दिन साथ आया था, उसके बाद वह आदमी चंपत हो गया। अभागा, अनाथ है, डाक्टर!" मेरी ने कहा।

"ठीक," ख्वाजा सबको देखते हुए आगे बोले, "यह रोगी हमारा अपना रोगी है। कहावत भी है कि बेसहारे का सहारा खुदा है। हमें इसे खुदा होकर देख लेना चाहिए।"

"सर!" मेरी ने कहा।

"डाक्टर!" ख्वाजा ने हाउस-सर्जन को आवाज दी। हाउस-सर्जन आगे बढ़ा।

"इसकी सारी व्यवस्था मैं आपको सौंपता हूं। डाइट चार्ट कहां है?"

सिस्टर ने डाइट चार्ट दिया। उसे देख ख्वाजा बोले, "फलों का रस भी जोड़ दो। प्रोटीन डाइट अधिक देना।"

सिस्टर मेरी ने वार्ड की एक समस्या बतायी, "सर, सक्शन एप्रेटस खराब हो गया है।"

ख्वाजा ने तुरंत कहा, "नया लाना पड़ेगा।"

मेरी बोली, "स्टोर में नहीं है!"

"क्या, स्टोर में नहीं है?" डा. ख्वाजा की आंखों से अंगारे निकल रहे हैं। "नहीं है, तो उस पलटन वाले से कहो कि दिल्ली या कलकत्ता, या कहीं भी जाकर खरीद लाये।"

सुप्रिंटेंडेंट साहब और डा. ख्वाजा में नहीं बनती। सुप्रिंटेंडेंट साहब और प्रिंसिपल एक ही व्यक्ति हैं। वे अवकाश-प्राप्त ब्रिगेडियर सब-कुछ फौजी कायदे से ही करते हैं। वे कानून और एकाउंट्स की गुत्थियों में फंसे हुए हैं और हर बात को लाल फीताशाही में उलझाते हैं। मगर डा. ख्वाजा को इन बातों में कोई विश्वास नहीं है। वे तो रोगी के विश्वास, आराम और सुविधा का ही खयाल रखते हैं।

ख्वाजा कहा करते हैं——

"रोगी को इलाज के दिनों में खुश रहना चाहिए। रोग से मुक्ति पाने पर तंदुरुस्त रहना चाहिए। यह बात ईश्वर के चाहने पर भी नहीं हो सकती। लेकिन डाक्टर के चाहने पर संभव है।"

डा. ख्वाजा कुछ क्षणों तक मौन रहे। फिर उनका गुस्सा कम होने लगा। ख्वाजा बोले, "कल मेरे आने के पहले इस कमरे में नया सक्शन एप्रेटस दिखाई देना चाहिए। नहीं तो सबको बाहर कर दूंगा। मैं भी चला जाऊंगा। मेरी वजह से किसी रोगी को परेशानी नहीं होनी चाहिए। इसी की तो मुझे जिद है। उसी तरह दूसरों के कारण भी रोगी को

कष्ट न हो।"

वार्ड खामोश!

"समझे?" डा. ख्वाजा ने सवाल किया।

"जी सर!" सब एक ही आवाज में बोले।

"अच्छा, चलो!"

डा. ख्वाजा अगले बेड पर पहुंचे।

"बाबा, तबीयत कैसी है?" ख्वाजा ने पूछा।

सांवला नाटा आदमी। पहली नजर में वह भला-चंगा दिखाई देता है। मगर ध्यान से देखने पर उसके अंग-अंग में रोग का प्रकोप अनुभव होता है। आंखें गड्ढे में हैं। वर्षों से वे निर्जीव पड़ी हैं। माथे की सिलवटें कष्ट सहने का प्रसाद हैं। गालों की पेशियों में कोई आकर्षण, कोई लोच नहीं। उस आदमी ने जीवन में कभी किसी को प्यार नहीं किया होगा। गरदन सूनी पड़ी है। उसे किसी औरत की छुअन नसीब नहीं हुई है। छाती पर रोम नहीं है। एक मर्द, जिसमें न मर्दानगी है, न आकर्षण। बाबा गणपति जैसी तोंद! बिवाइयों से भरे तलुवे। स्थाई आलस के प्रमाण थे।

"बाबा, कैसे हैं?" सूखे कंधों पर हाथ से थपथपाते हुए डा. ख्वाजा ने पूछा।

"आराम बिलकुल नहीं!" रोगी ने कहा, "कल सबेरे दो अंडे और एक गिलास दूध लिया। दोपहर तक भूख नहीं थी। दोपहर को चावल, दही, टमाटर व सेब खाये। फिर पेट फूल गया। शाम को ब्रेड-जैम खाया। फिर से पेट फूल गया। रात को खिचड़ी खायी थी। फिर भी, न भूख है न प्यास! पूरे शरीर में सुरसुरी हो रही है। हथेली में सूजन है। नाड़ियों में दर्द। होंठ सूखते जा रहे हैं; जीभ भी सूख रही है। गले में, छाती में जलन है। कानों में कोई सीटी-सी बज रही है। सिर चकरा रहा है। पेट जल रहा है। चूतड़ जल रहा है। मन तड़प रहा है। लेटे रहने पर उठने को जी चाहता है; उठ बैठने पर लेटने का मन होता है। ये दोनों करते, चलने की इच्छा होती है। चलते समय सूझता है कि चुपचाप पड़ा रहूं। आंख खुलने पर अंधेरा! आंखें बंद करूं तो रोशनी। दिमाग में शैतान घुसे हुए हैं। मैं प्रभु को याद कर नहीं पाता। तब शैतान हाथ में लोबान लिये आता है। मगर मेरे पास बाइबिल है। वह खोलता हूं तो शैतान गायब! बाइबिल पढ़ते समय प्रभु दर्शन देते हैं। कल रात को भी मुझे प्रभु ने दर्शन दिये। इधर मेरी दाईं ओर, सिर के ऊपर, ज्योतिपुंज के बीच में, प्रभु मुस्कुराते हुए खड़े थे। उन्हें देखकर मैं पुलकित हो उठता हूं। अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए मेरे मुंह खोलते ही ईसा मसीह गायब हो जाते हैं। इसलिए गिरिजाघर से फादर को बुलवा लें। मुझे पाप की स्वीकृति करनी चाहिए। मेरी आखिरी घड़ी आ गयी है। मेरे मरने में अब ज्यादा देर नहीं है।"

डा. ख्वाजा ने घड़ी की तरफ देखा। फिर रोगी को सहलाते हुए कहा, "शाम को

आऊंगा। तब बाकी बातें करेंगे।"

"शुक्रिया।" उसने हाथ जोड़े।

"फादर की बात मत भूलियेगा।" दूर जाते डा. ख्वाजा और साथियों को देखकर रोगी ने कहा।

बाइबिल बंद करके छाती पर रखे, रोगी लेट गया।

ट्यूटर ने ख्वाजा से पूछा, "सर, क्या सैकियाट्री में रेफर करें···

"नहीं, नहीं!" ख्वाजा बोले

"गलत बातें करने वाले हर रोगी को मनोरोगी मत समझो। यह जो कह रहा है, वह उसके रोग का एक लक्षण है। वह पागल बिलकुल नहीं है।"

डा. ख्वाजा एकाएक बोले, "अगर जरा-सी सनक हो, तब भी सैक्रियाट्री में न भेजना। वहां पहुंचकर वह पूरा पागल बन जायेगा।"

नौ

साइकिल स्टैंड अस्पताल की इमारत के पीछे है। सही बात यह है कि अस्पताल साइकिल स्टैंड पर खत्म होता है। उसकी बगल में रेडियालाजी विभाग है जिसमें कैंसर के रोगी होते हैं। फिर कार्डियोलाजी एवं हृदय-रोग, उसके बाद न्यूरोलाजी, पीडियाट्रिक्स आदि अनेक विभागों की इमारतों को लांघकर ही साइकिल स्टैंड पर पहुंच सकते हैं। लोगों के चेहरों की तरह बीमारियों के भी अलग-अलग नाम दिये गये हैं।

प्यारेलाल इन सब बातों में मजा लेता है, मगर ड्यूटी के बाद इन सब मकानों को लांघकर साइकिल स्टैंड पहुंचने के लिए काफी दूरी पैदल तय करनी पड़ती है। इलाज करने के लिए क्या सचमुच इतने बड़े मकान चाहिए? जो शरीर मरने जा रहे हैं, उन्हें यों नक्शा बनाकर अलगाना क्या जरूरी है? यहां कोई इस चिरंतन सत्य पर ध्यान नहीं देता कि मृत्यु पवित्र होती है।

प्यारेलाल का बदन खाकी वर्दी के भीतर घुट रहा था। वर्दी पसीने से तर थी।

लंबे गलियारे से वह चला। गलियारा करीब आधा मील लंबा है। कहते हैं, क़िसी अमरीकी वास्तुशिल्पी ने इस भवन का निर्माण किया था। मगर चलते-चलते पैर जवाब दे जाते हैं।

गलियारे में रोज भीड़ लगती है। डाक्टर, छात्र, नर्स, स्ट्रेचर पर रोगियों को ले चलने वाले, मुलाकाती, रक्तदाता, रक्त की परीक्षा कराने वाले——सभी को जल्दी है। छात्र ही इसके अपवाद हैं।

प्यारेलाल ने कई डाक्टरों और दफ्तर के बाबुओं को पार किया। वह उन सबको सलाम करता जा रहा था। किसी-किसी ने देखा, कुछ ने नहीं भी देखा। बड़े लोगों की नजर में उनका सम्मान करने वाले दिखाई नहीं पड़ते। लेकिन भूल से कहीं उनकी बात काटी तो उनके रोंगटे खड़े हो जायेंगे।

प्यारेलाल स्टैंड पर पहुंचा। सैंकड़ों साइकिलें मोर्चे की तरह कतार में रखी हैं।

तीन-चार चौकीदार लापरवाही से सामने बैठे हैं। लगता था कि किसी यतीमखाने का पहरा दे रहे हों। किसी बात में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं। एक-एक साइकिल के भीतर पहुंचने पर वे मालिक को एक टोकन देते हैं। उसी नंबर का एक टोकन साइकिल के हैंडिल पर टांग देते हैं। साइकिल की सूरत पर उनकी नजर नहीं पड़ती। काम करते समय किसी

का चेहरा देखने की जरूरत नहीं है न? काम के मामले में हर आदमी और मशीन बराबर होते हैं।

प्यारेलाल ने भीतर जाकर अपनी साइकिल उठायी और और सरकस वाले जैसे करतब दिखाते हुए बाहर ले आया।

प्यारेलाल को बड़ी शरम आती है। दस-बारह साल पुरानी साइकिल की जगह एक नयी साइकिल खरीदने की इच्छा भी छह साल पुरानी हो गयी। अस्पताल में जिस दिन काम मिला उसी दिन सोचा था कि पहले वेतन से साइकिल खरीदेगा। मगर उस महीने में पत्नी का गर्भ गिर गया।

साइकिल में पैडल नहीं। पुराने पैडल की रीढ़ पर पांव रखकर फटी-पुरानी सीट पर चढ़ गया।

सायंकाल हो गया था। अस्पताल की लंबी परछाईं सुंदर, हरे मैदानों और बगीचों में छा गयी थी।

ठंडी छांह से होकर वह अपने लंबे पैरों से साइकिल चलाता रहा।

अस्पताल, हरे लॉन, और बगीचे—सबकी परिक्रमा करते हुए प्यारेलाल ने नर्सों के होस्टल की तरफ साइकिल बढ़ायी।

प्यारेलाल एक भी दिन उस होस्टल में हाजिरी दिये बिना अपने गांव नहीं लौटा। हर आदमी किसी-न-किसी जगह अनजानी सांकल से बंध जाता है। पलटन से अवकाश ग्रहण करके अपने गांव में एक नयी नौकरी पायी तो प्यारेलाल नर्सों के होस्टल से बंध गया। असल में वह होस्टल से नहीं बंधा है, होस्टल में रहती मैट्रन से बंधा है।

नर्सों का होस्टल लंबी-चौड़ी दीवारों के भीतर सुरक्षित है। दीवार के ऊपर कांच के हजारों तेज टुकड़े सिमेंट में स्थायी रूप से लगाये गये हैं। उस पर चिड़िया तक न बैठती हैं, न बीट करती हैं। वे कांच के टुकड़ों से डरती हैं। परंतु आदमी यदा-कदा रातों में उन दीवारों को लांघकर होस्टल में पहुंचते हैं, लड़कियों की खोज में।

प्यारेलाल ने अपनी साइकिल गेट के सामने, दीवार से सटाकर रखी और पहियों को सांकल से परस्पर बांध दिया। सांकलें बंधन के निशान हैं। कभी-कभी सुरक्षित होने के भी।

प्यारेलाल होस्टल के अहाते में पहुंचा। यहां 46 डबल रूम थे। समय शाम के साढ़े-चार बजे। मुलाकातियों की काफी भीड़ थी। सज-धजकर आये युवक साथिनों से गप लड़ाने में लगे हैं। कुछ जोड़े बाहर की तरफ चलने भी लगे हैं।

होस्टल की दीवार के बाहर कितने ही स्कूटर व साइकिलें हैं। सभी मुलाकातियों के हैं। वे कई तरह के हैं। कोई लड़कियों से मिलने आते हैं। कोई उनसे बेजा फायदा उठाने आते हैं। उन्हें देखकर ही प्यारेलाल समझ सका कि विषय-वासना का कोई ठिकाना

नहीं है।

प्यारेलाल को अस्पताल में पहले-पहल नर्सों के होस्टल की चौकीदारी मिली थी। चार-पांच वर्ष तक वह कितनी ही घटनाओं का चश्मदीद गवाह रहा था। बाद में उसका तबादला हो गया। तबादले में एक फाटक की चौकीदारी से दूसरे फाटक की चौकीदारी मिली। हम तो हमेशा पहरा देते रहते हैं। संपत्ति, रूप, सतीत्व——सबका पहरा देते हैं। मौत को छोड़ और सब चीजों का।

प्यारेलाल मैट्रन के कमरे के आगे लाल रंग के खरगोशों की तस्वीर वाले परदे के सामने क्षण भर खड़ा रहा। कमरा खुला पड़ा था। भीतर कोई खटका तक नहीं रहा तो प्यारेलाल ने दरवाजे की घंटी बजायी।

"कौन?" हमेशा का सवाल!

"मैं हूं मेम साहब, प्यारेलाल।"

"आओ!"

प्यारेलाल भीतर गया।

मैट्रन हेलन सिंह अपने प्रेमी पर आंखें गड़ाये बैठी है। प्रेमी और कोई नहीं, पुराने स्टैंपों का ढेर है। स्टैंप एलबम और कमरे के भीतर की कुछ सुंदर वस्तुएं ही हेलन सिंह की कमाई-पूंजी हैं। उस संसार में उसकी अपनी कोई और संपत्ति नहीं है। हां, उसकी नौकरी जो थी!

प्यारेलाल देर तक खड़ा रहा। मैट्रन हर स्टैंप की आकृति एवं प्राचीनता पर गर्व कर रही थी। अब उस व्यस्तता से जगने में काफी वक्त लगेगा।

सिलाई की मशीन पर कोई नया कपड़ा व बेलबूटे हैं। काफी समय तक सीते-सीते थकने पर मैट्रन ने एलबम खोला होगा। सब नियमित कार्यक्रम हैं। एकदम साफ शीशम की कुरसियां, गद्दे और कालीन! कमरे में एक ही चित्र है— बांसुरी बजाते कृष्ण का। हिंदू देवताओं में कृष्ण से ही उसे सबसे अधिक प्रेम है। उसने कितनी गोपिकाओं को संभाला था? सचमुच गजब का था! अचरज से मैट्रन ने कई बार खुद से यह सवाल किया था।

"मुझे संगीत से प्रेम नहीं है। पर, बांसुरी की आवाज मुझे पसंद है। शायद कृष्ण के प्रति ममता ही इसका कारण हो!" हेलन सिंह ने एक बार कहा था।

"मगर इन हिंदुओं को इतने देवताओं की क्या जरूरत पड़ी है? क्या अकेले कृष्ण काफी नहीं हैं?"

उसके बाद वह ठठाकर हंस पड़ी। हंसते-हंसते उसका दम फूलने लगा। कुछ देर तक वह कुछ नहीं बोल सकी। उसांस भरती रही।

एकाएक कुछ अलौकिक प्रेरणा-सी पाकर वह जग पड़ी तो गरजी, "प्यारेलाल! क्या ताक रहे हो? नहाने का पानी गरम किया?"

दोनों कुहनियां मेज पर गड़ाकर मैट्रन सामने खुले रखे एलबम को ही निहार रही थी।

प्यारेलाल आलिव (जैतून) तेल मलने के कारण चमकती हेलन सिंह की कलाई और पंखे की हवा में उड़ते शैंपू-लगे उसके सूखे तंबियाये केशों को बारी-बारी से देखता रहा। आश्चर्य! तंबियाये बालों के बीच में कोई-कोई सफेद लकीर-सी नजर आती है।

"दैया रे!" प्यारेलाल के मुंह से अनजान उसांस निकली! हेलन सिंह के केशों में सफेदी? जिस हेलन सिंह ने जीवन-भर की पूरी दौलत केवल सेहत पर लगायी थी, उसका भी बुढ़ापा?

"हां, क्या मेरी कोई चिट्ठी नहीं है?

"जी नहीं।"

मैट्रन रोज शाम को डाक की बात पूछती है। वह पिछले तीन वर्ष से किसी की एक चिट्ठी का इंतजार करती रहती है। रोज, रविवार को भी अपनी डाक पूछती है। मगर उसने कभी हेलन सिंह के नाम से चिट्ठी आती नहीं देखी। मैट्रन वाले पते के पत्र आफिस में ही भेजने का कायदा है।

नजर एलबम पर ही लगी है। आज शायद कोई नया स्टैंप मिला होगा। लोग बुढ़ापे में भी खिलौने पसंद करते हैं।

उसने झट सिर ऊपर उठाया। एलबम बंद किया।

"तुम क्या घूर रहे हो?"

"जी, मेमसाहब! अचानक कोई बात याद आ गयी!"

हेलन ने उंगली से मना किया और चेतावनी के स्वर में कहा, "प्यारेलाल, मैंने कितनी बार कहा है कि कुछ याद मत करो! आदमी सोचने, याद करने की आदत के ही कारण हारता है।"

वह आगे बोली, "आज मैं स्नान नहीं करूंगी। फिर भी गरम पानी चाहिए। हाथ-पैर और मुंह धो लूंगी।"

प्यारेलाल बड़े अदब से बाथरूम की ओर चला। वहां उसने बड़ी बालटी भर पानी में इमर्शन राड डालकर स्विच आन किया। बत्ती कुछ मद्धम पड़ी। इमर्शन राड की कलईदार मूठ पर पसीने की बूंदें उभरने लगीं। पानी में पसीना छोड़ती इमर्शन राड। हर एक की अलग-अलग आदत होती है––चाहे स्वर्ग में हो, चाहे नरक।

"प्यारेलाल!"

प्यारेलाल झट कमरे में पहुंचा। नाइटी में हेलन सिंह का शरीर कमलनाल-सा खिल रहा था।

"आज शनिवार है। मेरे लिए क्वार्टर रम काफी है। एक टिन सासेज भी।"

"मेम्साहब, ले आया हूं।"

प्यारेलाल बाहर गया और साइकिल के हैंडिल में लटकी झोली से सासेज का टिन और रम की 180 मिलीलीटर की शीशी निकाली।

मैट्रन दरवाजे पर खड़ी उसी की तरफ देख रही थी।

"ताज्जुब है, प्यारेलाल! तुम्हें मान गये। तुम्हें कैसे पता कि आज की मेरी पसंद क्या है?"

"मेमसाहब! मैं पिछले छह वर्षों से उस कमरे में..."

हेलन सिंह का चेहरा उदास हो गया। उनकी कलाई के तंबियाये रोम झट उठ खड़े हुए।

"प्यारेलाल! बकवास मत करो। कोई आदमी जीवन भर मेहनत करने पर भी दूसरे की पसंद को पढ़ नहीं पाता। समझे?... मैंने चौदह साल बिताने के बावजूद... हां, मेरा मुंह मत खुलवाओ!..." एक लंबी आह भरी और बोली——"तुम जाकर प्याज व टमाटर काट कर रखो।"

प्यारेलाल रसोईघर में चला गया। मैट्रन का कमरा चार हिस्सों में बंटा है——गेस्टरूम, बेडरूम, रसोईघर और हम्माम। उनका अपना बड़ा शानदार क्वार्टर अलग से है। तीन-तीन बेडरूम, गेस्ट रूम, रसोईघर, डाइनिंग रूम——सब हैं। बहुत बड़ा क्वार्टर। मगर वहां रहना उसे पसंद नहीं। उसने सुप्रिंटेंडेंट से कहा था, 'एक अकेला आदमी एक बड़े किले में रहे? मुझे चार लोगों की संगत में रहना है। भले ही, मैं अकेली हूं।'

प्यारेलाल ने प्याज और टमाटर काट दिये। उसकी आंखों में पानी आया। स्टोव जलाकर पंप किया। नीली लौ पर स्टील की छोटी देगची रखकर उसमें घी डाला। घी से पानी का चटकना बंद हुआ तो मैट्रन उठकर आयी।

प्यारेलाल देखता रहा कि टमाटर जूस में सॉसेज तैयार करने की कला कैसी है। ढक्कन खोला तो परिचित गंध कमरे में भर गयी। प्यारेलाल के मुंह में पानी भर आया।

मैट्रन ने शीशी खोलकर गिलास में रम डाली। एक पेग, बस प्यारेलाल को इतना ही चाहिए! पलटन में वह खूब पीता था——चार-पांच पेग। बिना सोडा के। ऑन दि रॉक। आज भी बिना सोडे के ही पीता है। मगर मात्रा में कुछ फर्क है। जीवन की स्थायी प्रवृत्तियां बिलकुल नहीं बदलतीं। कुछ-कुछ अंतर जरूर आता है।

सासेज की प्लेट पोंछने, साफ करने के बाद प्यारेलाल उठा।

मैट्रन कमरे में टहल रही थी। किन्हीं गहरे खयालों में डूबी। क्या देहरादून या लखनऊ में अपने को धोखा देने वाले प्रेमी की सगाई के दिनों की बात सोच रही थी? क्या पता? प्यारेलाल की समझ में कोई बात नहीं आयी। लोग राज़ को अपने दिल में छुपाकर रखते हैं। मन में ही नहीं, आत्मा में।

"प्यारेलाल, तुम जा सकते हो! बर्तन कल साफ करना।"

खाने के तुरंत बाद जूठे बर्तन साफ करना उसे पसंद नहीं। उसका विश्वास है कि बर्तन की धुलाई रसोई का सबसे घटिया हिस्सा है।

प्यारेलाल सीढ़ियां उतर गया। मैट्रन हेलन ने सिटकनी लगायी। दरवाजा खटाक से बंद। अपने पीछे दरवाजे का यों बंद होना प्यारेलाल को अखरता है।

नौकरी शुरू करने के दिन से वह यह आवाज सुना करता है। छोटे काम करने वाले के पीछे हमेशा बड़े का दरवाजा खटाक से बंद होता है। पलटन में वर्षों यह आवाज सुनी थी, अफसर के जूते पालिश करके उसका जांघिया धोते ही भाव उभरता रहा कि यह नौकरी है। मगर सारे काम करने के बाद जाने की अनुमति मिलने के पश्चात दरवाजा खटाक से बंद करने की आवाज ही सुन पड़ती। प्यारेलाल थकान से ढीला हो जाता।

वर्षों से वह यह आवाज सुनता आया है। पर कानों पर घट्टे नहीं पड़े। उनमें बड़ी सहनशक्ति थी! मन में भी। उसकी इंद्रियों में सबसे जबरदस्त कान ही हैं।

साइकिल में न घंटी है, न बत्ती। ठिठुरते तलुवे, पैडल पर पैर रखा और चल पड़ा।

अस्पताल की बड़ी-बड़ी इमारतों, छोटे-बड़े क्वार्टरों को लांघते हुए वह नगर की आम सड़क पर पहुंच गया।

करीब सात बजे। सर्दी के दिन थे। हलकी-सी बरफीली हवा चल रही थी। बिजली के खंभे दमक उठे। मोटर और रिक्शे बड़ी संख्या में चल रहे थे।

शहर को भी पार करके ही प्यारेलाल को अपने गांव में पहुंचना था। शहर से दो मील की तारकोली सड़क और उसके बाद खेत से होकर चलती कच्ची सड़क पार करनी थी।

शहर का शोरगुल दूर से ही सुनाई दिया। शहर मधुमक्खी के छत्ते के समान लगा। वह रोज उस छत्ते से होकर चलता था। व्यापार, उद्योग व मोल-भाव के बीच से छोटी-सी दूरी की यात्रा उस पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाती।

शहर आ गया। अब सरकस वाले की चतुराई से साइकिल चलाना होगा। प्यारेलाल और सावधान हो गया। लगा कि पूरा शहर रोशनी में दमक रहा है। नियोन बत्तियों की दिवाली! लोगों की भीड़! कई लोग रोज यों ही आया करते हैं। न कुछ बेचना है, न खरीदना। एक प्याला चाय तक पिये बिना वे शहर की सड़कों पर भटकते हैं। शहर के नजारे देखना ही उनका ध्येय है। अचानक एक बुढ़िया कहीं से प्यारेलाल की साइकिल के सामने आ पड़ी। वह टकराने ही वाली थी कि प्यारेलाल ने साइकिल रोक ली। फिर एक फीकी हंसी हंसते हुए वह दूसरी सड़क की ओर भाग गयी। कुबड़ी बूढ़ी ने देखा तो लंबी आह भरी। कुछ भी बताने में असमर्थ, प्यारेलाल ने साइकिल आगे बढ़ायी।

वह शहर को पार कर चुका था। अब मामूली दीयों के टिमटिमाते खंभे थे। वह

अकेला था। करीब और आधा घंटे की दूरी है। बीच में खाली दूध के डिब्बे साइकिल के दोनों ओर लटकाये दूध वाले प्यारेलाल को पार करते जाते थे। सड़क की बत्तियां और भी कम चमक रही थीं। सड़क मुश्किल से दिखाई दे रही थी। रास्ता वीरान था। एकाएक एक पागल अपने आप बड़बड़ाता हुआ पेड़ के पीछे से आ गया। उसकी धुंधली सूरत ही दीख पड़ी। पर उसकी गालियां खूब सुनाई दे रही थीं। वह शहर की तरफ जा रहा था। बरामदों पर आराम से सोने वालों की नींद हराम करता था। तारकोल-पुती सड़क से कच्ची सड़क पर पहुंचने के बाद झुटपुटा ही रास्ता दिखता है। प्यारेलाल राजपथ की बिजली से देहाती कच्ची सड़क के झुटपटों को अधिक पसंद करता था। प्रकृति ही जनमात्र को सुरक्षित रखती है। वह बीच-बीच में क्रोध भले ही करे फिर भी, दोनों हाथ खोलकर बारिश, धूप, सर्दी व गरमी देती है।

देहात की सरहद में कदम रखने पर पछुआ हवा की तेजी बढ़ी। अब की बार एक ऊनी कोट सिलवाना होगा। चार साल पुराना कोट फटने लगा है।

शीघ्र ही गांव की धुंधली रोशनी महसूस हुई। साथ ही भैंस के गोबर की बू भी। शहर की सरहद से गांव की तरफ देखा तो जलती चिताओं से भरा श्मशान-सा नजर आया। गांव में शहर-सी चमक-दमक नहीं रहती। मगर उसमें मानसिक शक्ति होती है। देहाती लोग जीवन को उसकी असली सूरत में देखते हैं। वैसे ही अनुभव भी करते हैं। वे दूध को दूध और दही को दही के रूप में पीते हैं। किसी के भी मुंह पर निःसंकोच अपने दिल की बात कह सुनाते हैं। पलटन में सुने शब्द 'हिपोक्रेसी' का अर्थ उसे मालूम नहीं।

देहात में कुल सात-आठ दूकानें हैं। उन पर भीड़ है। दूकान वाले दिन में सुस्ताते हैं। शाम होते-होते उनमें फुर्ती आती है। खेतों व पहाड़ियों से लौटने वाले मजदूर आटा, प्याज और मिट्टी का तेल खरीदने आ जाते हैं।

कई लोग प्यारेलाल से कुशल-समाचार पूछते जा रहे हैं।

"शहर से लौटे?"

उससे वापसी की ही बात अधिकांश लोग पूछते हैं। वापसी की यात्रा के विषय में सभी सोचते हैं।

ध्यानचंद की दूध की दूकान की बाईं तरफ की तंग गली से साइकिल उतारी। नल के पास औरतों की भीड़ है। उनकी आवाज तेज है। तांबे के बर्तन के जमीन से टकराने की आवाज से भी तेज। सबको पानी की जल्दी है। दिन भर चुगली-पंचायत रही होगी। शाम को थके-मांदे लौटने वाले पतियों का खयाल करके वे हंगामा करती हैं।

धुंधली रोशनी की पृष्ठभूमि में धुंधली परछाई फैलाये झोंपड़ियों के सामने से साइकिल बढ़ाते हुए प्यारेलाल अपनी झोंपड़ी में आ पहुंचा।

बड़ा सपूत हमेशा की तरह सामने बैठा पाठ याद कर रहा था। वह उस समय

गांधीजी का यश गा रहा था।

दीवार पर बैठी एक छिपकली उसे सुनते हुए, किसी छोटे प्राणी पर नजर गड़ाये दुम हिला रही है। पत्नी रोज रसोईघर में होती है। मगर आज बरामदे पर, सबसे छोटे बच्चे को चादर से लपेटे गोद में लिये बैठी है।

"क्या हुआ?" प्यारेलाल ने पूछा।

"बुखार...आग-सा तपता बुखार।"

प्यारेलाल ने कपड़ा हटाकर बच्चे के पेट को छुआ। आग-सा तपता शरीर! औरत का चेहरा सूखकर मुरझाया हुआ है।

प्यारेलाल भीतर गया। उस छोटे-से घर में सिर्फ दो कमरे हैं——एक सोने का, दूसरा रसोई का। बान की खटिया के नीचे रखी एकमात्र लोहे की पेटी बाहर निकाली। उसमें पुराने कपड़ों के बोझ से दबी पड़ी एस्प्रिन की दो गोलियां निकालीं। तीन सौ मिलिग्राम की दो गोलियां।

बाहर आकर प्यारेलाल ने एक डाक्टर की गंभीरता से कहा, "एक अभी दो——एक सबेरे।"

उसे झट अस्पताल का तिमंजिला भवन याद आया, जिसमें दवाएं भरी पड़ी हैं। उसने बड़े दर्द से लंबी आह भरी।

रसोई में धुंधली रोशनी ही थी। धुंआ नहीं था। जलावन के टुकड़े और उन पर कोयले के टुकड़े रखकर उसने आग जलायी। आग सुलगने लगी तो उस पर तवा रख दिया। गूंथे आटे की वह रोटी बेलने लगा——एक बांसुरी से।

दस

रविवार था। इसलिए बड़ी देर तक आंखें नहीं खुलीं। आलस में बिस्तर पर पड़े रहने को जी चाहता था।

हेलन सिंह को याद आया−−रविवार दूसरे दिनों से कम लंबा होता है। कुछ घंटे अनजाने कहीं खो जाते हैं। इतवार बिजली-सा कौंधकर गायब हो जाता है।

कमरे की पुताई काफी समय से नहीं हुई है। हेलन सिंह दीवार और छत की ओर नजर गड़ाये लेटी रही। छत पर कुछ अमूर्त चित्र उभरने लगे थे। चिड़िया, जानवर, आदमी, शैतान, देवता−वह अपनी कल्पना के अनुसार किसी की भी सृष्टि कर लेती थी। छत के ऊपर पानी जमा रहता था। इससे छत पर एक काली आकृति-सी बन गयी थी। उसकी ओर नजर डाली और कल्पना की कि कोई हाथी है। और कुछ क्षण देखती रही तो सूझा कि यह हाथी नहीं, नदी से घड़े में पानी लिये आती कोई औरत हे। एक ही मूर्ति जब कई सूरतों में दिखाई दे तो क्या होगा? उसे डर लगा। इन दिनों मन भी तीनों आयामों को पार करता जाता है। मैट्रन हेलन सिंह ने पढ़ा है कि चौथा आयाम पागलपन का होता है।

किसी ने दरवाजा खटखटाया। मुंह-अंधेरे कौन हो सकता है? वह उठी, नाइट गाउन की सिलवटें ठीक कीं। बाल और चेहरा ठीक से संवारते हुए दरवाजे की तरफ बढ़ी।

शायद मेरी होगी। रविवार उसके लिए भी छुट्टी का दिन है।

दरवाजा खोलने पर भूल मालूम हुई। एक लंबा-तगड़ा पुरुष। चौड़ी छाती! चारखाने वाला बुश-शर्ट! साथ में उसके कंधे तक लंबी स्त्री! पहले गाढ़े लाल रंग की साड़ी ही दिखाई दी। फिर चेहरा देखा। मिसेस तिवारी हैं!

हेलन सिंह चेहरे पर मुस्कुराहट ले आयी। मिसेस तिवारी ने पूछा, "अरे! यह कैसी नींद है?" मैट्रन ने तभी अपनी घड़ी पर नजर डाली। साढ़े दस बज चुके थे। हेलन सिंह को अचानक कोई बात याद आ गयी। तेजी से डाइनिंग टेबिल पर पहुंची। वहां खाली पड़ी रम की बोतल लिये बाथरूम की तरफ दौड़ पड़ी। दौड़ते हुए उसने आवाज दी−−"आप बैठिये। मैं अभी आयी!"

मिसेस तिवारी और उनका साथी पुरुष वक्त काटने के लिए पत्रिकाओं के पन्ने पलटने लगे।

"क्या मैंने बड़ी देर कर दी?" क्षमायाचना के स्वर में हेलन सिंह ने पूछा।

"हमें आज कोई खास काम नहीं है। अरे! मैंने अभी तक इनका परिचय नहीं कराया। ये मेरे पति हैं। श्री तिवारी।"

वह बड़ी लापरवाही से बात कर रही थी। पति से उसका व्यवहार और बातचीत ऐसी थी, मानो एक दोस्त से मिलवा रही हो।

तिवारी काफी लंबा और स्वस्थ था। घने बाल और चौड़े कंधे उसके पौरुष के प्रतीक थे। दाईं कलाई पर घड़ी थी। उसके चारों ओर रोएं पहरेदार की भांति खड़े थे। उन्हें खांसी आयी। लगा कि पूरा कमरा झनझना उठा।

हेलन सिंह ने पर-पुरुष को थोड़ी देर तक देखते रहने की भूल महसूस की तो तुरंत अपनी दृष्टि हटा ली।

"क्या पियेंगे?"

"मैं नींबू का पानी पीऊंगी।" मिसेस तिवारी अपनी जरूरत बताती हैं, चाहे मिले न मिले!

"आपको?" हेलन सिंह ने तिवारी से पूछा। पहली बातचीत! जान-पहचान की शुरुआत!

तिवारी निचला होंठ जरा-सा दबाकर हंस पड़े। हंसते वक्त दोनों हिस्से बराबर नहीं हैं। शायद बचपन में कोई बीमारी हुई हो। फिर भी हेलन सिंह को लगा कि वह हंसी मन को लुभाती है। असल में होंठ के एक ही हिस्से से हंसना है। दुख में दोनों भाग ठीक हैं।

उन्होंने कहा, "मेरे लिए सिर्फ एक गिलास ठंडा पानी!"

मिसेस तिवारी ने कहा, "इनके जैसा मेहमान मिल जाये तो खर्चा बिलकुल नहीं पड़ेगा। हर जगह सिर्फ ठंडा पानी ही पीते हैं।"

"अच्छी आदत है", मैट्रन ने कहा, "किसी को कोई तकलीफ नहीं होती। पानी-भरे बर्तन में गिलास डुबोना है या बर्तन से गिलास में उंड़ेलना है।"

हेलन सिंह को पूरे बदन में सिहरन महसूस हुई। उसके रोएं खिले।

तिवारी की तरफ देखे बिना उनकी पत्नी की साड़ी को परखते हुए मैट्रन ने पूछा, "आपके पतिदेव क्या करते हैं?"

मिसेस तिवारी शान से बोली, "लेक्चरर!" मानो दुनिया का सबसे बड़ा पद लेक्चरर का हो।

"नहीं," तिवारी ने संशोधन किया, "मैं रिंगमास्टर हूं।"

हेलन सिंह तनकर खड़ी रही, तो वे आगे बोले, "सौ-डेढ़ सौ जानवरों वाले कमरे में काम करता हूं।"

''ओहो! इसमें क्या बुराई है,'' हेलन सिंह ने संशोधन किया, ''बालक, बंदर एक समान।''

वह खिलखिलाकर हंस पड़ी।

कन्हैयालाल एक गिलास में ठंडा पानी और एक गिलास में नींबू का शरबत ले आया।

तिवारी ने गिलास दोनों हाथों में लेकर, कसकर होठों से लगाया, मानो चूम रहे हों। फिर व्हिस्की पीने की अदा से चुसकियां लेने लगे।

पानी पीकर गिलास तिपाई पर रखा और जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला।

मिसेस तिवारी बोलीं, ''बहुत बुरी बात शुरू हुई है।''

''क्या?'' हेलन ने पूछा!

''यह किसका अभिशाप है?''

हेलन सिंह के चेहरे पर बड़ी प्यारी हंसी निखर उठी। फिर बोली, ''मेरी एक आदत है। मर्दों से तो मुझे नफरत है। मगर खूब सिगरेट पीने वाले मुझे पसंद हैं।''

एकाएक हेलन सिंह का चेहरा मुरझा गया। अपनी भूल का उसे अहसास हो गया।

हेलन सिंह की बात मिसेस तिवारी को भी बिलकुल पसंद नहीं आयी। कुछ देर तक वह उंगली से तिपाई पर लकीरें खींचती रहीं।

''अरे, मैं तो भूल ही गयी,'' हेलन सिंह ने बातचीत का विषय बदल दिया, ''आपकी मरीज कैसी है?''

मिसेस तिवारी की मां प्राइवेट वार्ड में दाखिल हैं। (प्रोलाप यूटेरस) चार बच्चों को जन्म देने के बाद कोख, अब जैसे भीतर रुकने के लिए तैयार न हो, बाहर आ जाना चाहती है। जिस रास्ते से बच्चे आये उसी रास्ते से।

''आराम तो है, पर डाक्टर ने कहा कि यूटेरस निकालना पड़ेगा। हाय!'' वे अनजाने बोल पड़ीं!

''मगर यह तो मामूली आपरेशन है,'' उनको दिलासा देते हुए हेलन सिंह ने कहा, ''हाय-तोबा की क्या बात है?''

तिवारी भाषण देने लगे, ''एक यूटेरस के नष्ट हो जाने से एक बुढ़िया का क्या नुकसान होगा? ऐसी औरतों का कोई भी अंग काट दो। वे जियेंगी। जीभ के कटने तक।''

मिसेस तिवारी का चेहरा एकाएक काला पड़ गया। फिर लाल हुआ। परंतु उसने बहुत कुछ मन में ही रोक लिया। फिर कहा, ''आइए, चलें।

''खाना खाइये न?'' औपचारिक रूप से हेलन सिंह ने निमंत्रण दिया।

''अभी नहीं, फिर आयेंगे।''

तिवारी ने कहा, ''सच कहता हूं तो लोगों को बुरा लगता है। मेरी राय में संसार

में जितनी कन्याओं की कोख निकाली जाये उन सबको 'पद्मश्री' की उपाधि देनी चाहिए, इस भारत में।"

तिवारी आगे कुछ कहना चाहते थे कि मिसेस तिवारी उठकर चल पड़ीं। फिर तिवारी भी। हेलन सिंह उन्हें विदा करने दरवाजे तक गयी। हाथ हिलाती रही। मगर वह पर्दे के पीछे खड़ी, ओझल होते तिवारी का पुष्ट कंधा और सिर का पिछला हिस्सा देखती रही। वे आंखों से ओझल हुए तब हेलन सिंह उसांस लिये वापस चली।

हेलन सिंह खाट पर पसर गयी। उसके मन में जाने क्या-क्या भाव उमड़ उठे! तिवारी को पहली बार देखा था। उसकी मुखाकृति डा. दास से मिलती है। वही शारीरिक गठन, जैसे जुड़वा भाई हों। स्वभाव भी वही। अपने मन की बात किसी के भी आगे दिल खोलकर बताने वाला। हेलन ऐसी प्रकृति के लोगों की इज्जत करती है। दिल की सच्ची बात बतानी है। सोचने की जरूरत ही क्या है, कि उस बात का दूसरों पर क्या असर पड़ता है?

मेज खोलकर एलबम बाहर निकाला। मन में जब कभी अशांति हो तब यह एलबम शांति देता है। पिछले बीस वर्ष की कमाई है। करीब 10,000 से अधिक स्टैंप। पक्का साथी भी है।

हेलन 1920 के बाद के स्टैंपों का एलबम खोलकर हर स्टैंप पर पांच से दस मिनिट नजर गड़ाकर देखती रही। पूरे स्टैंप का रंग, फिर अलग-अलग रंग, क्या प्रकृति-चित्र है या जीव का? प्रकृति हो, तो जल है या स्थल? जीव हो, तो मानव है या पक्षी? मुहर लगाने का वर्ष! क्या उनकी किनारियां टूट गयी हैं? कितने स्टैंपों पर सील लगी है? किन पर नहीं लगी? जिन पर लगी है, उन पर कहां तक लगी है? उनके वर्ण कौन-कौन-से हैं? कितने बजे? किस डाकघर में किसने मुहर लगायी होगी? क्या तब स्टैंप को दर्द हुआ होगा?

हर स्टैंप के विषय में वह इसी तरह सोचती। उसे पूरा विश्वास है कि यही अकेली कमाई अनमोल है। उसकी अपनी निजी कमाई भी यही है। हेलन उसे अपने सतीत्व से भी अधिक महत्व देकर सुरक्षित रखती है।

नीचे लान में हंगामा शुरू हो गया। रविवार के दिन नर्सिंग छात्राओं की छुट्टी रहती है। कुल चार-पांच सौ छात्राएं हैं। दूसरे होस्टलों से भी यहां आती हैं। मानो पांव पर पंख लगे हों। इसी होस्टल में इतना बड़ा लान है। उसी तरह बड़ी संख्या में युवा मुलाकाती भी इसी होस्टल में आते हैं। युवा लड़कों ने इसे नाम दे रखा है——'होस्टल आफ दि ब्यूटी क्वीन।' हेलन सिंह के मन में अनजाने यह गर्व महसूस हुआ कि बुढ़ापे में भी मैं रानी हूं!

मैट्रन हेलन सिंह टैरेस पर पहुंची। बारह बजने को हैं। दिसंबर का सूरज कृपालु

है। वह धधकने के बदले प्यार से सहलाता है।

वह लान पर कहीं केवल लड़कियों का दल नहीं देख सकी। सभी दलों में मर्द हैं। गंदे मर्द! वे घुसपैठिये होते हैं। हेलन सिंह मर्दों के बीच बैठना पसंद नहीं करती। उनके पसीने की बू! वे मर्द लड़कियों को सूंघते, उनका पीछा करते हैं।

हेलन सिंह के नथुनों में कहीं से कोई गंध उड़ती आ गयी।

डा. दास की गंध। उसका सब-कुछ हेलन को पसंद था। उसके व्यक्तित्व, रूप और पद ने उसे हेलन से मिला दिया। मगर दास की पसीने की बदबू ने उन्हें एक-दूसरे से हटाया। बीस वर्ष गुजर गये। पर अब भी नाक उस गंध को पहचानती है।

सहसा उसे छींक आ गयी। पानी से हलका कोई द्रव चारों तरफ छिटका। उसने साड़ी के छोर से उसे पोंछ डाला। तुरंत देखा कि किसी की नजर तो नहीं पड़ी!

आंखों में पानी भर आया। पता नहीं क्यों, इन दिनों अनजाना दुख बहुत कष्ट दे रहा है। उसने साड़ी के छोर से उसे पोंछ डाला। कपड़े केवल लाज ढंकने के साधन ही नहीं। उनके कई लाभ होते हैं। बहुत दिन पहले की बात है। एक जहरीले सांप ने सिस्टर चाक्को को डंस लिया तो उसने साड़ी फाड़कर डंसने की जगह पर बांध दी। फिर भी वह मर गयी। जहर साड़ी के बंधन को मात देकर सिर तक चढ़ गया था।

लान में बड़ा शोर उठ रहा था। देखा तो जमीन पर गिरी पड़ी एक लड़की उठने की कोशिश कर रही है। चारों तरफ के चेहरों की आंखें उसी पर केंद्रित थीं। लड़कियों के लिए शोर करने व हंसने के लिए कोई खास वजह जरूरी नहीं है। रोने के लिए भी।

उस समय उसे औरतों के विषय में शर्म महसूस हुई। पुरुषों से विद्वेष भी। उनके पसीने से सख्त नफरत!

भूख बिलकुल नहीं लगी। टमाटर जूस में पकाया सासेज और ब्रेड लकड़ी की ठूंठ की तरह पड़े हैं। उसने उन्हें छुआ भी नहीं। ठंडे दही में शक्कर मिलाकर पिया। पानी से कुल्ला किये बिना मुंह में दही का स्वाद लिये चारपाई पर पड़ी रही।

स्टैंपों को महत्व देने वाली खास साप्ताहिक पत्रिका खोलकर वह स्टैंपों वाला स्तंभ पढ़ने लगी। एकाएक सिर भारी लगा। उस पत्रिका में एक बहुमूल्य रंगीन स्टैंप का इतिहास है। एक रद्दी की टोकरी से मिला स्टैंप! उसका दाम पचास हजार रुपये था। हेलन सिंह को रद्दी की टोकरी का महत्व जीवन में पहली बार मालूम हुआ।

शाम को मेरी ने आकर दरवाजे पर दस्तक दी, तो हेलन सिंह की नींद खुली। पचास हजार रुपये की कीमत के स्टैंप की खबर उसके कमजोर दिल पर छाई हुई थी।

चेहरा धोकर आयी तो उसने कहा, "मेरी, सुना? एक पुराने डाक स्टैंप की कीमत पचास हजार रुपये है!" उसने मेरी की तरफ उंगली से इशारा करते हुए कहा, "मेरी! एक

बात बताये देती हूं। संसार में हर चीज का दाम बताया जा सकता है। आदमी तक का। मगर डाक स्टैंप की कीमत कोई नहीं बता सकता। परमात्मा भी नहीं।''

मेरी ने कहा, ''बिलकुल सही बात है।'' मैट्रन कुछ क्षण मेरी की तरफ देखती रही। जैसे एक गड़रिया अपनी भेड़ों को देखता है!

''सही कैसे है?'' उसने मेरी की तरफ उंगली बढ़ायी।

''क्या तुम अखबार नहीं पढ़तीं? अब शासन कर रहे एक पुराने इंकलाबी नेता के सिर के लिए उन दिनों के राजा ने सिर्फ दस हजार रुपये का दाम तय किया था। जानती हो, छुटकी?''

मेरी ने मुस्कुराते हुए सिर झुकाया।

हंगामे वाले लॉन की तरफ देखते हुए हेलन सिंह ने पूछा, ''वहां क्या चल रहा है?''

''विजिटर्स हैं!'' मेरी बोली।

''वह तो मुझे पहले से मालूम है,'' हेलन ने कहा, ''मगर इस शोर-गुल का मतलब पूछ रही हूं... सुनो, मेरी!'' मेरी का कंधा थपथपाती हेलन ने कहा, ''तुम इस जमघट में शामिल न होना। कम-से-कम तुम मर्दों से——ओक्टापसों से अपने को बचाये रखना।''

मेरी कुछ कहे बिना नीची नजर किये रही।

''क्या तुम्हें कोई साथी मिल गया है?'' हंसी उड़ाते हुए हेलन ने पूछा।

मेरी की पीठ सहलाते हुए हेलन सिंह ने कहा, ''मेरा पूरा विश्वास है, तुम कभी नहीं फंसोगी।''

वह टैरेस के छोर की तरफ बढ़ गयी। मैट्रन ने धीमी आवाज में एक राज़ पूछने की अदा में पूछा, ''उस भीड़ में डाक्टर भी होंगे न?''

''जी हां।'' मेरी ने कहा, ''दो-तीन हाउस-सर्जन और एक ट्यूटर है।''

मैट्रल हेलन सिंह ने कुछ देर तक पता नहीं क्या सोचा!

''गंदा वर्ग!'' हेलन सिंह का चेहरा लाल हो उठा, ''जानवर! नर्सों का पीछा करते आवारा लोग!''

हेलन सिंह अचानक पसीने से तर होने लगी। वह पागल की तरह कुछ बड़बड़ाती रही।

उसने मेरी से पूछा, ''तुमने स्टेथस्कोप देखा है न? उस पर कभी यकीन न करना! डाक्टर लोग गरदन पर डालकर चलते हैं न? वह चीज! जानते हो वह क्या है? सांप है, सांप! दग़ा करेगा... मेरी,'' वह डांटती-सी बोली, ''तुम मामूली पुलिस सिपाही के साथ जाना हो तो जाओ! कोई बात नहीं। मगर एक डाक्टर के साथ मत जाना।''

''हाय!...'' मेरी घबराहट से बोली, ''मैंने ऐसा कुछ नहीं किया, मैट्रन!''

हेलन सिंह ने लंबी आह भरी।

''सॉरी! मेरी, आई एम वेरी सॉरी। न जाने मुझे कैसी बातें याद आ गयीं।'' छत के एक छोर से दूसरे छोर तक वह टहलने लगी।

ग्यारह

वार्ड पहुंचते-पहुंचते कुछ देर हो गयी। मेरी ने चारों तरफ देखा। किस्मत अच्छी रही। सीनियर सिस्टर नहीं आयी है। गाली के एक दौर से बची। मेरी तेजी से असिस्टेंट मैट्रन के कमरे की तरफ बढ़ी। वहीं हाजिरी का रजिस्टर है। उसमें दस्तखत न करें तो उस दिन वार्ड में काम करने का प्रमाण नहीं। काम करें, न करें, मुख्य बात हस्ताक्षर करना है। हर महीने के अंत में इन दस्तखतों की गिनती के लिए हाजिरी का रजिस्टर वेतन बांटने वाले अफसर के दफतर में जाता है।

वह गलियारे से तेज चली। उसके सामने से लोग और स्ट्रेचर आते-जाते रहे। देर हो जाने की घबराहट उसके मन में भंवर-सी उमड़-घुमड़ रही थी।

असिस्टेंट मैट्रन कमरे में हैं। मेरी आधा दरवाजा खोलकर भीतर पहुंची। असिस्टेंट मैट्रन ने कुछ क्षणों तक उसे देखा, बड़ी निष्ठुर दृष्टि से। दरवाजा उस समय दोनों तरफ डोलता हुआ आवाज कर रहा था।

आवाज रुक गयी तो असिस्टेंट मैट्रन मिसेस जोसफ ने प्रश्न किया, "टाइम कितना हुआ है?"

मेरी के पास घड़ी नहीं थी। उसने दीवार की तरफ देखकर कहा, "आठ पंद्रह।"

"शरम नहीं आती? ठीक-ठीक समय बताती हो? खैरियत है कि कम-से-कम तुम समय तो ठीक बताती हो।"

मेरी अपने चेहरे पर नकली मायूसी लायी और मिसेस जोसफ की ओर देखा।

कोई नाटी औरत कुर्सी पर जब बैठी रहती है, तो बड़ाई कुर्सी को मिलती है। छोटी-सी आंखें, पिचके गाल, पीली सूरत! किसी चीज में जान है तो उसकी वर्दी में। वर्दी टेरिकाट की है।

उसकी बातों में सारी दुनिया से नफरत झलकती थी। साढ़े चार फुट लंबी, दुबली-पतली मिसेस जोसफ के अधीन काम करने वाले सभी कर्मचारी उससे थर-थर कांपते थे।

वह पांच मिनट मौन रही। मेज पर पड़ी फाइल व कागज़ उलटती-पलटती रही। कलम खोलकर जहां-तहां हस्ताक्षर करती गयी। जीरे के दाने-से अक्षर!

नीली वर्दी वाला चपरासी भीतर आया। उसकी कर्मभूमि मिसेस जोसफ के कमरे

के सामने पड़ी एक तिपाई थी। वहां से वह अगर किसी बात के लिए हटता है, तो सिर्फ उससे कुछ कहने के लिए। उसे मिसेस जोसफ सिर्फ एक गुड़िया मानती है, जिसका धागा उसके हाथ में है।

मेरी हर रोज उस आदमी को कितनी ही बार देखती है। मगर आज तक उस आदमी के चेहरे पर कोई हाव-भाव नजर नहीं आया। जिंदा होने के आसार तक नहीं। बैंगन-सी कोई चीज।

"हूं...दस्तख्त कर लो।" मिसेस जोसफ रजिस्टर को यों छूती बोली मानो पाखाना छू रही हो।

'वी.वी. मेरी' नाम के सामने दस्तखत किये। एक दिन जिंदा हो गया। वेतन में अड़तीस रुपये बढ़े। देर से जाने पर किसी-किसी दिन दस्तखत की जगह 'ए' भी लिखा रहता। उस दिन भी अड़तीस रुपये का हिसाब होता। पर वह वेतन से कटता।

वह फिर से गलियारे में पहुंची। दिन भर गलियारा सड़क जैसा रहता है। उस वक्त वहां आने वाला कोई भी उसकी लंबाई नाप नहीं सकता। शाम को रोगियों से मुलाकात का वक्त बीत जाने पर, सूर्यास्त की घड़ियों में गलियारा सूना होता है। तभी वह दर्शनीय रहता है। अब गलियारे में भीड़-ही-भीड़ है। यह अस्पताल के भवनों की धुरी है। सारे भवनों के हृदयों को भेदती चलने वाली एक खूंटी... सबको एक धागे में बांधने वाला फीता।

कई लोग मेरी के सामने से आते और उसे पार करके गायब हो जाते थे——डाक्टर, लोग, वर्दीधारी छोटे कर्मचारी, ऐप्रन वाले मेडिको, मर्द व औरतें, स्ट्रेचर ठेलने वाले, स्ट्रेचर पर लेटे रोगी...।

चलने वाले सभी बेसिलसिलेवार कड़ियों की तरह उसके पीछे चल रहे थे।

आखिर वह वार्ड में पहुंची। वार्ड के तीन तल्ले हैं। मेरी निचले तल्ले से ऊपर चली। उसका वार्ड दूसरे तल्ले पर है।

इसमें छत्तीस रोगी लेटे हैं। उनका इलाज करने, टहल-सेवा करने के लिए मुट्ठी भर लोग भी हैं।

मेरी वार्ड पहुंची तो वर्दी को और एक बार नीचे की ओर खींचकर ठीक करके फिर चल पड़ी। सिस्टर ड्यूटी रूम में बैठकर कुछ लिख रही थी। किस्मत ने साथ दिया।

मेरी को देखने पर लेटे हुए रोगी सिर ऊपर उठाने लगे। अधिकांश रोगी मेरी को पसंद करते हैं। मिलने पर दोनों निश्छल हंसी हंसते हैं। कुछ लोग तो रोग की कठोरता में डूबे हैं।

एक वार्ड में एक ड्यूटीरूम और दो वर्किंग रूम होते हैं। वर्किंग रूम कांच से बने हैं। कांच के कमरे में बैठकर सारे रोगियों को आसानी से देखा जा सकता है। रोगी कमरे में बैठे लोगों को भी देख पाते हैं। इस बिल्डिंग का नक्शा बनाने वाला विदेशी,

होशियार रहा होगा।

मेरी ने इंजैक्शन की शीशियों में डिस्टिल्ड वाटर भर दिया। हर शीशी में दो-दो मिलीमीटर।

वार्ड में फिनायल और स्पिरिट की बू उभर उठी। कुछ क्षणों से अधिक उसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। उनकी गंध सहते-सहते नाक हार चुकी है। मेरी ने देखा है कि रोगियों से मिलने आने वाले कुछ देहाती इसकी गंध का आनंद देर तक प्रेम से लेते रहते हैं। उनके लिए वह नयी गंध है।

पोपट लाल फिनायल में टाट का टुकड़ा भिगोकर उससे मोजइक वाली फर्श को साफ करता रहता है। सबेरे आठ बजे से शाम के चार बजे तक उसका एकमात्र काम है——फर्श के रोगाणुओं को फिनायल सुंघाकर मार डालना।

लगता है कि पोपट हाथ में पोंछने का टाट लिये ही दुनिया में पैदा हुआ है। वह इस वार्ड में बिना टाट के कभी नहीं आता। लगातार, बिना आराम के वह वार्ड का फर्श धोता, पोंछता रहता है। चार बजते-बजते वह गायब हो जाता है।

सार्कोयडोसिस का वृद्ध रोगी हमेशा की तरह बाइबिल खोलकर पढ़ने लगा। वह यहां चार महीनों से दाखिल है। जिस दिन आया था उसी दिन से बाइबिल का पारायण शुरू हुआ। उसका यकीन है कि उसकी मौत का वक्त नजदीक आ गया है और अपने गुनाहों को धोने का अकेला रास्ता यही है।

वार्ड में सभी नंबर से पहचाने जाते हैं। वार्ड में बीच-बीच में सुनाई देने वाले प्रश्न होते हैं-——'क्या तेरह नंबर को सुई लगायी? नौ को फीडिंग दिया? सत्रह को एक्सरे के लिए क्यों नहीं ले गये?'

कर्मचारियों की ही नहीं, रोगियों के लिए भी वहां वर्दी का नियम है। सफेद कपड़े में हरी धारियों वाला या हरे कपड़े में सफेद धारियों वाला कुर्ता व पाजामा। कोई भी रोगी आता है तो आते ही कैदी की तरह उसके कपड़े उतारकर यह वर्दी पहनायी जाती है।

मेरी दवा-भरी सिरिंज लिये आगे बढ़ी। पीछे ट्राली ठेलती आया थी। ट्रे में इंजैक्शन की शीशियां!

सार्कोयडोसिस का रोगी 12 नंबर वाले बेड पर लेटा था। वह उस समय एक उबला अंडा छीलकर निगल रहा था। मुलाकात का वक्त था, सो कोई दूर का रिश्तेदार पास मुस्कुराता हुआ खड़ा था। रोगी का पूरा ध्यान अंडे पर केंद्रित रहा। मेरी चुपचाप खड़ी रही। रोगी ने छीला हुआ अंडा दांतों से काटा। एकदम आधा मुंह के भीतर समा गया। आधा हथेली में रह गया। कुछ पीले दाने बिस्तर पर गिर पड़े। रोगी ने उन्हें समेटकर फेंक दिया। उसकी आंखें आगे की ओर बढ़ीं। छोटी-छोटी अनेक रक्तनलियों वाली आंखें!

मेरी को देखने पर रोगी ने क्षमा-याचना की मुद्रा में अंडा जल्दी से निगल लिया

जैसे सांप मेंढ़क को निगल रहा हो। हथेली में बचे अंडे की बात भूलकर उसने बायीं बांह इंजैक्शन के लिए आगे वढ़ायी।

सिरिंज की दवा खतम होने को आयी तो उसके चेहरे में अनेक झुर्रियां उभर आयीं। वृद्ध ने अपना नित्य का प्रश्न दुहराया, "बिटिया, क्या आज पादरीजी आयेंगे?"

मेरी बोली, "आदमी भेजा है।"

"अच्छी बात! आज ही सही, अपने पापों को स्वीकार कर सकूंगा।" उसने काले धागे में बंधा सलीब गले से बनियान के भीतर से निकालकर उसे होठों से चूमा। फिर बनियान के भीतर सुरक्षित रख लिया।

मेरी के पीछे नर्स लाल भी हिल-डुल रही थी। वार्ड में सभी हिलते-डुलते हैं। वहां कोई काम नहीं करता। सभी मशीनी चाल है। लाल के हाथ में थर्मामीटर है। उस औरत का काम हर रोगी के शरीर का ताप मापना है। नब्ज की गिनती करना है। परिचित रोगी लाल के आते ही मुंह खोलते हैं। फिर हाथ बढ़ाते हैं। सार्कोयडोसिस के रोगी ने मुंह खोला। लाल ने थर्मामीटर जीभ के नीचे रखा। वृद्ध का मुख-मंडल पूरे क्रोध से तमतमाने लगा। थर्मामामीटर मुंह से निकालते ही उसने कहा, "और सब सहन कर सकता हूं। यह चीज मुंह के भीतर रखकर मुंह बंद किये रहना——हाय! हाय!"

लाल मुस्कुरायी। हर बात के जवाब में वह मुस्कुराती थी। फिर थर्मामीटर जोर से झटकर उसके पारे का स्तर नीचे लायी। उसे यों जोर से झटकते देखकर रोगी चौंक उठा। उसे डर है कि एक-न-एक दिन लाल की हथेली हाथ से झटककर अलग हो जायेगी।

पोपट टाट का टुकड़ा और फिनायल लिये ऊपरी तल्ले की तरफ चल दिया। वार्ड साफ हो गया। पोपट और रोगाणु वार्ड से दूर!

छहों वार्डों की परिक्रमा करके मेरी कांच के कमरे में लौटी। जल्दी ही राउंड शुरू होगा। छह वार्डों में तीन एक पारी में काम करते हैं।

सिस्टर जोन स्टोर में चूहों के कुतरे हुए कंबलों की गिनती कर रही थी। उसके गाल लाल थे। कंबलों का हिसाब लगाने पर उसकी जिम्मेदारी खतम। परंतु उसका चेहरा देखने पर लगा कि वार्ड में कोई खून हो गया है। वह तिल को ताड़ बनाती है। कुछ समय बाद चूहों के काटे कंबलों की गठरी चपरासी के कंधों पर लदवायी। वह उसके आगे-आगे मैट्रन के कमरे की तरफ बढ़ी। मानो वीरचक्र पाने का कोई काम किया हो।

राउंड का वक्त हो रहा था। हाउस-सर्जन परेशान थे। यूनिट का प्रधान जब तक आये तब तक सब-कुछ तैयार रखना था। हर भूल या गलती पर हाउस-सर्जन को ही डांट पड़ती थी। उससे छोटा डाक्टर और कोई नहीं है।

डा. संतुकुमार कोमल बयार जैसे गलियारे से आये। वे हर कदम सोचते-सोचते बढ़ाते हुए धीरे-धीरे कांच के कमरे में पहुंचे। अपनी मंजिल पर पहुंचकर ही वे सिर उठाया करते

थे। तब तक उनकी नजर धरती पर ही रहती। देहात में भी ऐसे ही एक सज्जन थे। पलटन से रिटायर होकर गांव लौटे, वर्की भैयाजी। उनकी मां ने उनसे कहा था कि एक सोने की अशर्फी धरती पर कहीं गिर गयी है।

संतुकुमार घी-मक्खन खूब खाते थे। इसलिए इनका बदन हृष्ट-पुष्ट था। ढीले मांस-पिंड शरीर से जहां-तहां लटकते। लाल गालों पर सोडे की बोतल के कंचे जैसे नेत्र घूर रहे थे। शीशम जैसे चेहरे को उनके सफेद दांत अनुपम आभा दे रहे थे।

संतुकुमार ने मेरी से पूछा, "शुरू करें? कहां हैं मेरे मित्र?"

ड्यूटी-रूम से सर्जन दौड़े आये। उनके पीछे रेजिडेंट और ट्यूटर भी हाजिर।

उनके पीछे-पीछे मेरी भी चल दी। डाक्टर संतुकुमार बीच-बीच में मेरी से कुछ पूछते जा रहे थे। दुनिया भर की बातें! बिस्तर के पास पहुंचते ही वे मानो दूसरे आदमी हो जाते। रोगी उठकर हाथ जोड़े बैठने लगा।

"अभी नहीं! लेटे रहिए। उठने का वक्त आ गया तो जान बची समझिये।"

पेशाब के लिए रबड़ की नली लगाये रोगी ने लेटे-लेटे डाक्टर की तरफ देखा, कांपती आवाज में कहा, "मुझे बचाइए।"

"बचाने वाला मैं नहीं।" इतना कहकर संतुकुमार ने दोनों हाथ फैलाये ऊपर देखा। फिर हाउस-सर्जन से प्रश्न किया, "अब कौन-कौन-सा इलाज चल रहा है?"

हाउस-सर्जन ने पहाड़ा रटने की तरह कुछ दवाओं व गोलियों की नामावली दुहरायी। संतुकुमार सिर हिलाते हुए सब सुनते रहे। सुनते-सुनते उनके गालों के मांस के लोथड़े झूम रहे थे।

पलंग पर हर रोगी ने जिज्ञासा से उनकी तरफ देखा। अनेक प्रश्न पूछता रहा——दवा के बारे में, रोग के बारे में। परंतु सबसे बड़ा प्रश्न दूसरा था——वह यह, कि रोग से मुक्ति कब मिलेगी! किसी ने वह प्रश्न नहीं किया।

संतुकुमार अठारहों पलंगों की परिक्रमा करके, किसी से कुछ बोले बिना गलियारे में उतर गये। हाउस-सर्जन उनके पीछे चले।

ग्यारह बज चुके। अब सुप्रिंटेंडेंट बाबू नहीं आयेंगे। सुप्रिंटेंडेंट का राउंड मेरी के लिए डरावना सपना होता है।

सुप्रिंटेंडेंट अस्पताल के प्रभु जैसे हैं। अगर वे एक भी दिन नहीं आते तो मेरी अपने को अनाथ-सा महसूस करती।

ड्यूटी करीब-करीब समाप्त ही हुई। मेरी ड्यूटी-रूम में जा बैठी। पीछे स्टरलाइजर की आवाज उठ रही थी। उसमें स्टील के उपस्कर रोगाणुओं से मुक्ति पा रहे थे। कहीं भी हों, मुक्ति के लिए ऊर्जा चाहिए। चाहे आग की हो, चाहे आदमी की।

डा. रवींद्रनाथ ड्यूटी-रूम में अचानक आ गये। मेरी को लगा कि जैसे सेमल की

रुई का एक फाहा उड़ता आया है। रवींद्रनाथ एकदम दुबले थे। कुहनी तक मोड़ी हुई कमीज की बांहों के भीतर से एक पेंसिल की तरह ही उनके हाथ नजर आते हैं। ढीली-ढाली पेंट व कमीज उनके शरीर पर झूलती दिखायी देती थीं। मगर रवींद्रनाथ का मुखमंडल! इतना तेजस्वी मुखमंडल पूरे अस्पताल में नहीं। ब्लाटिंग की तरह मन को सोख लेने की ताकत रखती नजर। सुई गिरने की हलकी-सी आहट तक को पकड़ लेने के लिए अधीर तेज व उभरे कान!

रवींद्रनाथ में कई ऐब हैं। मगर और कई लोगों का एक ऐब उनमें नहीं——चश्मा!

रवींद्रनाथ ने बिना किसी भूमिका के कहा, "सिस्टर, मुझे एक रयलस् ट्यूब चाहिए।" वे प्रायः सिर्फ काम की बातें ही कहते हैं।

मेरी ने चुपचाप एक ट्यूब लेकर किडनी ट्रे[1] में डाल दी। रवींद्रनाथ ने उसे बड़ी श्रद्धा से लिया, मानो कोई खजाना मिला। उन्होंने "थैंक्स" कहा।

रवींद्रनाथ एम.डी. के छात्र हैं। मेरी को कितनी ही बार इच्छा हुई कि उन्हें 'रवि' पुकारे। बड़े चुस्त युवा डाक्टर। उनकी होशियारी का उनके शरीर से कोई मेल नहीं। वे बिना आराम किये ही काम करते रहने के लिए तैयार रहते हैं। दूसरे कई डाक्टर उन्हें छोटे-मोटे काम सौंपकर अपने को छुड़ाते हैं तो वे बेचारे दूसरों का काम भी अपने ऊपर ले लेते हैं।

रवींद्रनाथ अभी-अभी दाखिल हुए फूले पेट वाले एक रोगी के पलंग के पास जा बैठे। फिर ट्यूब जरा सीधी की, लगभग 3 फुट लंबी। ट्यूब के छोर पर एक गाढ़ा घोल मलने के बाद उसे रोगी के नथुनों में घुसेड़ने लगे। रोगी खांसता रहा। हर बार खांसता और हर बार नली बाहर आ जाती। फिर भी हार माने बिना रवींद्रनाथ उससे कहते जा रहे थे——"निगलते जाओ, निगलते जाओ!" रोगी को कुछ पता नहीं! बिलकुल अधीर हुए बिना वे अपने काम में लगे रहे।

लंबे समय तक मेहनत करने पर ट्यूब की लंबाई कम होती गयी। नाक के भीतर रेंगते सांप के समान वह भीतर चली गयी। आधा फुट वाला बचा छोर प्लास्टिक से माथे पर चिपका दिया।

मेरी ने लंबी आह भरी। सोचा कि अब रोगी के पेट में कुछ खाना जायेगा। मगर डाक्टर रवींद्रनाथ ने एक बड़ा सिरिंज मांगा था। सिरिंज ट्यूब के छोर पर लगाकर वह खींचने लगा। हरे रंग का द्रव सिरिंज में भरता गया। दस मिनट के भीतर बड़ी किडनी ट्रे द्रव से भर गयी।

रोगी का फूला पेट कुछ सामान्य हो गया।

बारह बज चुके थे। अब अगली पारी सिस्टर कुंजम्मा की है। वह अभी नहीं आयी।

---

1. गुर्दे के आकार की ट्रे।

उसकी यही आदत है। वह कम-से-कम आधा घंटा देर से ही आया करती है।

उस दिन वह घंटा भर देर करके आयी। आते ही वर्दी वाला झोला मेज पर पटककर जोर से हंस पड़ी। उस हंसी ने उसके नाटे-से शरीर को मानो झकझोर दिया। हंसते-हंसते अपने आसपास के लोगों को भी भूल गयी। हंसी सुनकर जाग पड़े रोगियों ने कांच के कमरे की तरफ देखा। पूरी हंसी के बाद सांस छोड़कर कुंजम्मा ने मेरी का कंधा दबाते हुए कहा, "मेरा मर्द आया है री! आज सुबह।" फिर लंबी आह भरते हुए बोली, "कोई सूचना दिये बिना एकदम आ धमका तो मैं घबरा उठी।"

इतने में जाकर वर्दी फिट करके वह आ गयी। ड्यूटी-रूम में कलफ की गंध भर गयी।

"बारह को सी.पी. देना, चार को चार बजे फीड करना। चौदह पर जरा ध्यान रखना। शायद चार बजे के पहले ही... अभी सांस चल रही है। बाकी सब केसेस शीट में लिखे हैं।"

इतना कहकर मेरी तेजी से निकली।

यों ड्यूटी बदल गयी। अब चार बजे तक मेरी आजाद है।

गलियारे में पहुंची तो जोर की भूख लगी। सारे भाव, सारी संवेदनाएं गलियारे से प्रारंभ होती हैं।

मेरी तेजी से होस्टल के डाइनिंग रूम की तरफ चल पड़ी।

बारह

हफ्ते भर की छुट्टी के बाद कुंजम्मा होस्टल लौटी। मेरी ने कुंजम्मा को दूर से ही देख लिया तो अगवानी के लिए फाटक पर पहुंची।

"इतनी जल्दी?" मेरी ने पूछा।

"अरी, उन्हें ज्यादा छुट्टी नहीं है। कुल चौदह दिन की छुट्टियां हैं। अब गांव जाकर मां से मिलकर लौटेंगे," उदासी से कुंजम्मा ने कहा।

"जो भी हो, एक हफ्ता तो मिला न!" मेरी ने उसकी उदासी दूर करने के लिए कहा।

"एकदम बोर था।"

"सो क्यों? पति के आने पर बोर कैसा?" मेरी को शक हुआ।

"छुटकी! होटल के कमरे में थे न? कहीं निकलने की बात तो दूर, वे तो कमरे से भी बाहर नहीं आये।"

"होटल के कमरे में हफ्ता भर क्या करते रहे?" मेरी ने ताज्जुब से पूछा।

"वे तो मुझे बदन से सटाये बांहों में कसकर बांधे लेटे रहे। हाय प्रभु! पूरा बदन सूजा हुआ है।" अपने हाथ की अटैची फर्श पर फेंककर कुंजम्मा थकी-मांदी बैठ गयी।

होस्टल में कोई शोर-शराबा नहीं था। नाइट ड्यूटी वाले सो रहे थे। दोपहर के दो बजे का वक्त था। बरामदा सूना था।

कुंजम्मा की ही बगल में उसके कंधे से सटकर मेरी बैठ गयी। कुंजम्मा सचमुच थकी है। आंखों के नीचे स्याही बिछी है। आंखों में हफ्ते भर की नींद और अंधेरा मानो मौके की तलाश में छिपा बैठा हो।

मोटी गरदन और गाल पर काले पड़े दाग। कमर और कंधे के मांस के पुट्ठे ढीले होकर मुड़े-से हैं। जोड़ों में दर्द है।

कुंजम्मा का पति फौज में है। हर साल छुट्टी के दिनों में वह कुंजम्मा से मिलने अस्पताल में आया करता है। उसे जब छुट्टी मिलती है, तब कुंजम्मा को छुट्टी मिलना नामुमकिन होता है। गत तीन वर्षों से यही चलता आ रहा है। मैट्रन हेलन सिंह जो जानबूझकर दूसरों को तकलीफ देती है, उसका एक उदाहरण सुनिए---

तीन वर्ष पहले कुंजम्मा की शादी हुई तो उसकी छुट्टी भी मैट्रन ने हीला-हवाला करने

के बाद ही दी थी।

जब शादी तय करने की सूचना मैट्रन को दी गयी तब उसकी प्रतिक्रिया यूं हुई——

"मनहूस शादी की क्या जरूरत है? क्या मर्द की गुलामी की जिंदगी जीने के लिए? बेशरम जात।"

"मुझे महसूस हो रहा है कि..." कुंजम्मा ने बात एकाएक रोक दी!

मेरी ने जिज्ञासा प्रकट की।

"शादी नहीं करनी चाहिए थी।"

कुंजम्मा के शब्दों में घोर निराशा थी। वह मेरी की पिंडलियों को सहला रही थी।

"यह क्या? व्हाट हैपंड?" एकाएक बरामदे पर आई मैट्रन ने पूछा। कुंजम्मा और मेरी घबराकर उठीं।

"यू रिटर्न्ड बैक? हाऊ यू एनज्वायड?"

गुस्से की विद्वेष-भरी आवाज। फिर भी कहते वक्त गालों पर हलकी-सी मुस्कुराहट।

मैट्रन हेलन सिंह बाहर जाने की जल्दी में थी।

"मेरी, आर यू फ्री?" भौंहें उठाकर उसने पूछा।

"नो, मैम! आई हैव गॉट ईवनिंग ड्यूटी!"

"दैट्स नाइस। देन आई विल गो एलोन।"

न जाने किससे कहते हुए मैट्रन हेलन सिंह फाटक से बाहर निकल गयी।

वह हलके हरे रंग की चाइनीज रेशमी साड़ी पहने थी। कुंजम्मा की आंखें उस साड़ी पर ही गड़ी थीं। मैट्रन हेलन सिंह के पास अनगिनत साड़ियां हैं। हर महीने वेतन पाने के दिन ही वह बजाज की दूकान पर पहुंचती है। साड़ियों से भरा पैकट लेकर ही लौटती है। किसी ने हेलन सिंह को एक ही साड़ी दुबारा पहनते नहीं देखा है।

कुंजम्मा और मेरी अपने कमरे में लौटीं। दोनों एक ही कमरे में रहती हैं।

"मेरे अंग ढीले पड़े हैं, नस-नस दुख रही है। कुछ करो...मेरी छुटकी!" कुंजम्मा के हाथ-पांव ढीले थे। गरदन भी ढीली थी।

"क्या करूं?" मेरी ने पूछा!

"मैं एकदम टूट गयी हूं। कुछ मालिश करो।" साड़ी व ब्लाउज उतारकर उतरन की टोकरी में फेंककर कुंजम्मा बोली।

उसने दरवाजा बंद करके, सिटकनी लगा दी।

कुंजम्मा सिर्फ ब्रा और चड्डी में अपने पलंग पर पसर गयी। उसकी जांघें यूफोम बेड पर पसरी हुई हैं। उसके कंधे पर घी चमक रहा है।

मेरी ने मेडिक्रीम की ट्यूब कसकर अपनी हथेली पर क्रीम निकाली और दोनों हाथों में खूब मलकर कुंजम्मा के पूरे बदन पर लगा दी। उसके बाद मेरी के कोमल हाथ कुंजम्मा

के कंधे, छाती, गरदन और तलुवों पर बराबर चलने लगे।

साथ-साथ वे बातें करती रहीं। बातचीत करते-करते कुंजम्मा के शब्दों का सिलसिला टूटने लगा। मेरी धीरे-धीरे मालिश कर रही थी।

अचानक कुंजम्मा का पूरा शरीर सिहर उठा। वह पसीने से तर हो गयी। कुंजम्मा के पुट्ठे ढीले पड़ गये। जोड़ों की सूजन कम हो गयी।

कुंजम्मा की पलकें आधी बंद हो रही थीं। पुतलियां अधमुंदी आंखों के ऊपर की तरफ बढ़ीं।

मेरी नहाने के लिए बाथरूम चली गयी। शाम को ड्यूटी करके अस्पताल से लौटी तो मेरी ने होस्टल के फाटक पर सब-इंस्पेक्टर शर्मा को खड़ा पाया।

"गुड ईवनिंग, सिस्टर!" शर्मा की भारी आवाज।

"गुड ईवनिंग, सर!" मेरी की ध्वनि उस भारी आवाज में घुल गयी!

"क्या सिस्टर कुंजम्मा वापस आ गयी?"

"आ गयी है," मेरी बोली

"आह! माइ गॉड. आय ऐम लक्की।" जोर से हंसते हुए शर्मा बोले।

"जल्दी बुला दो।"

शर्मा बड़े जोश से फाटक खोलकर भीतर आये। चौकीदार ने सब-इंस्पेक्टर को सलाम किया।

शर्मा अतिथि-कक्ष के द्वार पर खड़े रहे। मुलाकात का वक्त न होने के कारण उस कक्ष के दरवाजे पर ताला लगा था। चौकीदार ने दरवाजा खोल दिया। सब-इंस्पेक्टर शर्मा को वहां किसी भी समय घुस जाने की आजादी थी।

"कुंजम्मा की तबीयत ठीक नहीं है," मेरी ने शर्मा को संदेश दिया।

"तो कहां है?"

"थकान से सोई पड़ी है," मेरी ने कहा।

"बता दो कि मैं आया हूं, प्लीज!" सब-इंस्पेक्टर शर्मा ने कहा, "वह खुशी से नाच उठेगी।"

मेरी दरवाजा खोलकर भीतर गयी। कुंजम्मा ढीली होकर हाथ-पांव बेड पर पसारे नदी में बहती लाश जैसी पड़ी थी।

मेरी ने कुंजम्मा को हिलाकर जगाया। उसकी उंगलियां कुंजम्मा के नितंब पर पड़ीं, वहां के पुट्ठे कुछ ढीले थे। रान में सूजन कम हो गयी थी।

कुंजम्मा ने दोनों हाथ एक-दूसरे से मिलाकर ऊपर उठाते हुए आंखें खोलीं।

"शर्मा!" मेरी बोली।

कुंजम्मा बिजली की तरह उछल पड़ी। बेहोशी जाने कहां चंपत हो गयी!

“कहां?”

मेरी क्षण भर मौन रही।

आंखें मलते हुए कुंजम्मा ने पूछा, “मेरे शर्माजी कहां हैं?

“गेस्ट-रूम में।”

कुंजम्मा कमरे का दरवाजा खोलकर बाहर दौड़ने लगी, कि मेरी ने उसे रोका।

“इस लिबास में?” मेरी ने पूछा।

कुंजम्मा एकाएक रुक गयी। तभी उसने अपनी असली हालत पहचानी।

वह बड़ी शीघ्रता से कपड़े बदलने लगी।

दो साल पहले कुंजम्मा और शर्माजी एक-दूसरे से परिचित और फिर घनिष्ठ हुए थे। उसके पहले एक कारखाने के मालिक का सुपुत्र कुंजम्मा का साथी था। उसके पहले कारखाने का मालिक खुद उससे घनिष्ठता रखता था। उसे तपेदिक का रोग हो गया। रोग के दिनों में उसकी सेवा कुंजम्मा करती थी। उसी से वह मर गया तो बेटा कुंजम्मा का प्रेमी हो गया था। किसी को पता नहीं कि उस प्रेमी ने कुंजम्मा को छोड़ा या कुंजम्मा ने प्रेमी को। वह अब भी क्लब जाता, ताश खेलता, शराब चढ़ाता और बिलियर्ड की मेज पर खेल खेलता रहता है।

सभी ने सोचा कि कुंजम्मा शादी के बाद सुधर गयी है। मगर लोगों के अंदाज को झुठलाते हुए कुंजम्मा के मधुमास का जोश ठंडा पड़ने के पहले ही सब-इंस्पेक्टर शर्मा ने कुंजम्मा के होठों पर चुंबन अंकित किये।

प्रथम चुंबन ही खुला-खुला था। होस्टल के गेस्ट-रूम में और कोई नहीं था। मेरी एक मिठाई का पैकेट लिये वहां पहुंची तो देखा कि कुंजम्मा व शर्मा चुंबन के आनंद में मग्न थे। उस रात कुंजम्मा ने मेरी को गले से लगाते हुए कहा, “तुमने देख लिया न, छुटकी?”

मेरी मौन रही।

“वह हमारा प्रथम चुंबन था।” कुंजम्मा ने मेरी को कसकर शरीर से सटाया और ठठाकर हंस पड़ी।

मेरी बहुत घबरा गयी। वह यह देखकर दंग रह गयी कि एक युवती विवाहित होने के बाद भी कैसा अंधेर कर रही है!

शाम को इन और आउट-बुक में परमिशन लिखने के बाद कुंजम्मा सब-इंस्पेक्टर शर्मा के साथ बाहर चली गयी।

मेरी खड़ी देखती रही। कुंजम्मा फाटक पार करके शर्मा के साथ उसके बदन से सटी हुई हंस-गति से चल रही थी। मेरी आंखों से ओझल होने तक उन्हें देखती रही।

“व्हाट हैपेंड?” मैट्रन हेलन सिंह की आवाज सुनकर मेरी ने मुड़कर देखा।

मैट्रन हाथ में बड़ी पोटली लिये छोटे गेट से भीतर आयी है। कभी-कभी वह एक चोर-सा बर्ताव करती है, कभी सिपाही-सा। लुक-छिपकर एक बिल्ली-सी आयी और कमरे में आकर गोली दागने की तरह बातें करने लगी।

"चलो मेरी, मेरे कमरे में चलो।"

मैट्रन हेलन सिंह के हाथ से झोली व पैकेट लिये मेरी उसके पीछे चल दी।

हेलन सिंह झोली व गट्ठर खोलकर चीजें खाट पर सजाने लगी। साड़ी, तौलिया, चाकलेट, कंडेंस्ड मिल्क, सॉसेज---सब-की-सब मेज पर सजायीं। चाकलेट का टिन खोलकर मुट्ठी भर चाकलेट मेरी को दिये।

मेरी की हथेली में न समाने से तीन-चार चाकलेट नीचे गिर पड़े। हेलन सिंह ने झट पैक खोलकर एक चाकलेट मुंह में डाल लिया। उसे चखते हुए हेलन सिंह ने पूछा, "कुंजम्मा की गरमी क्या अभी ठंडी नहीं हुई है?"

मेरी कुछ न समझने की अदा में मैट्रन की तरफ ताकने लगी।

"पति को विदा हुए कुछ घंटे भी नहीं गुजरे...," चाकलेट का अल्मुमिनियम रैपर मोड़कर टोकरी में फेंकते हुए वह बोली, "उसने अपने पति को इस रैपर की-सी इज्जत भी नहीं दी।"

ऐसे माहौल में राय देना खतरे की बात थी। इसलिए मेरी चुप रही। मैट्रन बहुत-सी बातें कहती गयी। सभी बातों की टेक मर्दों की आलोचना थी। औरत अगर बदचलन होती है तो उसका जिम्मेदार नाकाबिल मर्द है।

बाथरूम जाकर कपड़े बदलने के बाद भी हेलन सिंह ने अपनी बातों का सिलसिला जारी रखा। फिर पांच-दस मिनिट वह आइने के सामने बैठकर पाउडर लगाती रही। कानों के ऊपर जुल्फों का छल्ला बनाया। बड़ी मेहनत के बाद भी जुल्फें ठीक न होने पर, गुस्से में उठ खड़ी हुई। सुराही से गिलास में पानी लेकर होंठों को जरा भी हिलाये बगैर पी गयी। ठुड्डी से टपका बूंद भर पानी क्यूटेक्स वाले नाखूनों पर गिरा और बिल्लौर की तरह छितरा गया।

पानी पीने से हेलन सिंह कुछ शांत हो गयी। दोनों तकिये एक साथ टेके। हेलन सिंह आराम करने की तैयारी में थी।

"मेरी, तुमने किसी को प्यार किया है?" हेलन सिंह ने अपनी आंखों में खुशी लाते हुए पूछा।

"जरूर! मैंने प्यार किया है।" बात सच थी। सो मेरी को कहने में उलझन नहीं हुई।

"तुमने किसे प्यार किया है?"

मेरी ने क्षमायाचना के स्वर में बात जारी रखी, "एक छोटी बिल्ली को। मगर वह

प्यार बहुत दिन नहीं चला। बिल्ली मर गयी।"

हेलन का चेहरा निराशा से कुछ मुरझा गया। गुस्सा भी आया।

उसने कहा, "मैंने मर्दों की बात पूछी थी।"

उसकी आवाज में कुछ निराशा और उससे बढ़कर क्रोध था।

"नहीं, मैट्रन! वो मैंने कभी नहीं किया," मेरी झट बोली। उसके दुबले-पतले शरीर से एक लंबी आह निकली!

"शाबाश! बहुत खूब! तुम खुश-किस्मत हो, मेरी!" हेलन सिंह ने कहा।

कुछ समय तक वह खामोश रही। फिर एकाएक उठकर तकिये ठीक से रखकर लेट गयी और कहा, "अच्छा मेरी! फिर मिलेंगे।"

मेरी नीचे उतरी तो लॉन खाली था। चौकीदार सिगरेट का कश लेता हुआ फाटक के खंभे से पीठ टेके खड़ा था। चांदनी छिटकी थी।

डाइनिंग हाल में बड़ी चहल-पहल थी। ड्यूटी के बाद लोग आये थे।

मेरी अपने कमरे के भीतर आ गयी और दरवाजा उड़का दिया। कुंजम्मा की खाट पर कोई मलयालम उपन्यास खुला पड़ा था, मानो किसी की राह देखता हो! मेरी ने उठकर देखा। लेखक हैं--मुट्टत्तुवर्की।

बारह बज चुके होंगे। कुंजम्मा आयी। वह चुपचाप दरवाजा धीरे से खोलकर, दबे पांव भीतर आयी। बत्ती जलाये बिना ही वह कपड़े बदलने लगी। कमरे में स्त्री और पुरुष की सम्मिश्रित गंध महसूस हुई। मेरी को लगा, अचानक कमरा गर्म हो गया है।

"छुटकी! तुम सो गयीं?" कुंजम्मा की आवाज सुनाई पड़ी। उसकी आवाज में शांति की शीतलता थी। वह मेरी के पास आयी और एक टाफी मेरी के मुंह में रख दी।

"छुटकी! मेरी सारी थकान दूर हो गयी," लेटी-लेटी कुंजम्मा बोली, "शर्माजी अभी तक मेरी मालिश कर रहे थे।"

कुंजम्मा के होंठ कोई प्रेम-गीत गुनगुना रहे थे। नींद की गोद में सोते-सोते वह उसे गुनगुनाती रही।

तेरह

दूसरे दिन सवेरे मैट्रन हेलन सिंह कुंजम्मा को अपने कमरे में बुलाकर बड़ी देर तक डांटती रही। सब बातें शांति से सुनने के बाद कुंजम्मा बोली, ''मैट्रन, ये सब मेरी व्यक्तिगत बातें हैं। अस्पताल के किसी काम में कोई भूल-चूक हो, तभी दखल दीजियेगा।''

कुंजम्मा ने सोचा कि मैट्रन क्रोध से गरज पड़ेगी। मगर उसने बड़े इत्मीनान से कहा, ''कुंजम्मा, लोग हंस रहे हैं।''

कुंजम्मा बोली, ''लोगों को हंसने दीजिए, मैट्रन! वे हंसना ही जानते हैं। चाहे सारी दुनिया हंसे, मुझे उसकी परवाह नहीं।''

''अच्छा! तुम्हारी मर्जी,'' मैट्रन ने कहा, ''मगर मैंने तुम्हारी ड्यूटी बदल दी है।''

कुंजम्मा कुछ मजाक और कुछ गंभीरता में बोली, ''किसी भी दोजख में डालिए। मुझे एतराज नहीं।''

''तुम्हें वहीं रखा है, जच्चा वार्ड में।'' मैट्रन के लाल होठों पर शरारती हंसी थी।

उस दिन रात को सोने चली तो कुंजम्मा ने मेरी से कहा, ''छुटकी! तुम्हारी मैडम ने बदला लिया है।''

''कैसे?''

''कल से मुझे जच्चा वार्ड में ड्यूटी करनी है।''

मेरी हंस पड़ी। उसने कहा, ''अच्छी बात हुई, दीदी कुछ समय नरक में भी रहे।''

मैट्रन हेलन सिंह का यही नियम था। किसी पर नाराज होती तो उसे जच्चा वार्ड में डाल देती।

जच्चा वार्ड सचमुच नरक था।

हमेशा आधा घंटा देर से ड्यूटी पर पहुंचने वाली कुंजम्मा उस दिन जरा पहले ही वार्ड में आ गयी। वार्ड में पहुंचते ही उसे उबकाई आने लगी।

यह अस्पताल सफाई के लिए मशहूर था। यहां फिनायल में भिगोये टाट के टुकड़ों से दीवार व फर्श साफ करने वाले कितने ही पोपट लाल थे। फिर भी जच्चा वार्ड की बू कोई दूर नहीं कर सकता था।

उस दिन तो और एक गंध ने कुंजम्मा का स्वागत किया। पहले कभी वह गंध महसूस नहीं की थी।

कुंजम्मा की ड्यूटी लेबर-रूम में थी। उस बड़े कमरे में एक ही वक्त बीस औरतें तक बच्चों को जन्म दे सकती हैं। बीस पलंग और अन्य सभी सुविधाएं तो थीं, किंतु उस दिन कुंजम्मा के लेबर-रूम पहुंचते-पहुंचते बीस से भी अधिक औरतें आ गयीं, जिनको प्रसव-पीड़ा शुरू हो गयी थी। पहले आयी बीस औरतें पलंग पर पड़ी चीखने लगीं। बाद में आयी औरतों को फर्श पर लिटाया गया। उनमें से एक औरत को पहला बच्चा हो रहा था। वह करीब अठारह साल की थी। दुबला बदन। पहाड़-सा ऊंचा पेट! उस युवती के चेहरे पर डर व घबराहट का आलम छाया था। वह दर्द को दांत भींचकर सहन करती कराह रही थी। डाक्टर तनूजा उसे ढांढ़स दे रही थीं। फर्श पर लेटी रोगिणी की सुविधा के खयाल से डा. तनूजा उकड़ूं बैठी उसकी सेवा कर रही थीं। नर्स द्वारा लायी गयी इंजैक्शन की दवा डाक्टर ने रोगिणी की बांह में लगा दी। रोगिणी को पता नहीं लगा कि सुई उसके शरीर में चुभायी गयी है।

डा. तनूजा ने उसके पेट पर हाथ रखकर कहा, "पूरी ताकत से कोशिश करो।"

गर्भिणी ने जोर लगाया।

"अगर बच्चा चाहिए तो मामूली जोर देने से काम नहीं चलेगा। पूरी ताकत लगाकर जोर लगाओ!"

निराश गर्भिणी ने सारे कुलदेवताओं को याद करते हुए जोर लगाया। परंतु पेट हिलने का नाम तक नहीं ले रहा था।

"काफी नहीं! और कोशिश करो।"

तनूजा धीरे से उठी। पहलौठी होने से और देर लगेगी, डाक्टर को इसका पता है। एकाएक बगल की चारपाई से एक अट्टहास सुनाई पड़ा। मोटी-तगड़ी औरत! हाथ-पांव मार रही थी। मिर्गी की शुरुआत थी।

डाक्टर तनूजा ने पूछा, "कोई समस्या नहीं है न?"

"नहीं, मैडम!" कुंजम्मा ने कहा।

तब तक एक चारपाई खाली मिल गयी। पहलौठी की युवती को उस पर लिटाया गया। दर्द के दौरान उसकी तरक्की हुई!

डा. तनूजा उस कमरे में चारों तरफ मानो उड़ रही थीं। तीन-चार डाक्टर और भी थीं। फिर भी हर जगह तनूजा खुद पहुंचतीं। वह उनकी आदत थी।

आया वार्ड से एक नयी गर्भिणी को ले आयी। उसकी प्रसव-पीड़ा बंद हो चुकी थी। वह चल भी नहीं सकती थी। बोझ को वहन न कर पाने से गर्भिणी की दशा बड़ी करुणाजनक थी। आया उसे लिये जब आगे बढ़ रही थी, तब लगता था जैसे कोई बड़ी नाव को ठेलता चला आ रहा है।

गर्भिणी को भीतर पहुंचाकर आया चली गयी। वह पीड़ा और असमंजस में पड़ी

थी। उसे पता नहीं कि कहां खड़ा रहना है या कहां लेटना है। वह पांव घसीटते-घसीटते जच्चाघर की दीवार के सहारे खड़ी हो गयी। उसका चेहरा और पीला पड़ गया। उसके खुले मुंह से जोर की चीख सुनाई पड़ी।

अचानक गर्भिणी के पांवों के बीच से एक छोटी वजनदार चीज फर्श पर गिरने की आहट सुनाई पड़ी। गर्भिणी का मुंह पहले से अधिक पीला हो रहा था। वह बेहोश हो नीचे गिरने लगी। किसी ने उसे सहारा दे दिया।

एक सम्मिलित चीत्कार सुनाई पड़ा। उसी क्षण जन्मे और फर्श पर पड़े बच्चे की रुलाई गूंज उठी। तनूजा उसके पास दौड़ी आयीं।

''लेटकर बच्चा जनना तुम्हारी किस्मत में नहीं था,'' डा. तनूजा ने गर्भिणी को सहलाते हुए कहा, ''खैर! कोई बात नहीं! तुम्हारे बच्चे को कोई चोट नहीं लगी है।''

फिर से उठा स्वस्थ रुदन! फिर भी इस संसार में उस बच्चे का आगमन पतन के रूप में रहा।

बच्चे और जच्चा को कुंजम्मा ने चारपाई पर लिटाया।

बारी-बारी से हर एक टेबल पर पहुंचती कुंजम्मा पसीने से तर हो गयी। कहीं थोड़ी देर बैठकर विश्राम करने की इच्छा हुई। बैठने की बात तो दूर, खड़े होने की भी फुरसत नहीं थी। वह हांफती-हांफती आगे बढ़ी।

जच्चाघर शोरगुल से भरा था। और भी गर्भिणियां आती रहीं। कमरा शोर और चीख-पुकार से मुखरित हो उठा। हर कहीं प्रसव की गंध।

पहलौठी चार घंटों के बाद भी बिलकुल नहीं हिल रही थी। मुरझाई पड़ी थी। हाथ-पांव ढीले छोड़कर वह आंखें ऊपर किये कराह रही थी। चिल्लाने की ताकत तक अब नहीं थी। मुंह तो खुला था। पर हवा तक बाहर नहीं आ रही थी।

डा. तनूजा ने कहा, ''इसे थियेटर ले चलो। अब और कोई चारा नहीं। दर्द कल शाम को शुरू हुआ था न?''

कुंजम्मा और आया सब ने मिलकर पहलौठी को स्ट्रेचर पर लिटाया। आया स्ट्रेचर ठेलकर ले गयी। वे आपरेशन थियेटर पहुंचीं।

डा. तनूजा जब आपरेशन थियेटर में प्रवेश कर रही थीं, तब लगा कि कोई उनके पीछे खड़ा सिसक रहा है। तनूजा ने मुड़कर देखा। कोई नहीं। फिर से तनूजा को हटाते हुए उनके आगे कोई आपरेशन थियेटर में प्रवेश कर गया। तनूजा ने यह महसूस तो किया, पर कोई दिखाई नहीं दे रहा था।

हां, वही था।

सिजेरियन आपरेशन की तैयारियां प्रारंभ हुईं।

तनूजा ने हाथ धोकर दस्ताने पहन लिये। वे मानो नृत्य के लिए तैयार खड़ी थीं!

उनकी आंखें थियेटर में चारों तरफ चक्कर लगा रही थीं।

रोगी को बेहोशी का टीका लगाया गया। उसकी आंखें बंद हुईं। अनेस्थेसिया की रबड़-नली गले के भीतर उतरी। बॉयल मशीन की सुई चलने लगी। लाल व हरा इंडिकेटर ऊपर-नीचे उठने-गिरने लगा।

वह मूर्च्छित हो गयी। अब संसार में और उसके शरीर में कुछ भी चले——उसे पता नहीं चलेगा।

डा. तनूजा ने आपरेशन शुरू किया। उनके चेहरे पर आत्मविश्वास झलक रहा था। वे हर काम बड़ी शांति से करती थीं। जल्दबाजी या परेशानी उन्हें नहीं होती। वे कलापूर्ण ढंग से चाकू लेतीं, काटतीं, बहते रक्त को आर्टरी फोर्सेप्स से रोकतीं।

उसके पेट के नीचले हिस्से में सीधे चाकू चला। पहले पेट, फिर कोख, नन्हा बच्चा खून से लथपथ दिखाई दिया। उन्होंने बच्चे को बाहर निकाला। उसकी नाल काटी गयी। मां से बच्चे का स्थायी संबंध हमेशा के लिए कट गया।

डाक्टर ने बच्चे को पैरों से पकड़कर थोड़ी देर तक उलटा लटकाये रखा। बच्चे के मुंह से कोई पतला द्रव बाहर आया। डाक्टर ने अपनी छोटी उंगली से बच्चे का मुंह साफ किया। फिर उसके चूतड़ पर एक हलकी चपत दी।

चपत लगने पर डाक्टर के हाथ में लटकते बच्चे के चेहरे की नसें सिकुड़ीं। मुंदी हुई छोटी आंखें और भिंच गयीं। नथुने फड़क उठे। कान और लाल हो गये। पहले होंठों में कंपन! बच्चे ने मुंह खोला।

"ऊं आं...ऊं आं...!" प्रथम रुदन! आनंदमय रुदन आपरेशन थियेटर में गूंज उठा।

कपड़ा बिछी अलूमिनियम ट्रे में डाक्टर ने बच्चे को लिटाया।

मां को बेहोशी में ही पड़े देखकर डा. तनूजा बोलीं, "अब तक जो किया वह तुम्हारे बच्चे के लिए। अब जो करेंगे वह तुम्हारे पति के लिए है।"

डाक्टर कोख का घाव सीने लगीं। इस बीच तनूजा ने उसके पेट को थपथपाते हुए पूछा, "अरी, सुन रही हो?"

मिनटों में कोख की सिलाई पूरी हो गयी।

बेहोश करने वाले डाक्टर बॉयल मशीन के पास उससे सटे खड़े हैं। लेकिन उन्हें लग रहा था कि कोई उस मशीन को पीछे की ओर खींच रहा है। उनके पैरों से कोई चीज रगड़ रही है। मगर कुछ दिखाई नहीं देता। हां, वही है।

बेहोशी की दवा देने वाले डाक्टर ने गले से रबड़ की नली निकाली। फिर रोगी की नब्ज पर उंगलियां रखे दूसरे हाथ से उसका माथा सहला रहे थे। डा. तनूजा की सहायिका पेट में टांकें लगाने लगी।

डा. तनूजा ने दस्ताने उतारकर फर्श पर डाल दिये। वे उत्साह से वाशबेसिन की

तरफ बढ़ीं।

तनूजा आपरेशन थियेटर के बगल के ड्रेसिंग-रूम में बैठी चाय की चुसकी लेने लगीं तो किसी ने आकर उनसे कहा, ''मैडम, लगता है, रोगी को कुछ हो गया है।''

चाय का प्याला मेज पर छोड़कर वे थियेटर के भीतर पहुंचीं। अनेस्थीसिस्ट आपरेशन टेबुल के पास घबराये खड़े थे।

''मैडम, रोगी अंडर में ही है।''

डा. तनूजा रोगी को जांचने लगीं। नब्ज देखी, रक्तचाप जांचा।

डाक्टर के चेहरे पर हलकी-सी घबराहट दिखाई दी। उनके हाथ तेज चलने लगे। थियेटर में घबराहट फैली। नर्स और सहायक डाक्टर के चारों तरफ खड़े थे।

रोगी को इंजैक्शन लगाते रहे। तत्काल सेवा की प्रतिध्वनियां थियेटर में गूंज रही थीं।

डाक्टर ने अपने-आप से कहा, ''सांस की गति तेजी से घट रही है।'' उनके शब्द पथराये थे।

एक जोरदार निःश्वास के बाद सांसों की गति अचानक रुक गयी। पांच-दस मिनट बाद छाती धीरे-धीरे फूलने लगी। मगर सांस में न ताल था, न जोर।

रोगिणी आंखें बंद किये निस्संग-सी पड़ी थी। आंखें अनंत शांति से मुंदी पड़ी थीं। मुखमंडल पर पूरा संतोष था। इस धरती को एक बच्चा उपहार में देने का सहज संतोष।

सांस की गति और घटने लगी। रोगी के मुंह का रंग बदल रहा था। पहले होंठों में फीकापन नजर आया। फिर हलका-सा नीला रंग छाने लगा।

डा. तनूजा लाचारी में कुछ भी किये बिना मेज का छोर थामे कुछ क्षणों तक आंखें बंद किये खड़ी रहीं। फिर दिल पर काबू रखते हुए रोगी का माथा सहलाती रहीं।

रोगी का रंग नीला होता गया तो डा. तनूजा ने कहा, ''बिटिया! आइ एम सॉरी...!''

रोगी के नाखून व होंठ नीले हो गये। गाल, नाक, गला--सब काले पड़ने लगे।

सांस एकदम रुक गयी।

डा. तनूजा स्टेथस्कोप लिये आगे आयीं। वे हृदय की धड़कन सुन रही थीं। क्या सुनाई दे रहा है? कौन जाने?

थियेटर में मौन का राज। वहां श्मशान की खामोशी थी। उसके भीतर के सब लोग खामोश थे। आपरेशन के कमरे में आये स्टील के औजार रोगी के पास निश्चल पड़े हैं।

स्टेथस्कोप कानों से हटाकर डा. तनूजा बोलीं, ''दिल की धड़कन भी बंद।''

अचानक आपरेशन थियेटर का झरोखा अपने आप खुला व आप ही बंद हो गया!

हां, वही!

डा. तनूजा दोनों हथेलियों से रोगी की छाती के बायें भाग को जोर से दबाने लगीं। पहले दबाव के जोर से तेज हवा की एक लहर बाहर आयी। दुबारा दबाने पर मुंह से एक पतला द्रव बाहर आया। थोड़ी देर तक डाक्टर कार्डियो-मसाज करती रहीं। पर कोई लाभ नहीं हुआ। रोगी के होठों पर हलके बुलबुले ही दिखाई दिये। और कुछ नतीजा नहीं निकला। हृदय कितनी ही देर पहले रुक गया था।

तब तक रोगिणी पूर्णतः नीले रंग की गठरी हो गयी थी। डाक्टर ने चादर से रोगी का चेहरा भी ढंक दिया।

थियेटर में एक हलकी-सी चीख निकली।

बेंत की टोकरी में पड़ा नन्हा बच्चा रो रहा था।

आदि-रुदन का अनंतर रुदन!

चौदह

सर्जिकल वार्ड के आखिरी छोर पर गलियारा जहां मुड़ता है वहां एक बड़ा कमरा है। कमरे की दीवार पर दरवाजे के ऊपर एक बोर्ड है—श्री गोवर्धन आचारी, एफ.आर.सी.एस.। ये ही सर्जरी विभाग के अध्यक्ष, प्रोफेसर तथा आपरेशन में अत्यंत कुशल मिस्टर आचारी हैं। वे अपने नाम के पहले 'डाक्टर' का विशेषण पसंद नहीं करते। दूसरों के मुंह से 'डाक्टर' संबोधन भी उन्हें पसंद नहीं। प्रो. आचारी का मत है कि सभी मिस्टर हैं।

मिस्टर आचारी अपने कमरे में कुर्सी पर स्वयं बैठे आपरेशन-सूची की जांच कर रहे हैं। सफेद गंजी और काली पैंट ही उनकी पोशाक है। आपरेशन के दिनों में वे अपने कमरे में प्रवेश करते ही कोट, टाई और शर्ट उतारकर अलग रख देते हैं। सांवला रंग, बड़ी तोंद, गोल-गोल आंखें, शरीर के अंग-अंग पर रोएं तथा लंबा कद! उनका उपनाम है 'मिस्टर चिंपांजी'। कई साल पहले उनके छात्रों ने यह दुलारा नाम दिया था। मगर कोई बच्चा तक वह नाम नहीं लेता। उनके सामने पहुंचने पर वह नाम उनके मन में आता तक नहीं। अगर कोई 'चिंपांजी' का नाम भी ले दे तो उसकी जिंदगी बरबाद ही समझिये।

श्री गोवर्धन आचारी की बगल की कुर्सियों में दो सहायक डाक्टर बिल्ली के बच्चों की तरह सिमटे बैठे हैं, उनके विभाग के एक लेक्चरर और रेजिडेंट।

उनकी आंखें भी आपरेशन-सूची की पड़ताल कर रही हैं।

कलम बंदकर, मेज पर रखने के बाद श्री आचारी ने सिर उठाकर पूछा, "कौन-से केस लेने हैं? आज मैं सिर्फ दो केस ही करूंगा।"

सूची पर नजर दौड़ाने के बाद लेक्चरर बोले, "एक प्रोस्टेट और एक किडनी स्टोन का।"

"अच्छा, सभी आकर मिले थे न?" आचारी ने प्रश्न किया। मिलने का सवाल बड़ा सार्थक होता है। मतलब है कि क्या सभी पैसे दे चुके? लेक्चरर, श्री आचारी के अंतरंग सचिव-से हैं। आपरेशन करने वाले रोगी का नातेदार लेक्चरर के यहां जाकर उन्हीं के हाथ में पैसे देते थे। प्रत्येक आपरेशन की फीस मिस्टर आचारी ने फिक्स कर रखी है। उससे ज्यादा हो तो परवाह नहीं, मगर एक रुपया कम तो वे कभी नहीं लेते थे। आपरेशन के दिनों में दस-पंद्रह केस होते हैं। सबसे अधिक पैसा देने वाले दो-तीन केस ही आचारी लेते हैं। बाकी आपरेशन उनके अधीनस्थ सर्जन लोग करते हैं। उनके विभाग में बारह सर्जन

और चार आपरेशन थियेटर हैं–– दो मेजर थियेटर और दो मिनी थियेटर। आचारी मेजर थियेटर में ही आते हैं।

किसी-किसी दिन आचारीजी बड़े जोश में आते हैं। उस दिन सूची के सारे आपरेशन स्वयं कर डालते हैं। पैसे लेने पर उनसे न्याय तो करना होता है। उस दिन सबेरे थियेटर में प्रवेश करने वाले आचारीजी रात तक मानव शरीर पर नश्तर चलाते रहेंगे। उस दिन वे न विश्राम करते हैं, न भोजन। प्रत्येक आपरेशन के पश्चात दस्ताने उतारकर फेंककर एंटी-रूम में आते और गिलास भर नींबू का पानी पीते हैं। अगला रोगी जब तक आपरेशन की मेज पर न पहुंच जाये तब तक वे गजल पढ़ते हैं। गजलें उन्हें अत्यंत प्रिय हैं। वे पुस्तक आंखों तक ले जाकर गजल पढ़ते हैं। थियेटर तैयार होने की सूचना मिलने पर आखिर में पढ़े हुए पृष्ठ पर चुंबन अंकित करके पुस्तक अपनी मेज की दराज में सुरक्षित रखकर ताला लगा देते हैं। किसी की नजर उस पर नहीं पड़ सकती।

आचारी ने फिर से पूछा, ''क्या सभी आकर मिल चुके?''

''दो व्यक्ति मुझसे नहीं मिले,'' लेक्चरर ने कहा।

''अरे वाह!'' आंखों से घूरते हुए आचारी ने प्रश्न किया, ''क्या ऐसे रोगी भी हैं?''

लेक्चरर मौन रहे तो आचारीजी बड़े गुस्से में आ गये। ऊंची आवाज में उन्होंने कहा, ''दोनों को सूची से हटा दो।''

''सर!'' कुछ दबी आवाज में लेक्चरर बोलने लगे, ''एक मामला कुछ नाजुक है।''

''गो टु हेल!'' आचारी कुरसी से उठे, ''उनसे कहो कि वे शीघ्र-से-शीघ्र कब्र की तैयारी करें।'' आचारी ने इंग्लैंड की यात्रा का जो कष्ट उठाया, वह यों ही नहीं, पैसे के लिए है।

कुछ क्षण बाद अपने-आप से बोले, ''जिसके पास पैसा नहीं उसकी जिंदगी बेकार है।''

तब तक सात-आठ मेडिको छात्र आचारी के कमरे में दाखिल हुए।''गुड मार्निंग, सर!'' मेडिको छात्र आचारीजी का अभिवादन कर रहे थे।

आचारी अनसुना करके उन्हें उड़ती दृष्टि से देखते हुए बोले, ''जाकर किसी कोने में खड़े रहो।'' मेडिको छात्र विशाल कमरे में एक तरफ सिमट गये। वे समझ गये कि आज का दिन बड़ा कठिन रहेगा। वे यथासंभव सिमटे रहे। कोई बोला नहीं, फुसफुसाहट तक सुनाई नहीं दी। फिर भी देवदास ने लक्ष्मी की तरफ देखकर धीरे से आंख झपकायी।

वार्ड-बायज स्ट्रेचर पर लेटे रोगी को कमरे में लाये। स्ट्रेचर को रोका गया। रोगी ने लेटे-ही-लेटे हाथ जोड़कर आचारी की तरफ देखा। उन आंखों में श्रद्धा व भय था। उसकी जान आचारी के हाथों में है।

गोरा, स्वस्थ, सुंदर रोगी। तीस-पैंतीस का होगा। कलाई पर रोम नहीं। वहां एक राडो घड़ी है, गले में सोने की चेन।

"घड़ी, चेन– सब उतार दो। तुम स्वर्ग की यात्रा पर हो न?" श्री आचारी ने रोगी को देख हंसते हुए कहा।

रोगी अवश्य ही बड़ा धनी है। नहीं तो आचारी इतनी सौम्यता व मधुरता से बात न करते। आचारी की जेब पहले ही भर दी गयी होगी।

"होशियार भाइयो! होशियार बहनो! दूर क्यों खड़े हो? आओ, आओ, तुम्हें पढ़ने में लगन नहीं है न?" छात्रों को इशारे से बुलाते हुए आचारीजी ने कहा।

मेडिको छात्रों में कुछ कुतूहल उमड़ा। वे स्ट्रेचर के नजदीक आ गये।

देवदास की छाती धड़कने लगी। हर छात्र को डर है कि पता नहीं आचारी जी क्या प्रश्न पूछ बैठेंगे। अगर भूल से भी गलत जवाब दिया तो परीक्षा तक मिस्टर आचारी उसे याद रखेंगे।

"वैसे भी तुम लोग क्या सीखने आये हो? क्या किसी को सीखने की सच्ची इच्छा है? मां-बाप का पैसा लुटाने का दूसरा चारा न पाकर, यहां आये हैं। है न?"

क्षमा-याचना की अदा में खड़े सभी रोगी को देखते रहे।

"यह केस क्या सभी ने देखा है?" आचारी का प्रश्न था।

"सर...!" छात्रों का उत्तर।

"अच्छा! हम आज इस महाशय के गुर्दे से एक पथरी निकालने वाले हैं। एक बड़ा पत्थर," आचारी ने कहा। फिर वे रोगी की तरफ देखकर बोले, "आनंद, आप ये सब बातें सुनकर परेशान न हों। पत्थर चाहे बड़ा हो, चाहे छोटा, आपको पता नहीं चलेगा।"

रोगी की पीठ पर हलकी थपकी देकर उत्साहित करते हुए, आचारी ने कहा, "ठीक! आनंद को थियेटर ले चलो।"

आचारी ने अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे मेडिको छात्रों को बुलाया।

"अच्छा मित्रो! अब बैठ जाओ!" छात्र आचारी की बड़ी मेज के चारों ओर बैठे।

आचारी सारे काम बड़ी तामझाम से करते हैं। उन्हें अपने बड़े कमरे में सब-कुछ मिलना चाहिए। वे छात्रों को अधिकतर अपने कमरे में ही पढ़ाते हैं। रोगी व स्ट्रेचर को अपने कमरे में बुलवा लेते हैं। विभाग की बैठकें भी अपने कमरे में ही चलाते हैं। आचारी के कमरे के और दो दरवाजे हैं––एक आपरेशन थियेटर की तरफ खुलता है, दूसरा प्राइवेट रूम में।

श्री आचारी आनंद की एक्सरे फिल्में एक-एक करके जांचते गये। एक फिल्म-स्टैंड में रोशनी आयी तो आनंद के गुर्दे की पथरी साफ दिखाई दी।

श्री आचारी छात्रों को पढ़ाने लगे। आधे घंटे के बाद सीनियर रेजिडेंट कमरे में आये। आचारी ने सिर उठाया।

"रेडी, सर!" सीनियर रेजिडेंट ने कहा।

"तो आज इतना बस। अब थियेटर चलो।" आचारी उठकर अपने प्राइवेट कमरे में चले गये।

थियेटर के बाहर के कमरे में खासी भीड़ थी। सभी ने जूते उतार दिये। वह जगह रंग-बिरंगे जूतों से भर गयी।

छात्र थियेटर के भीतर दाखिल हुए। आज थियेटर में उनका पहला दिन था। छात्रों को अकसर थियेटर में प्रवेश नहीं दिया जाता। बगल के कमरे में क्लोज्ड सर्किट टी.वी. में ही आपरेशन दिखाया जाता था। मगर आचारीजी अपने छात्रों को सामने खड़ा रखकर आपरेशन करते हैं। छात्रों के लिए उनकी अकेली रियायत यही है।

पथरी का रोगी आनंद आपरेशन टेबिल पर पड़ा है। कुछ समय पहले उसके चेहरे पर जो खुशी नजर आ रही थी, वह जाने कहां गायब हो गयी। लाल-लाल गाल अब कुछ फीके हैं। आंखों में अकारण भय दिखायी देने लगा है।

मुखौटा, टोपी और गाउन पहने श्री आचारी दस्तानों वाले दोनों हाथ, प्रणाम की मुद्रा में रखे आनंद के पास खड़े हैं। आचारी की गोल आंखें एक्स-रे किरण की तरह आनंद के शरीर के भीतर गुर्दे तक पहुंच रही हैं।

आपरेशन थियेटर में ईथर की गंध उभर रही है।

छात्रगण अपना पहला आपरेशन देखने के लिए एक-दूसरे से कंधे रगड़ते, धकियाते हुए सक्रिय हैं।

मूर्च्छा में पड़े आनंद को करवट से लिटाकर पेट की बायीं तरफ नीचे से बाहर रीढ़ तक लंबा घाव बनाया गया। कच्चे गोश्त में तेज धार लगने पर उठा सीत्कार, मौन थियेटर में देवदास ने सुना। एक सिरे से दूसरे सिरे तक खून रिसने लगा। छोटे-छोटे धागे के टुकड़ों की तरह खून की नालियां उभर आयीं। खून से सना आचारी का नश्तर और गहरा चल रहा है। अंगारों की तरह खून के छींटे छिटक रहे हैं। धागे के टुकड़े जैसी खून की नालियां मोटी होती जाती हैं। वे झरनों की तरह बड़ी हो रही हैं। खून की धार बह रही है। चारों तरफ खून बहता जा रहा है। छोटे झरने मिलकर बड़े झरने में बदल रहे हैं। खून का स्तर बढ़ रहा है। कुछ नजर नहीं आता। जहां देखो, लाली ही लाली है।

देवदास लक्ष्मी के कंधे का सहारा ले रहा है। जब तक वह संभाले तब तक देवदास फर्श पर गिर पड़ता है।

देवदास पसीने से तर है। उसका चेहरा कागज-सा सफेद हो गया है। लक्ष्मी जब

उसके कमीज के बटन खोलने लगती है तब आचारी देखे बिना बोलते हैं-–"नथिंग हैपेंड।"

मिस्टर आचारी ने अपना काम जारी रखा।

आपरेशन थियेटर की ड्यूटी-नर्स बेहोश पड़े देवदास की तरफ देख रही थी। तभी श्री आचारी ने कोई चीज मांगी। उस नर्स ने बात तो सुनी, समझी नहीं।

किसी चीज के लिए हाथ उठाये खड़े आचारी की नजर और नर्स की नजर मिली।

"व्हाट आर यू डूइंग, स्टुपिड गर्ल?..." आचारी की आंखें क्रोध से जल रही थीं। "यह कोई नाटक-घर है?"

"सर, सर...!" कुछ कहने लगी, पर जीभ हकला उठी।

"यू गेट आऊट...!" आचारी की आवाज ने पूरे थियेटर को झकझोर दिया। ड्यूटी-सिस्टर क्षण भर हिचककर खड़ी रही।

"आई से, यू गेट आऊट!" आचारी गरज रहे थे!

हाथों में रखा औजार झट टेबिल पर रखकर वह बाहर चली गयी।

"नालायक, किसी काम की नहीं...!" आचारी ने धीमे स्वर में कहा।

उन्होंने जरूरी चीजें खुद झुककर उठा लीं और अपने काम में फिर से लग गये।

दोनों आपरेशन पूरे करके आचारी अपने विश्राम-कक्ष में पहुंचे। उस कक्ष के बाहर एक चपरासी हमेशा रहता है। किसी को उनके कमरे में जाने की अनुमति नहीं। केवल आचारी जिन्हें बुलवाते हैं वे अंदर जा सकते हैं।

आचारी ने थियेटर में बेहोश पड़े छात्र को अपने कमरे में बुलवाया। देवदास आचारी के सामने हाजिर हुआ।

"योर नेम?" आचारी ने पूछा।

"देवदास।"

"गुड नेम। मगर तुम्हारी हिम्मत बहुत कम है।"

"मुझे कुछ याद नहीं है, सर!"

"यह क्षेत्र तुम्हारे जैसे कमजोर दिल वालों के लिए ठीक नहीं है। याद रहे।"

देवदास चुप खड़ा रहा।

"जा सकते हो।"

कुछ समय बीतने पर नर्स को बुलाया गया। अंगारे पर खड़े होने की-सी जलन महसूस करती वह आचारी की मेज के सामने आकर खड़ी हो गयी।

"सिस्टर!" आचारी की आवाज ऊंची उठी, "मेरे साथ काम करना कठिन रहेगा। थियेटर के भीतर कदम रखने के बाद दुनिया के उलट जाने का भी अहसास तुम्हें नहीं होना चाहिए। उसके अंदर सांस लेने तक का हक तुम्हें नहीं है।"

डूयूटी-नर्स का चेहरा सफेद होता जा रहा था। उसके मन में कोई अनजान तड़प महसूस हो रही थी।

''आप समझीं?''

''सर!''

''इधर आओ,'' बड़ी हथेली ऊपर उठाकर आचारी ने उसे बुलाया, ''इस बार मैंने तुम्हें माफ किया।''

आचारी उठकर उसकी तरफ बढ़े। उनकी गरम सांसें उसके सिर पर पड़ रही थीं।

''तुम्हें देखते ही मैं समझ गया कि अच्छी लड़की हो,'' उसका कंधा थपथपाते हुए आचारी बोले,''तुम्हारा नाम क्या है?''

''मेरी।'' उसने कहा

''ब्यूटिफुल नेम।'' मेरी के कंधे पर और एक बार थपथपाते हुए आचारी ने कहा, ''अच्छा, अब जा सकती हो।''

पंद्रह

बुधवार को प्रसूति-विभाग में बड़ी भीड़ रहती है। वह दिन डा. तनूजा का ओ.पी.डी. दिन होता है। उस दिन वे बाहरी रोगियों को देखती हैं।

ओ.पी.डी. में स्त्रियों और बच्चों का दरिया-सा बहने लगा। चीख-पुकार, दीन रुदन व आह-कराह और शो गुल पूरा कमरा से भरा था। माहवारी की तारीख पार की हुई स्त्रियों, माहवारी के विलंब से ' रेशान, पहलौठी वाली व पूर्ण गर्भिणी, कोख में गांठ या श्वेत प्रदर वाली, प्रजनन में असमर्थ पतियों वाली पत्नियां, पतिरहित होने पर भी गर्भ धारण करती अभागिनी कन्याएं, पति के रहने पर भी बांझ बनी पत्नियां——सबसे बढ़कर रोगिणी महिलाएं——डाक्टर तनूजा से मिलने के मौके का इंतजार अधीरता से कर रही हैं।

प्रसूति-विभाग में कुशल डाक्टर और भी हैं। मगर उनमें कोई भी इतनी व्यस्त नहीं। डा. तनूजा से एक बार मिलने भर से, उनके एक बार स्पर्श करने, या कम-से-कम उनका एक शब्द सुनने से, स्त्रियां संतुष्ट हो जाती हैं। उनका रोग दूर होता है।

डा. तनूजा आउटपेशेंट्स वाले अपने कमरे में पहुंच गयीं। समय से आधा घंटा पहले ही वे हर दिन पहुंचती हैं। उनके आने के बाद ही उनकी यूनिट के दूसरे डाक्टर एक-एक कर पहुंचते हैं। डा. तनूजा को इसकी शिकायत नहीं है। कोई देर से आये, तब भी वे नहीं डांटती।

डा. तनूजा बड़ी खूबसूरत हैं। उनकी प्यारी आंखें पूरे संसार को अपने अधीन कर सकती हैं। रोगी, छात्र, डाक्टर व नर्सें——सभी कुतूहल से, अपलक उन्हें देखते रहते हैं।

डा. तनूजा लगभग चालीस बरस की हैं। वे अब भी डाक्टर कुमारी तनूजा हैं। वे कितने ही पुरुषों के स्वप्न व प्रतीक्षाएं भंग करती हुई इस पद पर पहुंची हैं।

डा. तनूजा प्रसिद्ध गायनाकोलाजिस्ट प्रो. चट्टोपाध्याय की छात्रा हैं। तनूजा ने उनके ही अधीन डाक्टरी की सामान्य शिक्षा और उच्च शिक्षा पायी। वे चट्टोपाध्याय की लाडली रही हैं।

दोनों का संबंध दस लंबे वर्षों तक रहा। वे जब साथ चलते, तो देखने वालों को लगता कि वे पिता-पुत्री हैं। कभी लगता——पति-पत्नी हैं, तो कभी लगता—गुरु-शिष्या हैं। उनका संबंध कैसा था? कौन जाने?

चट्टोपाध्याय एक दिन अचानक दिल का दौरा पड़ने से मर गये। उस दिन तक उनका

संबंध निरंतर रहा। तनूजा ने चट्टोपाध्याय की स्मृतियां एक दीर्घ निःश्वास के रूप में हृदय में संजोकर रखी हैं, कभी जाहिर नहीं करतीं।

ओलिव रंग की शानदार साड़ी के ऊपर ऐप्रन पहनकर डा. तनूजा बोलती गयीं––"भेजो, भेजो।"

दरवाजे पर खड़े चपरासी ने पहले रोगी को अंदर भेजा। यह एक वृद्धा थी।

रुई के फाहे-से सफेद बाल। एकदम झुर्रीदार चेहरा। पोपला मुंह।

जबड़ा दिखाती बूढ़ी हंस पड़ी।

"हूं? क्या हुआ?" डा. तनूजा ने पूछा।

"बेटी, मेरी तबियत एकदम खराब है। तुम मेरी अच्छी तरह जांच करना।" बूढ़ी विश्लेषण की तैयारी में है। कमरे के बाहर सौ-सौ रोगी मक्खियों की तरह भरे हैं। फिर भी डा. तनूजा कभी अपने व्यवहार या बातचीत में व्यस्तता या उतावली नहीं दिखातीं। वे सुबह से शाम तक रोगियों को जांचने के लिए तैयार हैं।

"बिटिया, दस-पंद्रह वर्षों से मेरे पेट में बड़ा दर्द है। कितने ही डाक्टरों को दिखा चुकी। फिर भी आराम नहीं मिला। सभी कहते हैं कि पेट में गांठ है। मैंने तो कोई गांठ नहीं देखी। सभी डाक्टरों का कहना है कि आपरेशन करना पड़ेगा। मेरे परिवार में अभी तक किसी ने कोई आपरेशन नहीं कराया है। बेटी, तुम ही मेरी जांच करके सही दवा देना। मुझे चंगा कर देना। अगर पेड़ू में गांठ हो तो उसे दवा से दूर करना।"

डा. तनूजा ने वृद्धा को बेड पर लिटाकर जांचना शुरू किया। बाहर से देखने में पेट काफी भारी लगता था। भीतरी कपड़े हटाने पर दोनों तरफ से ढीला, मगर फूला पेट और पेट पर कपड़े की एक छोटी गठरी दिखी। कोई चीज कपड़े से नाभि से चिपकाकर बांध रखी हो।

"यह क्या है? इसे खोलो!" डा. तनूजा ने कहा।

"नहीं, नहीं! उसे न खोलना। उसे रहने देना।" कपड़े की पोटली अपनी हथेली से ढंकते हुए वृद्धा ने निवेदन किया।

"मुझे जांचना है न! उसे खोलना पड़ेगा," आवाज जरा ऊंची करके डा. तनूजा ने कहा। तब तक यूनिट के रेजिडेंट व हाउस-सर्जन आ पहुंचे।

"नहीं, नहीं, उसे रहने दो," वृद्धा ने हठ किया।

"उसमें क्या है?" तनूजा का कुतूहल जाग उठा।

बूढ़ी रोने लगी। वह अकेली ही आयी थी। साथ कोई नहीं था।

"क्या संतान नहीं हैं?" तनूजा ने पूछा।

"चार हैं। वे सब अपने-अपने पति के घर में हैं।"

"क्या आप अकेली रहती हैं?"

"हां, बड़े घर में अकेली रहती हूं।"

"इतना सारा सोना क्यों बांधे लिये चलती हैं?"

आंसू पोंछते हुए बूढ़ी ने कहा, "अपने अंतिम संस्कार के लिए। अगर यह न हो, तो राह की भिखारिन हो जाऊंगी। मेरी लाश को आग देने वाला कोई नहीं होगा। लाश सड़ जायेगी।" वृद्धा ने बात जारी रखी, "किसी बेटी को भी साथ न लाने का भी यही कारण है। वह यह देखेगी तो लेकर चली जायेगी।"

डा. तनूजा ने वृद्धा की जांच की। पेडू में बहुत बड़ी गांठ है। नासूर हो सकता है। बूढ़ी से कैसे कहा जाये?

"बेटियों को ले आना, यह गांठ निकाल देनी होगी।"

"अगर यह बात है तो मैं चली जाऊंगी!" ऐंठकर बूढ़ी उठी।

तनूजा ने उसे समझाया, "मैं बेटियों से सोने की बात नहीं कहूंगी। अब ठीक है न?"

बूढ़ी उठी और हड़बड़ी में कपड़े पहनकर जल्दी से बाहर चली गयी और भीड़ में डूब गयी।

एक भी क्षण बरबाद किये बिना डाक्टर तनूजा ने अगले रोगी के लिए घंटी बजायी।

करीब तीस बरस का युवक और पच्चीस बरस की युवती पहुंचे। देखने लायक जोड़ी थी। लगता है, प्रभु ने एक-दूसरे के लिए सिरजा हो। पत्नी प्रसन्न थी। पर पति का मुख निराशा से सूखा था।

"अच्छा! दोनों आ गये?" सहजता से तनूजा ने पूछा।

वे दोनों डाक्टर को नमस्कार करके बैठ गये। उसने बड़ी कीमती साड़ी पहनी थी। क्षण भर के लिए डा. तनूजा उस साड़ी पर नजर डाले रहीं। साड़ी से नजर हटाते हुए तनूजा ने पूछा, "रिपोर्ट मिली?" श्रीमान ने एक बड़ा लिफाफा मेज पर रखा।

रिपोर्ट पर नजर पड़ने के बाद डाक्टर तनूजा के चेहरे पर उदासी छा गयी।

"यही कहा था न कि शादी पांच साल पहले हुई?"

"हां।" दोनों ने एक स्वर में कहा।

"परवाह नहीं! हम रास्ता निकालेंगे। कौन-सा रोग है जिसकी दवा नहीं है?" वे तनूजा के शब्द ध्यान से सुन रहे थे।

श्रीमान ने पूछा, "क्या इसकी भी दवा है?" क्षण भर तनूजा मौन रहीं।

युवक पैंट की जेब से रूमाल लेकर माथे का पसीना पोंछने में व्यस्त था। स्त्री ने अपनी छाती को साड़ी से और ढंक लिया।

युवक बोला, "डाक्टर! यह तथ्य जानने में मुझे पांच साल लगे।"

"कभी-कभी पूरा जीवन लग जाता है," तनूजा ने कहा।

युवक ने कहा, "कोई बात नहीं, हम लोग ऐसे ही जीवन बिता लेंगे, अगर किस्मत में वही लिखा है, तो वही सही।"

वे उठे। पुरुष व स्त्री——दोनों।

तनूजा ने कहा, "गुड बाई।"

अगली बारी श्रीदेवी नामक रोगी की थी। उम्र चौंतीस साल। कालेज में प्राध्यापिका। छह बच्चों की मां।

वह एम.टी.पी. (मेडिकल टर्मिनेशन आफ प्रेग्नेंसी) चाहती है। यानी गर्भ गिराना चाहती है।

बड़ी देर तक तनूजा सोचती रहीं। क्या वे उस पेशे में अपने आने का कारण सोच रही थीं? या इस पेशे से बचने की बात सोच रही थीं? यह कोख प्रकृति की बड़ी अद्भुत लीला है। यह कितनी और कैसी बलाएं लाती है! आकार में सिर्फ हथेली जितनी बड़ी कोख, गर्भाधान करने पर प्रति मास बढ़ते-बढ़ते छाती तक आ पहुंचती है। बच्चे को बाहर धकेल देने के पश्चात वह कुछ ही दिनों में पूर्व स्थिति में आ जाती है। कभी गर्भपात्र असाध्य रोग का उर्वर क्षेत्र बन जाता है। वह संसार की मुखाकृति को ही बदलता है।

कोई बात याद करती-सी डा. तनूजा ने पूछा, "इसे क्यों गिराना चाहती हो?"

"अब और एक बच्चे को जन्म नहीं दे सकूंगी, डाक्टर! जन्म देने पर भी पालना-पोसना संभव नहीं होगा।"

हताश मातृ-भावना के शब्द!

"अच्छा, अच्छा!" तनूजा ने अपने सहायक से कहा, "इन्हें एक दिन तय कर दो।" आते समय पति को भी ले आना। मैं उससे कुछ बातें करना चाहूंगी। आगे यह दुहराना नहीं है न?"

तीन-चार लोग डाक्टर के कमरे में घुस आये। वे बिशप का खत ले आये थे। वे बोल नहीं रहे थे। पर उनके चेहरे के भावों से स्पष्ट था कि मामला संगीन है।

डा. तनूजा ने खत खोलकर पढ़ा।

मिसेस जोन की तबियत ठीक नहीं है। वह बिशप की सुपुत्री है। शादी के सोलह वर्ष बाद ही वह गर्भवती हुई। चार-पांच महीने हो गये। बिना किसी समस्या के दिन बीत रहे थे। दो सप्ताह पहले आखिरी चैक-अप के लिए जब आयी तब भी कोई गड़बड़ी नजर नहीं आयी। जरा-सा खून बह गया था। पर अब वे सब बातें कहने से लाभ? गर्भ की बात रही! कोई नहीं बता सकता कि कब और किस जगह पर गर्भ पर क्या बीतेगी?

"मिसेस जोन कहां हैं?"

"इमर्जेंसी कमरे में ।"

"ठीक, मैं अभी आयी।" असिस्टेंट से कहकर डा. तनूजा रेजिडेंट के साथ इमर्जेंसी में पहुंचीं।

मिसेस जोन चालीसवें साल में पहुंच रही थीं। इमर्जेंसी में बेड पर वह दर्द के मारे तड़प रही थी। उसका पेट दसवें महीने का-सा था।

तनूजा ने स्नेह के स्वर में सिर सहलाते हुए पूछा, "मिसेस जोन! क्या हुआ?"

"हाय रे! अब नहीं सहा जाता।" मिसेस जोन इतना ही कह सकी। वह नजर पलटकर हाथ-पैर पटकती जा रही थी।

डा. तनूजा और सहायकों ने आपातकालीन सेवा प्रारंभ की।

पंद्रह मिनट भी नहीं बीते कि सारी प्रतीक्षाओं के विरुद्ध मिसेस जोन ने महीने पूरे होने के पहले ही बच्चे को जन्म दे दिया। कोख से जो निकला वह बच्चा नहीं था। अगर बच्चा होता, तो महीने पूरे होने तक उसे इनक्यूबेटर में रखकर बचाया जा सकता था।

मिसेस जोन अब तक धोखा दे रही थी। उसका गर्भ नकली था। मिसेस जोन की कोख से जो निकली, वह गांठ थी।

डा. तनूजा निराशा से आहत हो गयीं। रोगी-परीक्षा में पराजय का होना कोई अंसभव बात नहीं। मगर तनूजा ने कभी नहीं सोचा था कि मिसेस जोन पर ऐसी आफत टूट पड़ेगी।

डा. तनूजा उस दिन दूसरे दिनों की अपेक्षा देर में क्वार्टर पहुंचीं। पोर्टिको में कार रोकने पर मां हमेशा की तरह बरामदे में मिली।

किट सोफा पर डालकर तनूजा थकी-हारी बैठ गयीं। मां कॉफी ले आयी। मां और बेटी आमने-सामने बैठ गयीं।

काफी पीने पर डा. तनूजा को नयी चुस्ती महसूस होने लगी।

वे दोनों उस क्वार्टर में अकेली रहती थीं। मां के साथ के लिए बेटी और बेटी के लिए मां। पिता उन दोनों को पहले ही छोड़ गये थे।

मां ने खुशी से कहा, "बेटी! कल सबेरे वे लोग आयेंगे।"

"अच्छा! आखिर उन्होंने वह निश्चय कर लिया। है न?"

"बेटी, तुम भाग्यवती हो!"

मां वर्षों से डा. तनूजा को विवाहित देखना चाहती है। उसका दृढ़ विश्वास है कि स्त्री-जन्म लेने पर एक पुरुष के साथ जीवन बिताने पर ही नारी-जीवन की सफलता होगी। क्या सेवा, क्या शुश्रूषा, समय बीतते-बीतते जी ऊबने लगेगा। परिवार ही स्त्री के जीवन को आलोकित करने वाला दीपक है। मां यह बात तनूजा को बराबर बताती थी।

मां के चेहरे पर जीवन के लक्ष्य के साक्षात्कार की प्रसन्नता प्रकट है।

तनूजा भोजन के बाद, ऊपर अपने कमरे में पहुंची और दरवाजा बंद करके उन्होंने स्टीरियो ऑन किया। मेंहदी हसन की गजलें कमरे में भरने लगीं--

"एक उम्र भी कम है
हाले दिल सुनाने को
एक याद काफी है
उम्र भर रुलाने को।"

परदा हटाकर उन्होंने कांच के झरोखे से बाहर की तरफ देखा।

चांदनी रात थी। आसमान पर तारे छिटक पड़े थे। अस्पताल का शहर चांदनी में नहाया था। क्वार्टर के सामने की सड़क वीरान थी। सड़क एकाकी पथिक की तरह गांव की ओर धीरे-धीरे रेंगती सी लग रही थी। गांव की सरहद में, कहीं से आवाज उठी। आकाश में पटाखे उठे।

कहीं मेला लगा है। आसमान पर तारे, पृथ्वी पर उत्सव! सब के लिए एकांत!

वृक्षों के पत्तों के झुरमुट के बीच से चांद को देखा, तो तनूजा को लगा कि उनके नयनों से एक परदा मानो हट गया। उससे विदित हो गया कि सारा विश्व ज्योति में लीन है।

डा. तनूजा नीचे पहुंची तो मां अपने कमरे में भक्तिगीत पढ़ती हुई लेटी थी।

"बेटी! इस वक्त! कैसे?" मां ने पुस्तक बंद करते हुए पूछा।

"मां, उनसे कह दो कि वे न आयें।"

"क्यों? क्या हुआ?"

"मुझे यह शादी नहीं चाहिए।"

तनूजा कदम-कदम, ऊपर छत की ओर बढ़ीं। वे होंठों में मेंहदी हसन की गजल बुदबुदा रही थीं--

"एक याद काफी है
उम्र भर रुलाने को।"

सोलह

छह रोगियों को एक कतार में, छह पलंगों पर चादर ओढ़ाकर लिटाया गया है। नाक व मुंह को छोड़कर शरीर का और कोई अंग बाहर दिखाई नहीं दे रहा है। विभिन्न रोग वाले छह रोगी हैं। किसी नाटक में मौन रूप में मरे पड़े कथा-पात्रों की तरह वे निश्चेष्ट पड़े हुए हैं।

डा. संतुकुमार चारपाइयों की परिक्रमा करते गये। वे चारपाइयों पर चादर ओढ़े मरीजों को एक बाज की तरह देखते गये।

छात्र मौन खड़े हैं। किसी को पता नहीं कि आगे क्या होगा। डा. संतुकुमार अकसर चमत्कार जैसा कुछ करते हैं।

देवदास को संबोधित करके उन्होंने पूछा, "इनके बारे में कुछ बता सकते हो?"

यह कैसा सवाल है? डाक्टर का मतलब क्या है? उनके विनोद अकसर छात्रों को चकराते हैं।

निरुत्तर, विवश खड़े देवदास को बढ़ावा देते हुए संतुकुमार बोले, "अरे! कुछ तो कहो।"

"छह रोगी..." देवदास ने कहा।

संतुकुमार की प्रतिक्रिया प्रसन्नता की नहीं रही। वे कोई और जवाब चाहते थे।

"नेक्स्ट?"

"छह मनुष्य।"

"इक्जैक्टली।" डा. संतुकुमार भाव-विभोर हो गये। उनका भारी-भरकम शरीर कभी उनके लिए आज्ञाकारी नहीं रहता। फिर भी भारी तोंद तीन-चार बार हिल उठी, तो उन्होंने हाथ से उसे थाम लिया।

"लक्ष्मी ने ठीक कहा। जब तक हम इनकी रोग-परीक्षा नहीं करते, तब तक ये सिर्फ आदमी हैं", डा. संतुकुमार ने प्रसन्नता से कहा, "मगर मैं यहां कुछ करतब दिखाने जा रहा हूं। मैंने इन लेटे रोगियों को नहीं देखा है। मेरे हाउस-सर्जन ने इन्हें चादर से पूरी तरह ढंककर लिटाया है। मुझे इनकी जीभ देखकर उससे रोग का पता करना होगा। आदमी की जीभ कई कामों में दक्ष होती है——चबाना, निगलना, स्वाद बताना, गुदगुदी भरना, भाषण देना, बातें करके लोगों को तंग करना, आदि। जीभ सिर्फ इन्हीं के लिए नहीं बनी

है। वह एक दर्पण है जिसमें शरीर की सारी चेष्टाएं प्रतिबिंबित होती हैं। हर रोगी की जीभ पर उसके रोग-लक्षण इतने स्पष्ट लिखे मिलते हैं मानो शिला में टंके हों। सात सुरों में अपना प्रिय स्वर जैसे हम अलग सुनते हैं वैसे ही हम आंख से जीभ को देखकर जरूरी बातें समझ सकते हैं, और रोग को पहचान सकते हैं।"

डा. संतुकुमार ने अपना कार्यक्रम शुरू किया। कमरे के दीपक बुझाये। सारी खिड़कियां खुलवायीं। दिन की रोशनी में वे अपने हाथ पीठ-पीछे बांधे, झुककर देखते हुए छहों जीभें बड़े ध्यान से जांचते गये। उन्होंने पांच रोगियों के रोगों के नाम बताये। छठे रोगी के विषय में कुछ समय सोचने के बाद मौन धारण कर लिया।

हाउस-सर्जन ने रोगी का चार्ट उनके हाथ में दिया, जिसमें रोग का नाम भी लिखा था। संतुकुमार ने जो रोग बताये थे, पांच में चार ठीक थे। जिसके विषय में मौन रहे वह स्वस्थ था।

एक जादूगर की-सी खुशी से वे अपनी कुर्सी पर बैठ गये। मेज पर रखे मर्तबान से वे पानी गिलास में उंड़ेलकर गटागट पीते रहे। तोंद और फूली। लग रहा था कि तोंद मेज के भीतर दुबकती, लुढ़कती जा रही है।

"अच्छा! अच्छा! बुलाओ।"

संतुकुमार का आउटपेशेंट शुरू हो रहा है।

पहले पंद्रह साल की एक लड़की आयी। देखने में मुश्किल से पांच वर्ष की लगती है। नाटी, सूखी चमड़ी। पीले मुंह पर बेजान पपड़ायी आंखें सूनी पड़ी हैं।

"इसे क्यों ले आये?" क्रोध से संतुकुमार ने पूछा।

"रोग में कोई कमी नहीं है, हुजूर!"

"मैंने नहीं कहा था कि स्वस्थ हो जायेगी। मैंने इसे यहां दाखिल कराने को कहा था न? तुम माने नहीं," संतुकुमार की आवाज ऊंची हो रही है।

"घर पर अकेला हूं। बच्चों की मां पिछले महीने गयी। इससे छोटे चार बच्चे हैं। उनकी देखभाल करने वाला घर में कोई नहीं है।"

"श्रीमानजी, रोगी यहां एक बेड पाने के लिए तरसते हैं। बेड देने को मैं खुद तैयार हुआ तो तुम्हें नहीं चाहिए। तुम्हें अपना परिवार ही चाहिए।" हाउस-सर्जन को संबोधित करके संतुकुमार ने कहा। संतुकुमार हर बात हाउस सर्जन को देखकर कहते हैं।

"हुजूर, अबकी बार दाखिल कराने ही आया हूं।"

"बड़ा करतब दिखाने आये हो!" डा. संतुकुमार ने रोगी की नब्ज देखी और कहा, "एक चटाई में लपेटकर घर ले जाओ।"

"क्या घर पर इलाज कराना काफी है, हुजूर?"

तोंद संभालते हुए संतुकुमार उठे।

"इलाज की जरूरत नहीं है। सुनो श्रीमान, इसकी मां को जिस गढ़े में दफनाया है उसकी बगल में और एक गढ़ा खोद लेना। जाओ, मेरे सामने से भागो। चटाई में लपेटकर ले जाओ।"

वह पिता रोगी बच्ची को अपनी छाती से सटाये रोने लगा। चालीस बरस के उस आदमी की आंखों के आंसू सूख चुके थे।

"हाय, हाय! रोना शुरू कर दिया।" डा. संतुकुमार ने हाउस-सर्जन को संबोधित करके कहा, "अच्छा, अच्छा! इसे वार्ड में भेजो। हाई प्रोटीन डाइट देना। दोनों फेफड़े खतम हो गये हैं। फिर भी कोशिश करेंगे।"

अगला रोगी किसी कार्यालय में काम करता, चालीस बरस का एक चपरासी था। वह रोगी के स्टूल पर बैठा।

"तकलीफ क्या है? संक्षेप में कहो।"

"थकान...भारी थकान...।" इतना कहकर उसने दोनों होंठ कसकर बंद कर लिये।

"भारी क्यों? क्या थकान काफी नहीं है?"

डा. संतुकुमार ने उसकी आंखों की पलकें खोलकर देखा, जीभ देखी, नब्ज की जांच की और पूछा, "दूध पीते हो?"

"नहीं।"

"अंडे खाते हो?"

"नहीं।"

"मछली-मांस?"

"नहीं।"

संतुकुमार की मुखाकृति बदली। क्रोध-भरी आवाज में उन्होंने पूछा, "घास खाते हो?"

रोगी ने आंखें झपकने के बाद कहा, "सर, एक तरह से घास खाने की भी गुंजाइश नहीं है। मैं एक चपरासी हूं। रिश्वत नहीं लेता। माता-पिता, पत्नी और बच्चों की देखभाल करने के लिए ही वेतन कम पड़ता है।"

रोगी का कंधा थपथपाकर संतुकुमार ने टेबिल पर लेटने के लिए कहा। आगे उनका व्यवहार बड़े प्यार व दया का रहा। रोगी को अच्छी तरह जांचा। अलमारी से बढ़िया टानिक व बिस्कुट निकालकर उसे दिये।

"दोस्त, तुम्हें कोई रोग नहीं है। खाने की कमी ही थकान लाती है। नियम से चना और मूंग खाओ। सुविधा मिलने पर मछली-मांस खा लेना। बीच-बीच में यहां आओ तो ऐसी दवाएं भी दूंगा।"

रोगी की आंखों में आशा की किरणें चमक उठीं।

"अच्छा, जाओ," संतुकुमार बोले, "सिर्फ घास खाने पर मर जाओगे, बताये देता हूं। और एक बात। आफिस में सारी फाइलें जल्दी-जल्दी पहुंचाना। सुना?"

डा. संतुकुमार से भी हट्टा-कट्टा एक आदमी आ गया। उम्र साठ से अधिक होगी। उंगलियां सोने की अंगूठियों से लदी। कीमती सेंट की खुशबू। चंदन के तेल की सुगंधि, सिंदूर का टीका लगाये। साथ सांवले रंग का सेवक था।

"अरे आप अभी तक मरे नहीं?" डा. संतुकुमार ने पूछा।

"नहीं, मैं नहीं मरा हूं।"

धनी सेठ डा. संतुकुमार के ओ.पी. के नियमित रोगी हैं। इनसे मिलने पर डा. संतुकुमार पहला सवाल हमेशा यही करते हैं।

"वह बड़ी बेंच ले आओ! इस स्टूल पर ये बैठें तो मोजाइक फर्श टूट-फूटकर बिखर जायेगी।" संतकुमार ने वार्ड-बाय को आवाज दी।

"ह...ह...ह!" धनी सेठ हंसे।

बेंच पर बैठकर हांफना बंद होने के बाद सेठ ने कहा, "प्रेशर देखना, शुगर देखना, ई.सी.जी. देखना, हे प्रभु! मुझे कब प्रेशर आयेगा? मेरे खून में कब शुगर आयेगा?"

ये सब धनिक की नियमित मांगें हैं। उसके सारे अमीर दोस्तों को ब्लड प्रेशर, शुगर और दिल का दौरा आदि रोग होते हैं। कई लोग समय से पहले ही अदृश्य भी हो चुके हैं।

"इतनी जल्दी क्यों मरना चाहते हैं?" संतुकुमार ने प्रश्न किया। हमेशा का प्रश्न।

"मैं मरना नहीं चाहता। मुझे तो अच्छे अच्छे रोग चाहिए। दवा करानी चाहिए। उसके बाद रोग से मुक्ति पाकर लंबी उम्र बिताना चाहता हूं। क्या मुझे गोली खाने की इच्छा नहीं होगी?"

संतुकुमार ने धनी के कान में लगी हीरे की बाली छूकर पूछा, "लालाजी, क्या आप औरत हैं? उस बाली की क्या जरूरत? यह पत्नी को दे दीजिए। उन्हें शोभा देगी।"

"नहीं, मैं इसे नहीं उतारूंगा। मेरी मां को बेटी नहीं हुई थी। मैं अपनी मां की आखिरी संतान रहा। मां अपनी मृत्यु तक मुझे एक लड़की ही मानती थी। लड़कपन से बड़े होने तक मैं लड़की की पोशाक में रहा। संतू, क्या आप यह बात जानते हैं?"

धनिक संतुकुमार को कभी संतू पुकारते, कभी डाक्टर। ओ.पी. का बहुत सारा समय बर्बाद करने के बाद धनी सेठ बाहर निकला।

देहाती दंपती दुख और लज्जा से भरे खड़े थे।

"रोग किसे है?" संतुकुमार ने पूछा।

पति और पत्नी परस्पर देखते हुए खड़े हैं। इसके बाद पत्नी नीचे की ओर देखती हुई अंगूठे से फर्श कुरेदने लगी।

पति बड़ी ऊंची आवाज में कहने लगा, "कोई रोग नहीं है।"

"फिर क्यों मुझे तकलीफ दे रहे हो?"

"तकलीफ देने नहीं आये। ब्याह किये चार साल बीत गये...।" उसकी आवाज और ऊंची हो उठी। उसकी बात पूरे आउटपेशेंट में सुनाई दे रही थी। चारों तरफ के लोग उन पर ध्यान देने लगे।

"मगर आप बीमार हैं," पतिदेव को थपथपाते हुए संतुकुमार ने कहा।

"मुझे बीमारी? अजी, मैं बिलकुल चंगा हूं।" वह पहले से अधिक ऊंची आवाज में चिल्लाया। ऊंची आवाज की बोली शायद जन्म से ही साथ रही हो।

"सुना, दोस्तो," संतुकुमार ने छात्रों और चारों तरफ खड़े अन्य लोगों को संबोधित करते हुए कहा, "आप जानते हैं कि इसका रोग क्या है? इसने छोटी उम्र में एक माइक निगल लिया था।"

आउटपेशेंट में ठहाके गूंज उठे।

"श्रीमानजी, जरा धीरे बोलिए," संतुकुमार ने कहा।

"इसने अभी तक बालक को जन्म नहीं दिया," पत्नी की ओर इशारा करते हुए पति ने कहा। उसकी आवाज धीमी होती गयी। प्रयत्न करके आवाज धीमी करने के कारण शब्द एक-एक करके ही बाहर आये।

"मुझे क्या करना है?" संतुकुमार ने पूछा।

"इसको गर्भिणी बना देना है," पति ने अपनी जरूरत समझायी।

संतुकुमार ने क्षमायाचना के स्वर में कहा, "मैं असमर्थ हूं!" छात्रों की ओर इशारा करके पूछा, "क्या आप में से कोई मदद कर सकते हैं?"

पति का चेहरा फीका पड़ गया। पत्नी की नजर पाताल तक पहुंच गयी।

"बैठो," पत्नी से संतुकुमार ने कहा! "हर महीने नहाती हो?"

पत्नी ने पति की तरफ देखा।

संतुकुमार ने कहा, "उसके नहाने की बात नहीं पूछी! तुम्हारे नहाने की बात पूछी थी।"

इसके बाद संतुकुमार उनसे धीमी आवाज में बातचीत करने लगे। उनके चेहरे पर खुशी व प्रसन्नता जाहिर होने लगी। उन्होंने उन दोनों को जांच के लिए लैबोरेटरी भेजा।

अब बीस साल का एक युवक आया। वह चारों तरह हिचकिचाती नजर से देखने लगा। संतुकुमार ने सिर उठाकर उसकी तरफ देखा——हूं"

उसने बड़े संकोच से कहा, "खाज?"

"अरे! यह तो भीषण रोग है। कहां? देखूं।"

युवक फिर संकोच करने लगा। उसने लड़कियों की तरफ देखा।

"जल्दी करो! मेरा वक्त बरबाद हो रहा है।"

संतुकुमार को गुस्सा आ रहा था।

युवक ने खाज वाला अंग अपने कपड़े को छूकर दिखाया।

"अच्छा, चड्डी उतारो।"

युवक ने दीवार की तरफ मुंह किये चड्डी खोलकर नीचे फर्श पर डाल दी। संतुकुमार ने खाज को जांचा। फिर उन्होंने चड्डी की तरफ देखा। वह मैली और फटी थी।

डाक्टर ने मेज पर पड़ा एक चिमटा लेकर उससे वह चड्डी उठायी और रद्दी की टोकरी में डाल दी। फिर युवक से कहा, "अरे, तुम क्यों नहीं जा रहे हो? तुम्हारी बीमारी दूर हो चुकी।"

उसी समय तीन-चार आदमी एक व्यक्ति को बांहों का सहारा दिये भीतर ले आये। साथी सेवकों की भीड़ के कारण संतुकुमार रोगी को देख नहीं सके।

"इतनी बौखलाहट क्यों? क्या, तुम सब मिलकर उसको निचोड़ रहे हो? मैं जरा रोगी को देख तो लूं।"

उन्होंने रोगी को टेबिल पर लिटाया।

"बोलो, मामला क्या है?" संतुकुमार ने पूछा।

"एकाएक छाती में दर्द उठा। बगल वाले डाक्टर के पास गये। जांचकर उन्होंने कहा कि शायद दिल की बीमारी हो सकती है। तभी हम इधर दौड़े आये।"

"अच्छा, अच्छा, अब जरा दूर खड़े रहो।"

संतुकुमार रोगी को जांचने लगे। माथा, आंख, पेट, छाती और नब्ज की परीक्षा करने के बाद उन्होंने रोगी के साथियों से कहा, "तुम्हारे जैसे लोग अगर साथ आयें तो अभी इसका जो हृदय है वह अपने आप रुक जायेगा। खैर, दूसरे डाक्टर ने क्या कहा था?"

"कहा कि शरीर से मेहनत नहीं करनी चाहिए। पूरा आराम और इलाज करना चाहिए।"

"अच्छा! यह बात है?" संतुकुमार उसे अपने दायें हाथ से अपने हृदय पर थप्पड़ लगाते हुए कहा, "लेटे हुए इस आदमी के हृदय की गति रुक जाने से पहले मेरे हृदय की गति रुक जायेगी।" रोगी को थपथपाकर बोले, "दोस्त, उठकर घर भाग जाओ। कोई दवा नहीं चाहिए। रोज कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी चीरना! बागवानी या प्रकृति का अध्ययन, जो चाहे करो। मगर एक बात का ध्यान रखना। पेट में गैस भरी है।"

निर्जीव-से पड़े रोगी के चेहरे पर लाली आ गयी। मुरझाये फूल खिले।

दोपहर के दो बज गये। संतुकुमार उठे और सहयोगियों को संबोधित करके कहा, "शेष सबको आप लोग इलाज करके मार डालिये। गुड बाई!"

संतुकुमार साइकिल पर सवार हुए।

इमर्जेंसी के सामने भीड़ में अपने चिरपरिचित व्यक्तियों को देखा तो संतुकुमार साइकिल से उतरे।

चिरपरिचित व्यक्ति ने कहा, ''हमारे लालाजी मर गये।''

संतुकुमार क्षण भर स्तब्ध रह गये।

''लाला? क्या मजाक कर रहे हैं? अभी कुछ घंटों पहले ही वे पत्नी के साथ मुझसे मिलकर विदा हुए थे!'' संतुकुमार ने अचरज से प्रश्न किया।

''हां, उसी यात्रा में दुर्घटना हुई। लाला की मोटरगाड़ी बेकाबू होकर एक ट्रक से जा टकरायी।''

संतुकुमार इमर्जेंसी पहुंचे।

इमर्जेंसी की मेज पर वे धनी निर्जीव पड़े थे। उंगलियों पर सोने की अंगूठियां और कानों में हीरे की बालियां चमक रही थीं।

धनी की खोपड़ी फट गयी थी। मस्तिष्क बाहर निकल आया था।

'संतू, मुझे प्रेशर चाहिए, शुगर चाहिए, फिर दवा चाहिए।'

धनी की आवाज संतुकुमार के कानों में गूंज रही है।

संतुकुमार साइकिल पर चढ़े, सड़क से आगे बढ़े, तो थोड़ी दूर पर एक ट्रक और मोटर परस्पर गुंथे पड़े दिखाई दिये। पास पहुंचने पर संतुकुमार साइकिल से उतरे। लोग आपस में बात करते हुए चारों तरफ खड़े थे।

धनी लालाजी रोज जिस मोटर में सफर करते थे वह ध्वस्त पड़ी है। बोनेट चपटा हो गया है। रेडियेटर टूटा है, पानी सड़क पर बह रहा है। कांच टूटकर चूरचूर हो गया और हेडलाइट भीतर घुस गया है। स्टीयरिंग व सीट मिलकर नीचे धंसे हैं। तारकोल पुती सड़क पर बहते-पसरते पेट्रोल में सातों रंग झलक रहे हैं।

मोटर के तीन पहिये ही बचे थे। जो पहिया अलग होकर दूर जा गिरा है वह सड़क के नीचे एक गढ़े में सीधा खड़ा है।

उस पहिये के प्रति अपना कर्तव्य निभाने के बाद, अनजान की तरह वह अज्ञात व अरूपी कहीं चलने को तैयार खड़ा है।

सतरह

सिस्टर मेरी डा. आचारी के कमरे से बाहर आयी। मेरी को देखकर द्वार पर ड्यूटी करता चपरासी धीरे से गुनगुनाया। मेरी उस पर ध्यान दिये बिना गलियारे की परिक्रमा करती तेजी से चली गयी।

मेरी के चेहरे से कुछ घबराहट झलक रही है। चेहरा कुछ फीका भी पड़ा है। वह कलफ लगाकर इस्तरी की हुई वर्दी में पड़ी सिलवटों को लोगों की नजर से बचाकर दुरुस्त करती जा रही है।

"इतनी देर कैसे हुई?" रवींद्रनाथ ने पूछा। मेरी क्षण भर हिचकी। रवींद्रनाथ ने उसे आचारी के कमरे से आते देखा था। इसके अलावा मनहूस वर्दी में जहां-तहां सिलवटें भी पड़ी थीं। उन्होंने कहीं कोई शक तो नहीं किया?

"ओह ! कुछ नहीं। एक्सरे फिल्म लेकर गयी थी," मेरी ने एकाएक कहा।

"कहां?"

"डा. आचारी के कमरे में।"

"सावधान रहना!" आवाज धीमी करके रवींद्रनाथ ने कहा, "वह आदमी ठीक नहीं, बड़ा शोहदा है !"

"अच्छा, जाऊं !" मेरी जल्दी करने लगी।

"क्या आगे से मेडिकल वार्ड में नहीं आओगी?" रवींद्रनाथ ने धीरे से पूछा।

"जरूर ! मगर मैट्रन की कृपा होने पर ही।"

मेरी जब कमरे में पहुंची तब कुंजम्मा हाथ में एक खत लिये कुछ सोच रही थी।

मेरी वर्दी उतारने लगी तो कुंजम्मा ने कहा, "क्यों छुटकी, तुम मुझसे कुछ क्यों नहीं पूछतीं?"

जब स्पष्ट हो गया कि मेरी बातें करने के मूड में नहीं है तो भी कुंजम्मा ने बात जारी रखी।

"छुटकी, पूछो न कि चिट्ठी किसकी है?"

मेरी ने जमीन पर पड़े जूते पैरों से पंलग के नीचे धकेल दिये। फिर बड़ी मुश्किल से अपना शरीर नाइटी के भीतर कर लिया।

चारपाई पर लेटते हुए मेरी अनमनी-सी पूछ बैठी, "किसका पत्र है, दीदी?"

कुंजम्मा चुप। वह नाराज है। पत्र तहाकर तकिये के नीचे रखकर लेट गयी।

दोनों लेटे-लेटे छत की ओर ताक रही थीं। दोनों के पास कई भेद हैं जिन्हें एक-दूसरे से छुपाना संभव नहीं।

मेरी सिसक उठी। उसके होंठ कांप रहे थे। आंखें भरी थीं।

कुंजम्मा अपने पलंग से उछल पड़ी और मेरी के पलंग पर पहुंची।

"मेरी छुटकी ! तुम्हें क्या हो गया?"

"नहीं, मुझसे नहीं होगा, दीदी! सर्जिकल वार्ड का काम मैं नहीं कर सकती। खतरे के डर से परेशान हूं।"

"हुआ क्या?" कुंजम्मा उतावली थी। घटना कोई भी हो, कुंजम्मा को गरम-गरम ही सुनना है।

"वह आदमी है ा! आचारी ! वह हमेशा परछाईं की तरह मेरा पीछा करता रहा है।" मेरी अपना भेद ध ी-धीरे खोल रही है।

"अरी, तुम्हारे विषय में वे बहुत अच्छी राय रखते हैं। तुम्हारे बारे में मैट्रन से बड़ी तारीफ के शब्द कहे थे। आज भी मैट्रन ने यह दुहराया है।"

"वे मुझे वहां से बदलने नहीं देंगे, यह तो पक्का है। मैं आठ-नौ महीनों से वहां हूं। मैट्रन मुझे वार्ड से थियेटर और थियेटर से वार्ड में बारी-बारी से बदलती रहती हैं।"

"मैट्रन से क्यों नहीं कहती? मैट्रन तुम्हारी बड़ी हितचिंतक है न?"

"कितनी बार कह चुकी ! कोई फायदा नहीं है दीदी, सुपरिंटेंडेंट ने मैट्रन से स्पष्ट कहा है कि मेरा तबादला नहीं करना चाहिए।"

"सच !" कुंजम्मा उछल पड़ी।

"सब उस आचारी की शैतानी है। मेरी मौत भी उसी थियेटर में होगी," थोड़ी देर बाद मेरी ने जोड़ा, "नहीं तो मैं उसे जान से मार डालूंगी।"

मेरी फूट-फूटकर रोने लगी। कुंजम्मा ने उसे बड़ी देर तक समझाया-मनाया।

"दीदी, उस धूर्त ने आज मुझे अपने कमरे में घंटा भर कष्ट दिया।"

उत्कंठा से कुंजम्मा ने पूछा, "क्या तुम्हें सताया?"

"खास जबरदस्ती नहीं की। मैं मानी नहीं। छूने तक नहीं दिया। आखिर कहता है——तुम्हारी अनुमति से ही कुछ करूंगा। कहता है कि उस के मन में औरतों के प्रति प्यार से अधिक आदर की भावना है।"

"तुम कैसे बच गयीं?" कुंजम्मा ने पूछा।

"आखिर वह थककर पलंग पर लेट गया। दीर्घ निःश्वास भर रहा था तो मैं जल्दी से दरवाजा खोलकर बाहर आ गयी।" मेरी के मन को राहत-सी महसूस होने लगी। वह आगे बोली, "वह खूसट बुड्ढा चौकीदार मेरे आते वक्त कुछ व्यंग्य के स्वर में गुनगुनाने

लगा। मानो सचमुच कुछ हुआ हो।"

आगे दोनों कुछ नहीं बोलीं। कुंजम्मा उठकर अपने पलंग पर लेट गयी।

मेरी की मानसिक पीड़ाएं टूटे बांध के पानी की तरह उमड़कर बह चलीं। उसकी पेशियां कुछ ढीली हो गयीं। वह चारपाई पर शांति खोज रही थी।

"उई!" कुंजम्मा के मुंह से निकली आवाज सुनकर मेरी ने प्रश्न किया, "बोलो दीदी, खत किसका था?"

कुंजम्मा ने उठकर कहा, "अरे, उसी का है, पति महाशय का। लिखा है, कल पधारेंगे।"

"यह बढ़िया बात रही।" पलंग से उठकर मेरी कुंजम्मा के शरीर से कसकर लिपट गयी। फिर बंधन से छूटकर कहा, "खुश हो जाओ, दीदी ! खुश हो जाओ ! तुम्हारे चेहरे की उदासी देखी तो मैं हैरान हो गयी। यों ही स्वांग कर रही थीं न?"

कुंजम्मा की आंखों में दुख छा गया। वह थकी-हारी थी।

"मेरी बिटिया, नहीं, मुझसे नहीं होता।" कुंजम्मा चारपाई पर पड़ी सिसकने लगी। मेरी की समझ में कुछ नहीं आया, वह ताकती रही।

"क्या हुआ, दीदी? बोलो।"

"नहीं, नहीं, कुछ नहीं, मैं जरा सोऊंगी।"

कुंजम्मा चारपाई पर पेट के बल लेट गयी। दोनों अपनी-अपनी दुनिया को लेकर दुखी हैं।

दूसरे दिन फौज का सिपाही पेटी व बिस्तर लिये होस्टल आ गया।

सिपाही बहुत थका था। शायद लंबी यात्रा की थकान थी। इसके बावजूद कुंजम्मा को देखते ही उसका चेहरा खुशी से खिल उठा।

कुंजम्मा एक चमड़े का बैग लिये सिपाही के साथ रिक्शे में सवार हो गयी।

मैट्रन हेलन सिंह ने अपने कमरे में ही बैठे-बैठे उनको देखकर, पर उनकी नजर से बचकर शुभयात्रा की कामना की।

वे हमेशा जिस होटल पर आते थे वहीं पहुंचे। रिसेप्शनिस्ट ने हंसते हुए उनका स्वागत किया।

"क्या पुलिस से फौज में चले गये?" रिसपेप्शनिस्ट ने सिपाही से पूछा।

"नहीं तो, मैं फौज में ही था।"

"अच्छा, अच्छा," अपनी भूल पर दुखी होकर रिसेप्शनिस्ट ने कहा। पर कुंजम्मा कुछ घबरा गयी।

वे कमरे की तरफ गये। उस कमरे की खिड़की व दरवाजा सड़क की तरफ खुलते थे। कुंजम्मा ने खिड़की खोलकर शहर की तरफ देखा।

सिपाही ने पीछे से आकर कुंजम्मा को एकदम शरीर से लपेट लिया।

"छोड़ो।" कुंजम्मा ने अपने को छुड़ाया।

"जाकर कपड़े बदलो। तुम्हारी खाकी कमीज बदन से जब रगड़ती हैं तो सुरसुरी-सी लगती है। जाकर नहा लो। उसके बाद, बस।"

उत्साह ठंडा पड़ गया। सिपाही ने उसे छोड़ दिया।

वह जब बाथरूम गया तब मानो छूट जाने की खुशी से फिर से शहर को देखती रही।

वह बदन पर लाइफबाय साबुन की सुगंध लिये फिर से आया। उसका बदन तब भी गीला था। कुंजम्मा का सिर और चेहरा गीले हो गये।

कुंजम्मा उससे सटकर खड़ी तो हो गयी, लेकिन उसमें कोई गरमी महसूस नहीं हुई।

सिपाही उसे छोड़कर थोड़ी देर चारपाई पर अकेला बैठा रहा। कुंजम्मा खिड़की से फिर से नगर देखने लगी।

सिपाही ने टिन का बक्सा खोला। खुलने की आवाज सुनाई पड़ी। उसने पेटी से बनारसी साड़ी, काशी की माला और आगरे का पेठा बाहर निकाला। अपनी प्रिय पत्नी के लिए सारे उपहार उसने बिस्तर पर करीने से संजाये।

"कुंजम्मा, जरा इधर आओ तो ! शहर की तरफ यों किसे ताक रही हो?"

सिपाही ने बनारसी साड़ी का पैकेट खोला। खुद अपने बदन पर हाथ से साड़ी का पल्लू पसारकर औरतों की ही तरह चलकर देखा।

"अच्छी साड़ी है। तुम्हें पसंद आयी, कुंजम्मा?" सिपाही ने चलते-चलते पूछा।

कुंजम्मा को किसी चीज में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह सड़क पर पसीने से तर चलते आदमियों, बैलों, मक्खियों की तरह आदमियों से घिरी बाजार की दुकानों को, जाने क्यों देखती खड़ी रही।

"आओ, कुंजम्मा ! हम साथ लेटें !" भेंट की चीजें एक बगल में हटाकर बिस्तर हाथ से थपथपाते हुए सिपाही ने निमंत्रण दिया।

सिपाही अधीर हो रहा था। उसने एक सिगरेट सुलगाया। दो-तीन बार धुआं छोड़ने के बाद सिगरेट का ठूंठ खिड़की से सड़क की ओर फेंक दिया। उसने सोचा था कि धड़ाका होगा, अग्निकांड होंगे। घंटी बजाते हुए दमकल तेजी से आयेंगे। बड़ा हाहाकार गूंज उठेगा। पंद्रह मिनट बीत जाने पर भी कुछ नहीं हुआ।

धीरज का बांध टूट गया तो सिपाही एकाएक उठा, कुंजम्मा को गोद में उठाकर चारपाई पर लिटा दिया। उसके बाद उसने क्या क्या किया, खुद उसको भी पता नहीं लगा।

यात्रा की थकान और दूसरी तकलीफों से सिपाही जाने कब सो गया।

नींद टूटी तो उसकी बगल में कुंजम्मा लेटी थी। उसने उसे बदन से कसकर लगा

लिया और चूम लिया। मगर उसने दुबारा चूमना नहीं चाहा। वह बेजान-सी पड़ी थी।

उसने कुंजम्मा को पेट भर गाली दी। गांव और पलटन में जितनी गालियां सीखी थीं सब दोहरायीं। उसने स्त्री का अपमान करने वाले सारे काम किये।

फिर भी कुंजम्मा विचलित नहीं हुई। सिपाही का गुस्सा तब भी ठंडा नहीं हुआ तो उसने कुंजम्मा के गाल पर जोर का तमाचा लगाया।

कुंजम्मा न रोई, न एतराज ही प्रकट किया। सारे जुल्म समाप्त हुए तो सिपाही थक गया। वह यों ही बिस्तर पर लेटकर गमछे से अपनी कांख का पसीना पोंछने लगा।

एकाएक कुंजम्मा बात करने लगी।

"सुनो जी ! मुझे माफ कर दो।"

कुंजम्मा के मुंह से ये शब्द निकले, तो सिपाही चौंक उठा। उसने कुंजम्मा के गले लिपटते हुए पूछा, "क्या हुआ, मेरी जान?"

"मुझे क्षमा करना," कुंजम्मा ने दुहराया।

"हजार बार क्षमा करूंगा," सिपाही बोला, "तुम जो चाहो कहो।"

"हां वही, मैं सुनना चाहती थी। अजी, आपको प्रिय न लगने वाली बात सुनाने जा रही हूं।"

"तुम बोलो तो सही, जान !"

कुंजम्मा सिपाही से कुछ हटकर लेट गयी और उसके चेहरे की तरफ देखे बिना कहा, "मेरा पांव भारी है। मैं गर्भिणी हूं।"

"क्या?" सिपाही ने तड़पकर कहा।

"हां, सही बात है। मैं शर्माजी के बच्चे को गर्भ में धारण किये चल रही हूं।"

सिपाही तांडव करने लगा।

"कौन शर्माजी? मैं उसे जान से मार डालूंगा।"

कुछ समय बीता तो सिपाही ठंडा हुआ। इस पर कुंजम्मा ने सिपाही को सारे भेद बता दिये।

पूरी बातें सुनने पर एकाएक सिपाही संवेदनाशून्य हो गया। फिर वह कुंजम्मा के पेट पर मुंह रखकर नन्हे बच्चे की तरह फूट-फूटकर रोया।

वह बड़ी देर तक रोता रहा। आधी रात होते-होते सिपाही की सिसकी थम गयी। दूसरे दिन बड़े सवेरे कुंजम्मा जाग उठी, तो सिपाही अपना टिन का बक्सा और बिस्तर लेकर कमरा छोड़ चुका था।

कुंजम्मा को न बौखलाहट हुई, न ताज्जुब। लगा कि वह भी इसी का इंतजार कर रही थी।

कुंजम्मा अपने चमड़े का बैग लेकर होस्टल लौटी।

कुंजम्मा को देख मेरी ने ताज्जुब से पूछा, "दीदी, क्या हुआ?"

"कुछ नहीं छुटकी, वह चला गया।"

"कहां?"

"जहां से आया था, वहीं गया होगा।"

इतना कहने के बाद कुंजम्मा कागज का एक पन्ना लेकर सब-इंस्पेक्टर शर्माजी को पत्र लिखने लगी।

उस दिन शाम को शर्माजी वर्दी में होस्टल आये। वर्दी में वे और अच्छे लग रहे थे। शर्माजी का व्यक्तित्व उनकी वर्दी वाली पोशाक में ही प्रकट होता था।

अतिथि-कक्ष में शर्माजी से सटी बैठी कुंजम्मा ने सारी बातें सुनायीं।

"तुम काहे को डरती हो, लड़की? सिपाही लौट आयेगा। मुझे मालूम है कि आखिर वह कहां तक जायेगा।"

"मगर मैं नहीं चाहती कि वह लौटे।"

कुंजम्मा शर्माजी के पथ पर नहीं आ रही थी।

आश्चर्य-सूचक शब्दों में शर्माजी ने पूछा, "तो तुम्हारे बच्चे के लिए क्या कोई बाप नहीं चाहिए?"

"मेरे बच्चे का और एक बाप अभी है न?"

शर्माजी ने और एक तथ्य प्रस्तुत किया, "तुम्हारे बच्चे का बाप तुम्हारा पति ही हो, यही दुनिया का कायदा है न?"

"मगर..." कुंजम्मा ने रुककर कहा, "मेरा पति स्वाभिमानी है। जिस क्षण उसे पता लगा कि मेरी कोख का बच्चा आपका है, उसकी क्षण उसने मुझे छोड़ दिया। वही जायज भी है।"

शर्माजी को सिहरन-सी लगी। उसके रोएं क्षण भर उठ खड़े हुए।

कुंजम्मा बड़बड़ाती गयी—"मुझे और कोई नहीं चाहिए। मेरे लिए अपने शर्माजी काफी हैं।"

"इसमें कोई समस्या नहीं है, मैं तो यहीं हूं।" एक नकली हंसी चेहरे पर लाते हुए वे बोले।

"केवल होने से काम नहीं चलेगा। दुनिया को बताना होगा कि मेरे बच्चे के पिता आप हैं," कुंजम्मा भावावेश से बोली, "यह कुंजम्मा उस शुभ दिन की प्रतीक्षा में है...अरे, कहीं हमको धोखा नहीं देना।"

शर्माजी उठे और मेज पर से टोपी लेकर उसने सिर पर ठीक से लगा ली। काली छड़ी को सहलाते हुए कहा, "कुंजम्मा, क्या तुम्हारी तबियत खराब है?"

कुंजम्मा भी अच्छे मूड में थी।

"मुझे कोई तकलीफ नहीं है।"

"तो सुनो, श्रीमती!"

शर्माजी अपनी छड़ी हाथ में लिये जरा-सा घूमे और कहा, "अगर यह बात है तो इसी शहर में मुझे पिताजी पुकारने योग्य कम-से-कम दस बच्चे होंगे। उनकी दस माताएं भी होंगी।"

कुंजम्मा उठकर सब-इंस्पेक्टर शर्माजी की तरफ बढ़ी।

शर्मा ने आगे बढ़ती कुंजम्मा के पेट में छड़ी धंसाकर उसे रोका। फिर एक हलका-सा धक्का दिया।

कुंजम्मा सोफे पर गिर पड़ी।

अपनी टोपी और एक बार जमाने के बाद सब-इंस्पेक्टर शर्मा छड़ी घुमाते हुए नर्सों के होस्टल के फाटक को पारकर बाहर निकल गये।

अठारह

मैट्रन हेलन सिंह छुट्टी का दिन मनाने की तैयारी में है। उसने एक पुराना बैग खोलकर अनेक साड़ियां पलंग पर सजायीं और उन्हें तरह-तरह से परखने लगी। फिर एक-दूसरे के कंट्रास्ट रंगों के क्रम से सजाने का प्रयास प्रारंभ हुआ।

किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी।

"आओ!" मैट्रन ने सिर उठाकर बुलाया।

मेरी अंदर आ गयी।

"शाबाश !" मेरी को देखकर मैट्रन प्रसन्नता से बोली, "तुम अच्छे वक्त पर आयी हो !"

मेरी हेलन सिंह के सामने आकर खड़ी हो गयी। मैट्रन ने पलंग पर बिछायी साड़ियों की ओर इशारा करके कहा, "इनमें से सबसे सुंदर मेरे लायक कोई साड़ी पसंद करो।"

मेरी ने साड़ियों पर एक नजर डाली। फिर थोड़ी देर तक मैट्रन को देखती रही। तब हेलन सिंह ने पूछा, "मेरी ! यों क्यों देख रही हो? मानो मुझे पहले कभी न देखा हो।"

मेरी बोली, "नहीं मैट्रन, मैट्रन का आज का मूड देख रही हूं। मैट्रन रोज मूड बदलती रहती हैं न।"

"वाह !" मैट्रन बोली, "लड़की साहसी होती जा रही है।"

क्षण भर हिचकते रहने के बाद मेरी ने एक साड़ी उठायी, जैसे ज्योतिषी का पिंजरे का तोता राशिफल का पुर्जा चोंच से उठाता है।

"शाबाश !" मैट्रन बोली, "मेरा मन भी उसी साड़ी पर था। तुम्हारी सौंदर्य-चेतना बढ़ती जा रही है।"

साड़ी खोल अपने कंधे पर डाले हेलन सिंह आईने के सामने जा खड़ी हुई और कई कोणों से परखने लगी।

"अच्छी है," मैट्रन स्वयं बोली।

उसने मेरी से पूछा, ''तुम्हारा आज का कार्यक्रम क्या है?''

''जरा बाहर जाना है," मेरी ने कहा।

"डाक्टर रवींद्रनाथ के साथ?" हेलन सिंह ने एकदम स्पष्ट पूछा, "क्यों मेरी, मैंने

तुम्हें बताया था न कि किसी के भी साथ जाओ, प्यार करो, पर डाक्टरों का विश्वास न करना। क्या इतनी जल्दी भूल गयी?"

मेरी थोड़ी देर कुछ सकपकायी। उसे शब्द नहीं मिल रहे थे। वह हकलाते हुए बोलने लगी, "नहीं मैट्रन, नही, मैं कुंजम्मा के साथ जा रही हूं !"

"कोई बात नहीं छुटकी, तुम्हें काहे का डर? रवींद्रनाथ के साथ जाने में भी कोई समस्या नहीं। वह अच्छा आदमी है। मगर बाद में कोई गड़बड़ी होने न पाये, बस इतना ही।" हेलन सिंह मेरी की तरफ कनखियों से देखते हुए बोली, "बाई द वे, कुंजम्मा क्यों छुट्टी कैंसिल करके लौट गयी?"

"उसके पति को फौरन अपनी ड्यूटी पर वापस जाना पड़ा," मेरी ने कहा।

"क्या हुआ?"

"रेजिमेंट से तार आया !"

"ऐं ! क्या सीमा-प्रदेश पर कहीं युद्ध तो शुरू नहीं हो गया?" हेलन सिंह को संदेह हुआ।

"कौन जाने?" मेरी बोली।

"अच्छा, अच्छा ! बोगस थिंग्स !" हेलन सिंह ने कहा, "तुम मेरी कुछ मदद करो न ! अगर सुविधा हो तो आज का प्रोग्राम कैंसिल कर दो।"

मेरी सहमत हो गयी।

"आज मेरे मेहमान आने वाले हैं। वी.आई.पी. हैं। वह प्यारेलाल अभी तक नहीं आया। कहां मर गया है वह?"

"मैं यहां रहूंगी," मेरी ने कहा।

"थैंक्यू।" हेलन सिंह के ओठों पर मुस्कुराहट फैल गयी।

वह किचन में पहुंची।

"अंडे उबालकर रखे हैं। उन्हें काटकर, मिर्च लगाके घी में तल लेंगे। टमाटर जूस में सासेज तैयार करना है। बीफ काटकर रखा है। हरी मिर्च, प्याज, व मक्खन के साथ उसे जरा फ्राई करना है। झींगा मछली और मटर मिलाकर बनायी नूडल्स फ्रिज में हैं। उन्हें गरम कर लेना। प्यारेलाल ब्रेड वगैरह ले आयेगा।" एक ही सांस में इतनी सारी बातें कहकर मैट्रन अपने कमरे में लौटी।

मेरी ने पांच-छह लाल-लाल टमाटर निचोड़कर उनका रस निकाल लिया। प्याज छील ली। हरी मिर्च काट ली। बिजली के हीटर पर पतीली में मक्खन पिघलने लगा। प्याज व हरी मिर्च घी में जब कुछ काले रंग के होने लगे तब मेरी ने टमाटर जूस उसमें उंड़ेल दिया। उसके बाद सासेज का टिन खोलकर सासेज पतीली में डाल दिये। कड़छल चलाते समय मेरी को अवर्णनीय आनंद आने लगा। उसने कल्पना में क्षण-भर अपने सामने मैट्रन के

मेहमान को अपना बनाया सासेज खाते देखा।

थोड़ी देर में किचन से मुंह में पानी भरने वाली कई तरह की महक उठने लगी। मेरी पसीने से तर थी।

किचन में आई मैट्रन ने मेरी की पीठ सहलाते हुए कहा, "वाह ! तुमने मेरे कमरे को रेस्तरां बना डाला।" उसके बाएं हाथ में स्टैंप्स वाली एलबम थी, निश्चय ही उसमें अब तक वह डूबी रही होगी।

प्यारेलाल झोले में चीजें लिये किचन में पहुंचा।

दो बोतल बीयर, एक लंदन बूथ्स जिन, ब्रेड, जैम, केयरफ्री।

हेलन सिंह को कुछ क्रोध-सा आ गया, "तुमने इतनी क्यों देर क्यों कर दी?"

प्यारेलाल ने क्षमा-याचना के स्वर में कहा, "मेम साहब ! बीयर आने में देर लगी। गरमी के दिन हैं न? जितनी भी आती है, लोग पी जाते हैं।"

"अच्छा ! तुम आज जल्दी जा सकते हो। कल सबेरे आकर बर्तन धो देना, बस!" मैट्रन ने आगे पूछा, "तो ! आज मेरा कोई खत नहीं आया क्या?"

"नहीं, मेम साहब ! जितने भी आये आफिशियल थे," हमेशा की तरह प्यारेलाल बोला।

"शायद कल आये!" नियमानुसार मैट्रन ने भी कहा।

बाहर कोई आहट सुनकर वह कमरे में पहुंची। हेलन सिंह ने दरवाजा खोला तो बाहर तिवारी बाबू मुस्कुराते खड़े थे।

हेलन सिंह ने पूछा, "क्या मिसेस नहीं आयीं?"

"वाह !" कमरे के भीतर कदम रखते हुए तिवारी बोले, "मुझे तो अकेले आने को कहा था।"

तभी अंदर मेरी पर उनकी नजर पड़ी। मैट्रन हेलन सिंह का चेहरा पल-भर के लिए फीका पड़ गया। वह घबराहट-भरी आवाज में बोली, "तशरीफ रखिए...बैठिए तिवारी बाबू!" कनखियों से मेरी को देखा।

मेरी कुछ न समझने का स्वांग करती खड़ी रही।

"मेरी...," हेलन ने मेरी का परिचय कराया, "इस होस्टल की सबसे अच्छी लड़की।" फिर अपने को सुधारते हुए झट से बोली, "नहीं, इस देश की सबसे अच्छी लड़की।" मेरी हाथ जोड़े तिवारी के सामने खड़ी हो गयी। फिर मैट्रन पर नजर डाली।

लाल व पीले फूलों वाली साड़ी पहने हेलन सिंह आज अतिशय सुंदर लग रही थी।

काजल लगे विस्फारित नयन, उम्र बताने में सकुचाते गाल, मुस्कुराहट व लिपस्टिक से चमकते होंठ, बड़ी नाक जिसे काट कर खा जाने की इच्छा होती है, ठुड्डी तो वाह...!

"मेरी ! तुम जा सकती हो," हेलन सिंह ने कहा। मेरी बाहरी दरवाजे की तरफ बढ़ गयी।

तिवारी ने सोफे पर बैठकर कमीज के बटन खोले। उनकी छाती के रोएं बाहर उछल पड़े।

हेलन सिंह ने पंखा तेज कर दिया।

अलमारी से एलबम लेकर तिवारी के हाथ में देती हुई बोली, "कुछ समय यह देखते रहिए। मैं ड्रिंक्स तैयार करूं।"

"हाय रे ! मैं एक बात भूल ही गया... ।" जेब टटोलकर एक लिफाफा बाहर निकालते हुए तिवारी ने कहा, "थैंक गॉड, मैं भूला नहीं।"

तिवारी ने वह लिफाफा हेलन सिंह की तरफ बढ़ाया। उसमें स्टैंप थे––पांच-छह।

खिलौने पा जाने वाले बच्चे की तरह स्टैंप लिये वह खिड़की की तरफ दौड़ी। सूरज की रोशनी में स्टैंपों को परखने लगी। सब देखने के पश्चात एक स्टैंप लेकर आगे आयी और कहा, "यह तो बड़ा अजीब स्टैंप है। मैं कितनी लकी हूं...स्वीट !" हेलम ने वह स्टैंप होंठों से लगाकर सीत्कार किया। उसने स्टैंप को चूम लिया।

"एक्सक्यूज मी, आइ विल मेक द ड्रिंक्स !"

हेलन सिंह किचन में गयी। लंदन बूथ्स जिन, लाइम कार्डियल और बर्फ का चूरा मिलाकर दो जिमलेट बनायीं। कांच के मर्तबान में से एक-एक चेरी लेकर गिलास में डाली। चेरी के पड़ते ही जिमलेट की खूबसूरती बढ़ी।

तिपाई पर जिमलेट को रखते हुए हेलन सिंह ने कहा, "चिल्ड बियर है। वही आपकी फेवरिट है न?"

तिवारी जिमलेट का लंबा, पतला गिलास दोनों हथेलियों से सहलाते हुए बोले, "मेरे लिए यह सुंदरी ठीक रहेगी।"

हेलन हंसी, "आप सुंदरियों को ही पसंद करते हैं?"

"फिलहाल यही बात है। दूसरी भी पसंद हैं। मगर यह बात अलग है।"

तिवारी जिमलेट को धीरे-धीरे सिप करते रहे।

भाप-जमे गिलास पर उंगली से उकेरते हुए तिवारी बोले, "मुझे आपने एकदम स्त्री बना दिया!"

"दिन में जिन ही सबसे उचित है," हेलन सिंह ने कहा, "स्त्री व पुरुष दोनों के लिए वही ठीक है।"

"जिन पीने से पुरुष की ताकत कम हो जाती है," तिवारी ने कहा।

"उसका बढ़िया उपाय है," हेलन बोली।

"सो कैसे?"

"उसके बाद रम पीनी चाहिए।"

"ठीक है," तिवारी ने कहा।

"असल में मुझे रम ही पसंद है," हेलन बोली।

"आपको?" आश्चर्य भरे स्वर में तिवारी ने पूछा।

"हां।'' दृढ़ता से हेलन बोली।

एकाएक खामोशी छा गयी।

हेलन ने संदेहपूर्वक पूछा, "क्यों, क्या आप रम पीने वाली औरतों को पसंद नहीं करते?"

तिवारी क्षण भर सोचने के बाद बोले, "उसका कोई जवाब तुरंत देना मुश्किल है।"

"सो क्यों? अपने विचारों की आजादी हमेशा है। और तो और, आप तो फिलासफी के प्रोफसर भी हैं।"

"फिलासफी ही नहीं, लाजिक भी मैं पढ़ाता हूं।"

"दोनों एक-दूसरे से मिलते विषय हैं,'' हेलन ने एक दलील की तरह कहा।

"शाबाश !" तिवारी ने एक घूंट में जिमलेट का गिलास खाली कर दिया। तब तक बर्फ घुल गयी थी। लिपस्टिक वाले अधर जैसी चेरी गिलास में बची थी।

"उसे भी खाइए," हेलन बोली।

तिवारी ने गिलास मुंह को लक्ष्य करके उलट दिया। जबड़े के बीच में चेरी पिस गयी।

तिवारी ने कहा, "फिलासफी और लाजिक दोनों मुझे पसंद हैं। मगर समस्या और है। एक दूसरे पर चढ़ बैठने की कोशिश करता है।"

हेलन सिंह ने कहा, ''संसार ही ऐसा है न? विश्व का प्रत्येक परमाणु रौंदा जाता है !''

''आप बहुत पढ़ी हुई लगती हैं।"

"नहीं, थोड़ा-बहुत पढ़ा होगा। पर अभी जो कहा वह अपने अनुभव की बात है।"

तिवारी बोले, "जहां तक मेरा अनुमान है आपके पास अनुभव का विशाल खजाना है।"

हेलन सिंह ने कुछ याद-सा करते हुए जिमलेट का एक घूंट लिया। उसकी आंखें खिलते-खिलते विस्फारित होती गयीं। वे वर्षों पूर्व की तरफ उड़ती जा रही थीं। एकाएक हेलन ने कहा, "यही मेरी कमाई है।"

"क्या?" तिवारी ने पूछा।

"मेरा अनुभव। मगर मेरे अनुभव बड़े अप्रिय थे। उन अनुभवों ने मुझे एकदम बेकार बना डाला। देखिए प्रोफसर तिवारी, मैं कभी नर्स होना नहीं चाहती थी। मेरी इच्छा डाक्टर

बनने की थी। मगर एक अनाथ कन्या का अरमान हमेशा की तरह टूट गया था।" हेलन अपनी आत्मकथा सुना रही थी।

"एक नर्स के लिए अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा सुरक्षित रख पाना बड़ा कठिन है। वह अस्पताल में सिर्फ एक कठपुतली है। उसके व्यवहार पर बेड़ियां पड़ी रहती हैं। खासकर डाक्टर लोगों की। मेरा यह शरीर ही देखो। एक डाक्टर ने दस साल तक इसे अपनी संपत्ति-सा बना रखा था। उसने सारे अच्छे-बुरे काम मेरे शरीर के साथ किये। मैंने उस पर पूरा भरोसा रखा। मगर जब उसकी नजर में मुझसे अधिक खूबसूरत औरत आ गयी तब उसने मुझे धोखा दिया। बाद में मैंने अपना तबादला करा लिया। उससे अधिक-से-अधिक दूर मैं पहुंची। किंतु मेरी स्मृतियां अब भी उसी नगर पर मंडरा रही हैं। उसके बाद मैंने पुरुषों के चेहरे को सिर उठाकर नहीं देखा है। मैं उनसे नफरत करती हूं। खासकर डाक्टरों से। पांच-छह साल गुजर जाने पर भी मेरा घाव अभी भरा नहीं है। उससे अभी तक खून रिसता रहता है। वह मेरी आत्मा से टपकता खून है। उसका स्रोत नहीं सूखेगा।"

हेलन सिंह उठकर बाथरूम चली गयी। वह पसीने से तर थी। उसका जिमलेट भी खत्म हो चुका था।

हाथ-मुंह धोकर लौटी हेलन सिंह फिर से उल्लसित हो गयी।

"देखिए, तिवारी बाबू, पांच-छह वर्ष बाद मैं पहली बार एक पुरुष के सामने बैठी हूं।"

तिवारी ने ताज्जुब से पूछा, "क्या बिलकुल नहीं बैठी हैं?"

"बैठी हूंगी। लेकिन दिल से नहीं," हेलन ने कहा।

तिवारी के मुखमंडल पर प्रसन्नता हिलोरें ले रही थी। उनकी आंखों में हौसले की चमक थी।

तिवारी बड़े प्यार से बोले, "मुझे कोई गरम चीज चाहिए।"

"यहां कोई गरम चीज नहीं...मेरे शरीर की गरमी तक ठंडी पड़ गयी है," हेलन सिंह ने बड़े दर्द से कहा।

"वह तो मैं मानने को तैयार नहीं।"

तिवारी ने उसके मुखमंडल की तरफ ध्यान से देखते हुए कहा, "हेलन सिंह खूबसूरती को भले ही छोड़ दे, पर खूबसूरती हेलन को नहीं छोड़ेगी।"

हेलन सिंह क्षण-भर सिर उठाये खड़ी रही। उसका स्वाभिमान उभर रहा था। खुशी को छिपाये वह बोली "बेस्ट कंप्लिमेंट्स।" हेलन ने किचन की तरफ चलते हुए कहा, "मैं जरूर कुछ गरम चीज ले आऊंगी।"

हेलन सिंह दो गिलास रम ले आयी।

हेलन ने पूछा, "आपने यही कहा था कि रम पीने वाली स्त्रियां आपको पसंद नहीं?"

"मैंने ऐसा नहीं कहा है," तिवारी अपनी बात स्पष्ट कर रहे थे, "रम पीने वाली स्त्री को मैं पसंद नहीं करता। मगर मेरी प्रिय स्त्रियों का रम पीना मुझे बहुत पंसद है।"

"आपका विषय जरूर लाजिक है," हेलन ने कहा।

तिवारी ने भावावेश से दो-तीन घूंट रम के ले लिये। गरम निःश्वास उनके मुंह से निकले। उन्होंने एक सिगरेट सुलगायी। धुएं से हवा में छल्ले बनाने लगे।

हेलन सिंह धुएं से छल्लों का बनना और हवा में उनका अदृश्य होना कुतूहल से देखती रही।

"तिवारी बाबू, खाना लगाऊं? आपका पेट जल रहा होगा," हेलन ने पूछा।

तिवारी चुपचाप धुएं के छल्ले छोड़ रहे थे।

हेलन सिंह किचन की तरफ चलने लगी।

उसने सॉसेज, भुना मांस, नूडल्स, तले अंडे, ब्रेड——एक-एक करके छोटी मेज पर लाकर सजाये।

भोजन देखा तो तिवारी ने गिलास में बची रम समाप्त कर गिलास खाली कर दिया।

"भेड़िये की-सी भूख है," तिवारी बोले।

"जो पसंद हो उससे शुरू करें। बढ़िया वेजिटेबिल सूप तैयार है। एक प्याला दूं?" हेलन सिंह ने पूछा।

"सूप दीजिए। क्रम न टूटे। शिष्टाचार का उल्लंघन करके भोजन करने से क्या लाभ?" तिवारी ने अपने खाली गिलास का स्पर्श करते हुए कहा, "भोजन के साथ मुझे रम का एक पेग चाहिए। इधर हेलन सिंह ने रम लाकर मेज पर रखी, उधर किसी ने दरवाजा खटखटाया जोर से। क्षण-भर बाद फिर से जोर से दस्तक सुनाई दी। बाहर जैसे कोई छोटा-सा हंगामा हो गया हो।

हेलन सिंह ने दरवाजा खोला तो मिसेस तिवारी एक बाघिनी की तरह भीतर दाखिल हुईं। वे हांफ रही थीं। उनकी आंखें क्रोधग्नि से जल रही थीं।

तिवारी की तरफ इशारा करके उन्होंने पूछा, "जनाब यहां क्या कर रहे हैं?...इस बंद कमरे में?"

रम का गिलास कसकर थामे हुए तिवारी स्तब्ध रह गये। हेलन सिंह भी भौंचक रह गयी। दोनों ने ऐसे दृश्य की उम्मीद नहीं की थी।

"कुछ शराफत भी चाहिए। मुझसे कह सकते थे कि यहां आ रहे हैं।" फिर हेलन की ओर इशारा करके कहा, "इस स्त्री को मैंने ही आपसे मिलवाया था न?"

हेलन सिंह ने पूछा, "इतना बौखलाने की बात क्या है? आखिर यहां क्या हुआ?" झट उसने हिम्मत जुटा ली।

मिसेस तिवारी ने मुंहतोड़ जवाब दिया, "बंद कमरे में क्या नहीं हो सकता?"

"आओ, चलो," तिवारी की कमीज के कालर को पकड़कर मिसेस तिवारी बोलीं, "घर चलें। शेष बातें उसके बाद करेंगे।" तिवारी ने छोटे बालक की तरह उनका अनुगमन किया।

सीढ़ियां उतरते हुए मिसेस तिवारी हेलन सिंह को मुड़कर देखते हुए बोलीं, "तुम्हें सबक सिखाऊंगी।"

आगे मिसेस और पीछे तिवारी गेट को पार कर रहे थे। हेलन सिंह देखती ही रही।

जब दरवाजा बंद करने गयी तभी हेलन सिंह ने देखा कि होस्टल के निवासी बरामदे में खड़े-खड़े सारा तमाशा देख रहे हैं।

उन्नीस

वह अस्पताल के सेंट्रल आउटडोर की भीड़ में आ फंसा। लोगों के बीच में उसकी हस्ती नदी में डाले गये घड़ा भर पानी की-सी हो गयी।

वह कौन है? किधर से आ रहा है? उसकी बीमारी क्या है?

वह एक अज्ञात पीड़ा से पीड़ित था। वह अपनी व्याकुलता छिपाने की चेष्टा कर रहा था। भीड़ में धकियाते हुए आगे बढ़ रहा था। आगे-पीछे, दायें-बायें बच्चे, औरतें और बूढ़ उसे मसल रहे थे। वह कांटे के नीचे रौंदे पड़े बीज जैसा हो गया।

वह आगे की ओर बढ़ रहा था। समुद्र किनारे पसरती लहरों की तरह सभी बहते रहते हैं। उस प्रवाह में बहते लोगों की शारीरिक गठन, चाल व दुख देखकर उसे अचरज महसूस हो रहा था।

अच्छे दिनों में कुछ भी किये बिना ही उसे आशातीत फल मिला था। उसी तरह सीखना, अच्छे अंकों से पास करना, पुरस्कार लेना, कविताएं रचना, बड़ी मंजिल पर पहुंचना आदि बातें उसे कोई महत्व की बातें नहीं लगती थीं। कुछ न करने के बावजूद उसका नाम हुआ। अधिकांश लोग काम न करने पर नाम नहीं पाते। मगर उसके कुछ न करने पर भी किसी ने उसे नालायक नहीं बताया। व्यस्तता एक पर्दा होती है। आदमी उस व्यस्तता में अपनी विवशता, दीनता और सारी कमियां छिपा सकता है। वह अपने मित्रों व बंधुओं की तरह कभी लापरवाह नहीं था। सहज ही वह पूर्ण प्रकृति का था। वह खुद ऐसे वृक्ष जैसा था, जो सुगंधित फूल तो देता है, पर मधुर फल नहीं देता। लोगों ने उसके फूलों के कारण फल के अभाव को नहीं पहचाना।

आज वह रोगी है।

इसीलिए वह सेंट्रल आउटडोर के जनसमूह का अंग होने आया था। तिरते-तिरते वह डाक्टर के पास पहुंचा।

डाक्टर एक नौजवान हाउस-सर्जन है। डिग्री पास किये एक साल भी पूरा नहीं किया, मगर वह ऐसे घमंड से पेश आता है मानो सब कुछ समझता है। स्टेथस्कोप बड़ी लापरवाही से गले में लटकाया है। उंगलियों के बीच सिगरेट सुलग रही है। कश लेने से बढ़कर उंगलियों के बीच में उसे रखने में उसका मजा है। सिगरेट से भी लंबा राख का टुकड़ा गिरना चाहता है।

"हूं ! क्या तकलीफ है?" हाउस-सर्जन ने पूछा।

"बुखार," उसने कहा।

"कितने दिनों से बुखार आता है?"

"जब से होश संभाला है, तब से।"

"ऐं ! तुम बीमार तो नहीं हो?" हाउस-सर्जन कुछ संभल गया। सिगरेट की राख मेज पर गिरकर छितरा गयी।

"नहीं, नहीं, मैं रोगी ही हूं। मगर बुखार तो कुछ दिनों पहले से ही आने लगा है," क्षमायाचना के स्वर में उसने कहा।

"अच्छा ! सीधी बात कहो न?"

उसने उंगलियों कुछ हिसाब लगाकर कहा, "बुखार दो सप्ताह से है।"

"अच्छा ! क्या बुखार आठों पहर रहता है?"

"रोज बीच-बीच में आता है, या हर दूसरे-तीसरे दिन आता है?" हाउस-सर्जन ने पूछा।

"हमेशा शरीर गरम रहता है। मेरा बदन ही ऐसा है। संसार में चाहे कितनी ही ठंड हो, मुझे गरमी महसूस होती है।"

"कै?"

"नहीं।"

"खांसी?"

"नहीं।"

हाउस-सर्जन ने कुछ सोचने, हिसाब लगाने के बाद पूछा––मानो कुछ भूल हो गयी हो––"बुखार में क्या कंपकंपी आती है?"

"हां, हमेशा कंपकंपी आती है। मगर कंपकंपी के दौरान हलकी-सी गरमी महसूस होती है।"

हाउस-सर्जन ने उसकी तरफ इस तरह देखा जैसे कह रहा हो कि तुम तो पहेली बुझा रहे हो।

"पेशाब का रंग क्या पीला है?"

"बुखार आने के बाद पीला रंग हो गया। नहीं तो गुलाब-जल-सा रहता था।"

"क्या जोड़ों में दर्द है?"

"हां।"

"क्या जोड़ सूज जाते हैं?"

"कभी सूजते हैं। कभी नहीं।"

"क्या दिल में तेज धड़कन होती है?"

"वही तो है।"

"बचपन में क्या तेज बुखार आया था?"

"बचपन की बात याद नहीं।"

हाउस-सर्जन हिसाब लगाने लगा। मलेरिया है या कॉवला? टायफाइड है या पेशाब की बीमारी या मानसिक रोग? भाड़ में जाये। मेडिसिन ओ.पी. को भेजेंगे !

हाउस-सर्जन ने सही निदान कर लेने की गंभीरता दिखाते हुए एक पर्ची दी। ''नंवर नौ ओ.पी. में जाओ। वहां तुम्हारा इलाज करेंगे।''

पर्ची लेकर वह असमंजस में पड़ा सोचता रहा।

"जल्दी जाओ ! बहुत सारे लोग बाहर प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरे पास काम पड़ा है।"

वह दूसरों के लिए जगह छोड़कर पीछे हटा। उसके पीछे खड़ा रोगी हाउस-सर्जन के सामने गया।

हाउस-सर्जन ने अपनी घड़ी पर फिर से दृष्टि डाली। वक्त बहुत हो गया। रोगियों का सागर-सा लहरा रहा है। समय बचाने के लिए हाउस-सर्जन ने एक नया उपाय ढूंढ़ निकाला। आगे आये रोगी से उसने रोग के विषय में कुछ नहीं पूछा।

हाउस-सर्जन के मुंह से सहसा एक शब्द निकला, "अपनी पसंद के किसी फूल का नाम बताओ।"

नये रोगी ने कहा, "कमल।"

"अच्छा ! नौ नंबर ओ.पी. को शीघ्र जाओ !" पर्ची आगे बढ़ाकर हाउस-सर्जन बोला।

बच गया। दोनों को एक ही नंबर मिला है। दूसरा रोगी खुशी से पहले रोगी के पीछे चलने की कोशिश करने लगा। मगर पहला रोगी भीड़ में खो गया था।

वह थोड़ी देर उदास खड़ा रहा। उसके बाद वह सेंट्रल आउटडोर की भीड़ में डुबकी लगाता हुआ गलियारे में पहुंचा। गलियारा लंबा होता जा रहा था। वह लोगों से भरा था। वे सब हमेशा कहीं तेजी से जा रहे होते हैं।

वह कमरा नंबर नौ की खोज में चलने लगा। सामने से आते हर आदमी से वह रास्ता पूछता गया। उत्तर सुनने के पहले ही सामने से आया आदमी उसे लांघ जाता।

उसने किसी को ऊंची आवाज में बोलते सुना। आवाज बड़ी दूर से आ रही थी। वह उसी दिशा में चला जिस दिशा से आवाज आयी थी। आवाज पहले से अधिक ऊंची हो रही थी। कोई एक कमरे में पांच-दस छात्रों को भाषण दे रहा था।

डा. ख्वाजा क्लास में अध्यापन कर रहे थे।

वह आगे चला।

'मिस्टर गोवर्धन आचारी, एफ.आर.सी.एस.।' वार्ड के सामने पहुंचा तो उसने कमरे में झांककर देखा। बनियान के ऊपर कोट पहने मिस्टर आचारी दो विनीत शिष्य डाक्टरों

को सामने बिठाकर आपरेशन लिस्ट देख रहे थे। कुछ छात्र एक तरफ सिमटकर खड़े थे। श्री आचारी पूछ रहे हैं––"क्या सभी आ चुके हैं?"

वह आगे बढ़ा।

डा. तनूजा थियेटर में एक गर्भिणी का आपरेशन कर रही थीं। वह उसके सामने से चला तो जच्चा-घर के भीतर से गर्भिणियों का दीन रुदन उसके कानों में पड़ा। आगे उसने नवजात शिशु का रुदन सुना। डा. तनूजा के मीठे सांत्वना के शब्द सुने।

डा. संतुकुमार ब्लड प्रेशर और शुगर वाले रोगी को सामने बिठाकर उसके खाने-पीने के क्रम की हंसी उड़ा रहे थे। उनके सामने से वह आगे बढ़ा।

वहां से छोटे गलियारे में पहुंचा। वह चलता गया। उसने एक देवदूत की वाणी सुनी। एक पिता के-से शब्द उसके कानों में पड़े। वह डा. डी. कुमार का कमरा था।

डा. कुमार ने एक बड़ी पोथी खोल रखी है। बड़े ध्यान से वे हर पंक्ति पढ़ रहे हैं। उस कमरे के दक्षिणी खंड में कांच के कठघरे में एक पूर्णकाय अस्थिकंकाल लटक रहा था। उसे देख रोगी चौंक उठा। अनजाने वह चिल्ला उठा।

"कौन? कौन है?" डा. कुमार ने पूछा।

वह नौ नंबर वाली पर्ची लेकर कमरे में खंभे की तरह खड़ा रहा।

"आओ, आओ, अंदर आओ।"

वह डा. कुमार के कमरे में पहुंचा। उसके हाथ की पर्ची लेकर देखने के बाद डा. कुमार ने कहा, "दोस्त, तुम रास्ते से भटक गये हो ! तुम्हें काफी दूर जाना है।"

"आखिर कभी मैं अपनी मंजिल पर पहुंचूंगा?" उसने कहा।

डा. कुमार काफी देर तक उसे देखते रहे। फिर उन्होंने चपरासी को बुलाकर उसे नौ नंबर ओ.पी. ले जाने का आदेश दिया।

गलियारे से चलते-चलते नौ नंबर ओ.पी. में पहुंचे। वहां डा. ख्वाजा रोगियों की परीक्षा कर रहे थे। उन्होंने एनाटमी विभाग से चपरासी के साथ आये नये रोगी का स्वागत किया। डा. ख्वाजा ने उसे ध्यान से देखा। शंका व भय से उसका चेहरा काला पड़ा था। उसकी आंखों में झलकती निराशा और डर की भावना डा. ख्वाजा को नजर आयी। वह डा. ख्वाजा के सामने खड़ा था। वह संसार के सारे रोग स्वयं स्वीकार करने को तैयार-सा लग रहा था।

थोड़ी देर डा. ख्वाजा की तरफ देखने के बाद उसने पूछा, "आपने क्या खुदा को अपनी आंखों से देखा है?"

एक छात्र की तरह डा. ख्वाजा ने कहा, "नहीं, मैंने अभी तक नहीं देखा है।"

वह बोला, "मैंने तो देखा है।"

मन-ही-मन हंसते हुए डा. ख्वाजा ने पूछा, "किस शक्ल में देखा है?"

उसने उत्तर दिया, "मेरी आंखों के सामने चमक रहे थे।"

वह फिर थोड़ी देर तक मौन रहा। सब कुतूहल से उसे देखते रहे।

ख्वाजा ने पूछा, "ठीक है। अब आप को क्या तकलीफ है?"

उसने एक बच्चे की तरह डा. ख्वाजा की तरफ देखा। उसके हाव-भाव बता रहे थे कि जीवन भर बताते रहने पर भी उसकी तकलीफ की दास्तान पूरी नहीं होगी। उसके नेत्र विस्फारित होते गये, गर्दन की नसें फड़कने लगीं।

उसने कहा, "मैं शांति से मरना चाहता हूं। मेरी मंजिल तय हो चुकी है।" तब तक वह निढाल हो चुका था। डा. ख्वाजा सवाल पूछते जा रहे थे। मगर वे सवाल उसके कानों में नहीं पड़ रहे थे। सह सन्निपातज्वर के रोगी की तरह बड़बड़ाता जा रहा था।

आसपास खड़े लोगों के स्वर उसे दूर से आते प्रतीत होने लगे। उसे लगा जैसे फिर से उसमें जीवन का संचार हो रहा है। वह टेबिल पर एकदम शिथिल पड़ा था।

डा. ख्वाजा ने विस्तार से जांच करके उसे दाखिल करने के लिए वार्ड में भेज दिया।

वार्ड पहुंचते-पहुंचते वह बेहोश हो गया। आपातकालीन सेवा शुरू हुई। उसका पेशाब व खून लैब भेजा गया।

शाम को डा. ख्वाजा वार्ड में राउंड पर आये तो बेहोशी दूर नहीं हुई थी !

उसकी नसों में ग्लूकोस स्लाइन चढ़ रहा था।

डा. ख्वाजा ने कहा, "कई दिनों से इसने खाना नहीं खाया है, शरीर में बूंद भर पानी नहीं। सिवियर डिहाइड्रेशन।"

ड्यूटी-नर्स और हाउस-सर्जन को जरूरी निर्देश देने के बाद डा. ख्वाजा चले गये।

रोगी का कोई सहायक नहीं था। इसलिए हाउस-सर्जन बड़ी लगन से उसकी सेवा-टहल करता रहा।

रात में रोगी को होश आया। थकान के बावजूद वह उठकर बैठ गया। वह जोर से बोलने लगा, पर शब्द अस्पष्ट होते जा रहे थे।

नर्स ने उठने से रोका, "लेटे रहिये। उठने का वक्त नहीं आया।"

चारों तरफ देखते हुए वह बोला, "मुझे कोई बीमारी नहीं। मैं ठीक हूं। मेरा बक्सा कहां है?"

"चारपाई के नीचे है," नर्स ने कहा।

"सिस्टर, मेहरबानी करके उसे जरा खोलिए।"

नर्स ने बक्सा खोल दिया। उसने उसमें से एक छोटी कुप्पी बाहर निकाली। उसका मिट्टी का तेल खत्म हो चुका था।

"इसे जरा जला दीजिए न?"

नर्स ने ट्यूब लाइट की तरफ इशारा करते हुए कहा, ''यहां रोशनी है न !''

"नहीं, उससे काम नहीं चलेगा। एक भी सांझ इसे जलाये बिना नहीं बीती है। इसे जलाने के बाद मुझे प्रभु का भजन करना है।"

सिस्टर ड्यूटी-रूम में गयी और सर्जिकल स्पिरिट ले आयी। उसने कुप्पी खोलकर उसमें स्पिरिट डाली। कुप्पी का गिलास अच्छी तरह पोंछकर साफ कर दिया, उसे जला दिया। दीपक जब जल उठा, तो रोगी के चेहरे पर खुशी लहरायी। कुप्पी की हिलती लौ देखकर उसने ईश्वर को हाथ जोड़े।

उसके होंठ फड़क उठे।

नर्स ने बड़ी प्रसन्नता से वह दीपक चारपाई के नजदीक साइड टेबिल पर रखा। उसके मुखमंडल पर शाश्वत शांति का दृश्य नजर आया।

वह फिर से लेट गया। कोई अनजान थकान उसे फिर महसूस हो रही है। वह निद्रा और जागरण के अंतराल में डूब रहा है। वह कुछ कह तो रहा है, पर शब्द स्पष्ट नहीं निकलते। उसके होंठ मानों कोई मंत्र जप रहे हैं। वह किसी का इंतजार-सा करता आंखें खोलने की कोशिश कर रहा है। पलकें मुंद जाती हैं।

हाउस-सर्जन और नर्स का बराबर उस पर ध्यान है। वे बीच-बीच में उसके बेड के पास आते हैं।

आधी रात बीत गयी। वार्ड खमोश था। अधिकांश रोगी सो चुके थे।

उस रोगी ने कुछ कहा। अस्पष्ट ध्वनि सुनकर नर्स दौड़ी आयी।

उसने हाथ उठाकर कुछ कहा। बात सिस्टर की समझ में नहीं आयी।

वह तकिये से सिर टिकाये अधमुंदी आंखों से नीम बेहोशी में लेटा था। लग रहा था कि वह किसी की राह देख रहा है। उसके कान सतर्क हो गये, मानो किसी के पैरों की आहट सुनाई पड़ी हो। लग रहा था कि वह होश में रहते हुए किसी को देखना चाहता है। उसके नथुने फड़के। कहीं भूत व वर्तमान की स्मृतियां और घनिष्ठ परिचय उसे तंग तो नहीं कर रहे हैं?

सिस्टर ने पूछा, "क्या प्यास लग रही है?" उसने 'न' में सिर हिलाया। फिर साइड टेबिल पर जलते दीपक की ओर इशारा करके अस्पष्ट स्वर से कहा, "बत्ती नीची कर दो।"

"उसे जलने दीजिए। मैंने उसमें स्पिरिट भर दी है," सिस्टर ने मुस्कुराते हुए कहा।

"नहीं, समय हो गया," धीमी आवाज में वह बोला।

एकाएक दीपक बुझा। उसका सिर तकिये में दब गया। थकी पलकें फिर से बंद हो गयीं।

फिर उसने कुछ नहीं कहा।

उसे फिर जागना भी नहीं पड़ा।

बीस

श्री आचारी की ब्यूक गाड़ी बड़े सबेरे सर्जरी विभाग के सामने आकर खड़ी हुई। राख जैसे रंग का टेरीवूल का सूट पहने आचारीजी गाड़ी से निकले। उनके निकलते ही गाड़ी पहियों से एक बार उछल पड़ी। मोटर को बंद करके चाभी उंगलियों में उलझाकर घुमाते हुए, बायें हाथ में ब्रीफकेस संभाले वे विभाग में दाखिल हुए।

श्री आचारी पचीस वर्षों से सर्जन का काम कर रहे हैं। आपरेशन उनकी जान है। उनकी इच्छा है कि मरते दम तक हाथ में सर्जरी का नश्तर हो। वे आनंद और आत्म-सम्मान की भावना से अपने हाथ की ओर देखते। सर्जन की सबसे बड़ी पूंजी उनका अपना हाथ है। हाथ कहीं जरा-सा चूका तो रोगी की जान गयी समझो।

वे बड़े ध्यान से आपरेशन करते हैं। एक दिन भी वे लापरवाह नहीं रहे हैं। वे हर बार रोगी के शरीर पर यों हाथ रखते हैं मानो पहली बार आपरेशन कर रहे हों। जटिल मामलों का अध्ययन वे आपरेशन से पूर्व, दिन-रात करते हैं। कल्पना में आपरेशन की विधि तय करते हैं। जो बातें समझ में नहीं आतीं, उन पर सोचते हुए आधी-आधी रात को वे अपने कमरे में टहलते हैं। चारित्रिक दुर्बलताएं चाहे हों, पर सफल सर्जन के रूप में उनका यश अमर रहेगा।

सर्जरी विभाग में दस से अधिक यूनिट हैं। एक-एक यूनिट में एक प्रधान होता है। पांच-छह सर्जन भी। उसके अलावा अनेक हाउस-सर्जन, रेजिडेंट मेडिकल अफसर भी हैं। एम.बी.बी.एस. के छात्रों के अलावा एम.एस. के छात्र तथा अनुसंधान करने वाले भी विभाग में हैं। आचारी का विभाग बड़े अनुशासनपूर्वक चलता है। जो कर्तव्य में जरा भी चूके उस पर आचारी दया कभी नहीं करते। वे कठोर दंडविधान में विश्वास करते हैं।

आचारीजी स्वयं तो भ्रष्टाचारी हैं। मगर वे दूसरों को भ्रष्टाचार करने नहीं देते। वर्षों पहले आचारी के किये एक बड़े भ्रष्टाचार की काफी मशहूर कहानी है। संसार में टेट्राक्लिन नामक अंतर्राष्ट्रीय कंपनी ने विश्व के बाजार में टेट्रासाइक्लिन टेट्रामाइसिन नाम से प्रस्तुत किया था। वह कंपनी टेट्रामाइसिन के नमूने संसार के हर देश के प्रमुख शहरों में भेजकर उसका क्लिनिकल सर्वेक्षण करा रही थी। आचारीजी अपने नगर में सर्वेक्षण करने के लिए नियुक्त हुए। कंपनी ने उन्हें बीस हजार कैप्स्यूल भेज दिये। आचारी को ये कैप्स्यूल रोगियों को देकर उसकी प्रतिक्रिया नोट करना था। उन दिनों टेट्रामाइसिन आश्चर्यजनक दवा थी।

बीस कैप्स्यूलों से कोई भी मारक रोग दूर हो जाता। खासकर आपरेशन के बाद होने वाली पीब और उसके फलस्वरूप रोगी की मृत्यु को रोकने की अद्‌भुत शक्ति उस दवा में थी। उस दवा के एक कैप्स्यूल की कीमत दस रुपये थी। जमाना ऐसा कि चार आने में पेट भर बढ़िया भोजन होटल में मिलता था।

मिस्टर आचारी बीस हजार कैप्स्यूलों में से दो हजार लेकर सौ रोगियों पर प्रयोग करके प्रतिक्रिया नोट करते गये। उन सौ रोगियों की प्रतिक्रिया के अनुपात में उन्होंने हजार रोगियों की रिपोर्ट तैयार की। नौ सौ नाम जाली थे।

आचारी ने शेष अठारह हजार कैप्स्यूल एक थोक दवाफरोश को बेच डाले। उसी पैसे से उन्होंने अपने शहर में आलीशान बंगला बनवाया। अपनी माता की यादगार में अपने उस भवन का नाम 'जयंती भवन' रखा। मगर छात्र और वे उसे दूसरे नाम से पुकारते थे——'टेट्रामाइसिन भवन'।

कितने ही साल बीत चुके। आज भी वह भवन 'टेट्रामाइसिन भवन' पुकारा जाता है।

आचारीजी ने कोट और टाई खोलकर हैंगर पर टांग दिये और बनियान के ऊपर ऐप्रन पहन लिया। अपने प्राईवेट कमरे में सोफे पर बैठ गये।

एक्सरे फिल्म और केस-शीट लिये मेरी कमरे में आयी।

"गुड मार्निंग, सर!" नमस्कार करती मेरी ने हाथ की चीजें मेज पर रखीं।

"मार्निंग, मार्निंग।" आचारी ने कनखियों से देखते हुए कहा। उनके होठों पर शरारती हंसी पसर गयी।

आचारीजी ने मेरी से पूछा, "आज हमें कौन-कौन से केस करने हैं?"

मेज का छोर थामे खड़ी मेरी कुछ नहीं बोली।

आपरेशन की सूची मेज पर डालते हुए आचारी बोले, "मेरी, तुम पूरी सूची पढ़ लो। आज मेरी की पसंद के दो केस हम करेंगे।"

मेरी पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई तो आचारी बोले, "एक दिन मेरी पसंद, एक दिन मेरी की। ठीक है न?" आचारी ने उठकर मेरी के कंधे को कसकर पकड़ते हुए पूछा, "कुछ बोलो, छोकरी !"

"मेरी पसंद !" मेरी की आवाज में कुछ घबराहट थी।

"तुम यों डरती काहे को हो? क्या मैं कोई भेड़िया हूं?" कंधे की पकड़ मजबूत करते हुए आचारी ने पूछा।

"कुछ नहीं, सर!" मेरी को यही जवाब सूझा।

"मेरी, तुम मेरी अपनी लड़की हो। तुम रोज सबेरे मेरे कमरे में आना। हम कुछ देर बातें करेंगे।" कंधे को छोड़कर आचारी ने गर्दन के पीछे के भाग और केशराशि को

सहलाते हुए कहा।

सिर सहलाते समय मेरी की कैप स्थान से कुछ हट गयी। आचारी ने दोनों हाथों से बड़े मृदुल ढंग से कैप मेरी के सिर पर ठीक से रख दी।

जरा-सा पीछे हटते हुए वे बोले, "मेरी, मैं स्त्रियों को जिंदा नहीं खाता। अगर कभी कभी खाता हूं, तो उनकी सहमति से।"

वे एक विश्वोत्तर लतीफा सुनाने की प्रसन्नता अनुभव करते हुए सोफे पर आ बैठे।

"आओ, इधर बैठो।" सोफे की तरफ इशारा करके आचारी बोले।

"इस कमरे में प्रवेश करने के बाद मेरी, मेरी स्टाफ नहीं रहेगी। इस कमरे में मेरी को हर बात की आजादी रहेगी। यहां मेरी, मेरी दोस्त है।"

मेरी असमंजस में पड़ी हुई खड़ी रही। मेज पर रखी एक्सरे फिल्में उसने हाथ में लीं।

"क्या उन्हें लेकर भाग जाने का इरादा है?" अपने पके बालों को सहलाते हुए आचारी बोले, "उन्हें मेज पर ही रख दो। आओ, थोड़ी देर मेरे साथ यहां मेरे पास बैठो।"

आचारी ने उठकर मेरी का हाथ पकड़ लिया। आज्ञाकारिणी बालिका की तरह उसने आचारी का अनुसरण किया।

वह सोफे पर बैठ गयी।

आचारी ने मेरी की नाक का छोर और ठुड्डी का नीचे का भाग छोटी उंगली से सहलाते हुए कहा, "तुम्हारी उम्र मेरी बेटी की जितनी ही है। मगर यही मुहब्बत है। अधिकांश कन्याओं को श्वेत केश के पुरुष से ही ममता होती है। है न, मेरी?"

मेरी के जूड़े से सेफ्टी पिन खोलकर आचारी ने कैप मेज पर रखी। सिर से कैप उतारने पर मेरी की मुखाकृति में परिवर्तन आ गया। आचारी को लगा कि उसका सौंदर्य शालीन हो गया है। मेरी नजर नीची किये दोनों हाथ घुटनों के भीतर करके सिमटी बैठी है। वह इस बात से परेशान है कि अपने लिए अनर्ह स्थान पर बैठी है। आचारी उसके सामने एक स्तूप जैसे खड़े हैं। उन्होंने दोनों हाथ जोड़, उनमें मेरी का सिर ले लिया और झुककर उसके माथे पर अपना मुख दबाया। मेरी की कोमल हथेलियां आचारी के खुरदरे हाथों में दब गयीं।

आचारी ने पूछा, "क्या मुझे पसंद करती हो?...पूछा, क्या मुझे पसंद करती हो?"

मेरी के नेत्र विस्फारित हुए। झील-सी गहरी आंखों से जल रिसने लगा।

आचारी ने मेरी को उठाया तो उस कमरे में एक सिसकी फैल गयी।

"मेरी बेइज्जती मत कीजिए...मेरी बेइज्जती मत कीजिए !"

फूट-फूटकर रोते हुए मेरी ने अपने को छुड़ाया। वह कमरे के कोने में जाकर खड़ी हो गयी। उसकी सिसकियों ने पूरे कमरे को कंपा दिया।

आचारी क्षण भर सकपकाये। उन्हें कुछ नहीं सूझा। वे वापस सोफे पर आ बैठे। उन्होंने उस समय एतराज की अपेक्षा नहीं की थी।

"मेरी, मेरी लड़की, मैं स्त्रियों की बेइज्जती नहीं करता। उनके प्रति सम्मान की भावना रखता हूं...प्रेम से अधिक सम्मान।"

आचारीजी उठकर कमरे में कुछ समय टहलते रहे। फिर कोई बात मन में तय करके सिटकनी लगे निजी कमरे का दरवाजा खोला।

फिर सोफे पर जा बैठे। खुले दरवाजे की तरफ इशारा करके आचारी ने कहा, "मेरी, तुम जा सकती हो।"

कैप सिर पर लगाकर वर्दी को जहां-तहां पकड़कर नीचे किया, खींचा और वह दरवाजे की तरफ बढ़ चली।

तब आचारी बोले, "आचारी के पास कुछ क्षण बिताने के लिए लालायित अनेक औरतें इसी अस्पताल में हैं।"

वे उठे और मेरी के पास खड़े होकर बोले, "तुम मेरे कब्जे से छूटने वाली पहली शिकार हो। मगर मेरी उम्मीद अभी समाप्त नहीं हुई। मन जब राजी हो तब कहना। बिना सहमति के आचारी अंदर प्रवेश नहीं करते।"

मेरी दरवाजे से निकलकर बड़े कमरे में पहुंची तो श्री आचारी ने जोर से आवाज दी, "केस-रिपोर्ट और एक्सरे फिल्म ले जाओ। मिस्टर आचारी आज कुछ नहीं करेंगे।"

कुछ समय बाद आचारी के चेले-लेक्चरर व रेजिडेंट बड़े कमरे में आये तो आचारी ने कहा, "आज मैं थियेटर नहीं जाऊंगा। मेरी तबीयत ठीक नहीं। दूसरे शुरू कर लें। मेरे केस नंबर दो और नंबर तीन को दे दो।''

उस दिन पूरा सर्जरी विभाग दंग रह गया। मिस्टर आचारी ने अपने इतिहास में संशोधन किया है।

चाहे अपना बच्चा बीमार पड़े या साले का ब्याह हो, आचारी आपरेशन थियेटर जरूर जाते थे। एक दिन वे वायरल फीवर के कारण एकदम परेशान थे। उस दिन भी चार घंटे लंबा आपरेशन पूरा करते-करते उसी आपरेशन टेबिल पर बेहोश होकर गिर पड़े थे। अपने पिता की मृत्यु के दिन भी वे अपना फर्ज पूरा करने के बाद ही थियेटर से गये थे। संसार में कुछ भी बीते-गुजरे, पर आचारी आपरेशन कभी नहीं छोड़ते। ऐसा एक भी दिन आचारी के जीवन में नहीं होता।

प्रत्येक सर्जरी श्री आचारी के लिए एक नया अनुभव है। आपरेशन के बाद रोगी के चंगा होने तक आचारी को मानसिक शांति नहीं रहती। जटिल आपरेशन के दिनों में रात में उन्हें नींद नहीं आती। वे आधी-आधी रात को जागकर अस्पताल फोन करके रोगी की दशा का पता करते रहते हैं।

पेट या अंतड़ियों का आपरेशन हो, तो रोगी जब तक पहली पाद न छोड़े तब तक आचारी की सांस की गति सीधी नहीं होती। बीच में वे मजाक करते, "वह अगर हवा न छोड़े तो मेरी हवा निकल जायेगी।"

आचारी उस दिन दिन-भर अपने प्राइवेट कमरे में दरवाजे पर ताला लगाये, भीतर लेटे रहे। उन्होंने पानी तक नहीं पिया। सभी चिंतित थे कि वे क्या कर रहे हैं।

आचारी उस बंद कमरे में जागते-सोते रहे। बाहर से सुनाई देते यंत्रों और आदमियों की मंद ध्वनि ही साथ दे रही थी। वे न पढ़ सके, न सोच सके। उन्हें भूख या प्यास तक नहीं लगी।

उन्हें लगा कि सिर सूना-सा है...स्मरण-शक्ति नष्ट होती जा रही है।

काफी रात बीतने पर आचारी एक चोर की तरह धीरे से दरवाजा खोलकर चारों तरफ नजर डालने के बाद, बाहर निकले। गलियारे से चलते हुए उन्होंने सामने आने वालों को ध्यान से देखा। उन्हें लगा कि किसी अपरिचित जगह से जा रहे हैं। बचने की इच्छा से वे तेज चलकर पार्क की हुई अपनी गाड़ी के पास आ गये।

आचारी बड़ी तेजी से गाड़ी चलाते हुए घर पहुंचे। तब तक घर के लोग सो चुके थे। अकेले आचारी का सेवक उनकी प्रतीक्षा में बैठा था। वह वर्षों से उनकी सेवा में लगा है। वही उनके सारे काम करता है--कपड़ों को क्रम से रखना, खाना पकाना, खाना परोसना आदि सभी काम, छोटी-बड़ी, प्रिय व अप्रिय बातें उसे मालूम हैं।

सेवक ने पूछा, "व्हिस्की लाऊं?"

रात को भोजन के पहले आचारी ढाई पेग व्हिस्की पीते थे। सेवक पेग के हिसाब से व्हिस्की मापकर हलके कांच के गिलास में ढालता है, आइस क्यूब्स डालने के बाद आचारी को पकड़ा देता था। यही दैनिक कार्यक्रम है।

उस समय आचारी की पत्नी या बच्चे उनके कमरे में प्रवेश नहीं करते, कोई उनके कमरे में नहीं जा सकता। घंटा-भर ध्यान लगाकर आचारी पिघलते बरफ के टुकड़ों के बीच से झलकती व्हिस्की को घूंट-घूंट पीते रहते हैं।

फिर वे भोजन करने बैठते हैं। भूखे भेड़िये की तरह वे बड़े लालच से खाना खाने लगते हैं। मछली, अंडा, कंद, मूंल–सब खाते हैं। रोटी, चावल, भाजी, दही, मिठाई--डाइनिंग टेबिल पर जो भी मिलता है उसे वे ग्रहण करते हैं।

हाथ धोने के बाद बिना शक्कर के एक गिलास काली काफी पीने के साथ भोजन की प्रक्रिया समाप्त होती है। उसके पश्चात आचारी घर से बाहर निकलकर अहाते में घंटा भर टहलते हैं। जब शरीर पसीने से तर होता है तभी बेड रूम में प्रवेशकर नींद आने तक पढ़ते रहते हैं। वे रात को थ्रिलर और दिन में मेडिकल पुस्तकें पढ़ते हैं। आपरेशन के बीच में वे गजल याद करते हैं।

उस दिन कुछ नहीं हुआ। आचारी ने सेवक से कहा, “मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम जाकर सो जाओ।”

बत्ती बुझाकर आचारी बिस्तर पर लेट गये।

नींद नहीं आ रही थी। मन में आपरेशन टेबिल का दृश्य आ रहा था। आपरेशन टेबिल पर रोगी लेटा है। रोगी को एनेस्थीसिया देने वाले डाक्टर बॉयल यंत्र थामे खड़े हैं। वे थियेटर में खड़े सभी लोगों को मूर्च्छित करने के लिए लालायित लगते हैं।

श्री आचारी के हाथ तरस रहे हैं। वे दोनों हथेलियां एक-दूसरे में उलझाये हुए दांत भींच रहे हैं।

अशांत आचारी ने चारपाई से उठकर बत्ती जलायी। जाने क्या याद आया कि वे नीचे उतर गये। अलमारी खोलकर, ईथर की शीशी और डाक्टरी किट लेकर डाइनिंग हाल में पहुंचे।

डाइनिंग टेबिल पर वे किट से चाकू, फोर्सेप्स और कैंची लेकर सजाने लगे। इनके बाद उन्होंने दस्ताने पहन लिये। श्री आचारी पैंट्री की तरफ चल पड़े। वहां फर्श पर छोटे बिस्तर पर मिसेस आचारी का लाडला, छोटा पोमेरियन कुत्ता[1] आराम कर रहा था। आचारी के पैरों की आहट सुनकर वह चौंक उठा, शरीर हिलाते हुए दौड़ा और आचारी के पैरों के नीचे दुबक गया। फिर उनकी गोदी में चढ़ने लगा।

आचारी मुड़कर पोमेरियन कुत्ते को उठाकर डाइनिंग रूम में आये। उसे अपनी गोदी में बिठाकर पैरों के बीच में कसकर पकड़ लिया और ईथर में भिगोया काटन स्पंज उस पामेरियन कुत्ते के मुंह पर दबाये रखा। दुलारे पोमेरियन ने थोड़ी देर छुड़ाने की कोशिश तो की, पर लाचारी से आखिर निश्चेत हो गया। आचारी की गोद में कुछ पेशाब भी किया।

श्री आचारी ने सफेद जटाधारी पोमेरियन को डाइनिंग टेबिल पर लिटाया। बेहोशी में भी वह कुत्ता मेज की शोभा बढ़ा रहा था।

आचारी ने चाकू लिया। पोमेरियन को पीठ के बल लिटाया। वे उसके रोंएदार मुलायम पेट में अपना चाकू चलाने लगे।

---

1. एक प्रकार का पालतू कुत्ता।

इक्कीस

एक रोगी पाप-स्वीकार के लिए पादरी को खोज रहा है। उसका नाम है जॉन बलदेव मिर्जा। मालूम नहीं कि वह ईसाई है, हिंदू है या मुसलमान। वह जॉन है। वह बलदेव है। वह मिर्जा है। परंतु अस्पताल में वह रोगी है।

कल रात सोने का समय आया तो जॉन बदलदेव मिर्जा बोला, "मुझे पाप-स्वीकार करना होगा। मुझे मरना चहिए। मुझे पुनरुत्थान करना चाहिए।"

यह सुनकर सिस्टर ने उसे एक चाकलेट दिया। चाकलेट लेकर वह क्षण-भर उसे देखता रहा। उसने चाकलेट के ऊपर का अल्मुनियम रैपर मुंह में डाल लिया और चाकलेट को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया। सिस्टर से कहा, "गुड नाईट!"

उसके बाद उसे बातचीत करने के लिए मुंह खोलने की जरूरत नहीं पड़ी। फिर भी उसे इस बात का संतोष है कि मुंह से जो आखिरी शब्द निकला, वह अच्छा था।

दूसरे दिन जागते समय उसके हाथ-पांव पर लकवे का आघात हो गया था।

एक प्रभात ने उसका स्वागत किया। गर्भस्थ शिशु की स्मृतियों की तरह अस्पष्ट स्वप्न उसके मस्तिष्क में उभर आये।

उसने कुछ कहने के लिए मुंह खोला। नीचे की ठुड्डी और ऊपरी जबड़ा एक-दूसरे से असंबद्ध पड़े हैं। जीभ मरे मेंढ़क की तरह मुंह के भीतर फंसी पड़ी है।

सबके चेहरे मुर्झा गये हैं। सिस्टर उसे सहानुभूति के कारण भीगे नयनों से देख रही है।

मेडिको छात्रों का एक दल——जिसमें लक्ष्मी और देवदास भी थे——एक शिकार पाने की खुशी से उसे चारों ओर से घेरे खड़ा है। वे रक्तचाप नापने वाले उपस्कर की रबड़-नली उसकी बायीं बांह पर बांधकर रक्तचाप नापते हैं। वह भी कांच की नली में पारे का उठना-गिरना देख रहा है।

दर्द से वह परेशान है। उसकी आंखें विनती कर रही हैं कि मुझे मत सताओ। मगर कोई यह नहीं समझ पाता।

मेडिको लोग एक-एक कर उसे जांच रहे हैं, जैसे कि अंधों ने हाथी की परीक्षा की थी। कोई पैर की जांच कर रहा है, कोई हाथ की। कोई आंख को देख रहा है। कोई नब्ज की चाल को। कोई हृदय का संगीत सुन रहा है।

तब तक डा. ख्वाजा अपनी अटैची लिये उधर आ पहुंचे। वे जॉन बलदेव मिर्जा के बेड के पास कुछ क्षण चिंतित खड़े रहे।

डा. ख्वाजा बोले, "रोग चोर जैसा होता है। किसी को पता नहीं रहता कि वह किस रात को और किस घड़ी घुस आयेगा। कल तक निरंतर भाषण देता यह मित्र अब एकाएक मौन हो गया है। फिर भी हम उसे जगाने की कोशिश करेंगे।"

डा. ख्वाजा रोगी की परीक्षा विस्तृत रूप से करने लगे। जॉन बलदेव मिर्जा एक जिंदा गुड़िया की तरह डाक्टर की ओर ताकता रहा।

डा. ख्वाजा बोले, "यह दोस्त अब ऐसे पथ पर है जहां जीवन के दोनों छोर दिखाई नहीं पड़ते। इसे हमें एक छोर पर लगाना चाहिए।"

इसके बाद डा. साहब छात्रों को लकवे के बारे में बताने लगे। उनके प्रिय छात्र ध्यान से सुन रहे हैं। देवदास और लक्ष्मी अगल-बगल खड़े भाषण सुन रहे हैं। उनके मन पूर्ण रूप से डा. ख्वाजा पर केंद्रित हैं, इसलिए वे इससे अनभिज्ञ है कि उनके शरीर एक-दूसरे से बिलकुल सटे हैं।

"इस मित्र के मस्तिष्क में खून कहीं गाढ़ा हो गया है। हमें पता लगाना है कि यह किस बिंदु पर है?" डा. ख्वाजा कहने लगे, ''हो सकता है कि इसके रोग की स्थिति नाजुक हो।"

डा. ख्वाजा ने अपने पीछे खड़े हाउस-सर्जन के कंधे को थपथपाते हुए कहा, "डाक्टर, आपकी जिम्मेदारी बढ़ गयी है। आपको इन्हें अपने पिता के जैसा मानकर, मन से सेवा करनी चाहिए।''

सिस्टर की तरफ देखते हुए डा. ख्वाजा ने पूछा, "एम आई राइट, सिस्टर?"

इस प्रश्न की प्रतीक्षा करती-सी सिस्टर ने कहा, "येस सर!"

ये सब बातें जॉन बलदेव मिर्जा सुन रहा है कि नहीं, कौन जाने?

वह वार्ड के दूसरे रोगियों को देख रहा था। कुल छह लोग थे। पांचों लोग उसी की तरफ ध्यान से देख रहे थे। कल रात तक निरंतर बातचीत करते रहे इस आदमी को क्या हो गया? इसी जिज्ञासा से उन्होंने अपने रोगों को भी मामूली समझा।

डा. ख्वाजा और उनका दल जब वार्ड से विदा हुए, तब वार्ड मानो सूना हो गया। ख्वाजा की ऊंची आवाज से जो वार्ड ध्वनिमय होता रहा था वह अब एकाएक शांत हो गया। वार्ड में यों खामोशी छा गयी मानो तेज हवा का एक झोंका आया और थम गया।

जॉन बलदेव मिर्जा कुछ कहना तो चाहता है। कोई सख्त जरूरत उसे महसूस हो रही है। मुंह खोलने की कोशिश ! होंठ एक तरफ टेढ़े पड़ते हैं। पर शब्द नहीं निकलते। उसकी आंखों में लाचारी नजर आती है।

उसे पेशाब आ रहा है, मगर उसे नहीं पता। बचपन में सोते समय पेशाब कर बैठता

था। मगर उन दिनों शैतान साथ देता। सपने में शैतान संडास और खाली खेत दिखा देता। थप्पड़ लगाने के साथ ही मां उस शैतान को गाली देती जो रात को कमरे में घुसकर बच्चे को यों गुमराह कर देता है। मगर यहां तो न मां है, न कल्पना।

उसे पहले लगा कि गुनगुने पानी में पड़ा हुआ है। फिर गरमी कम होती गयी और नीचे से हलकी ठंड ऊपर की तरफ बढ़ती गयी।

बगल वाले बेड का रोगी जॉन बलदेव मिर्जा के पास आया। उसे पेट में तकलीफ है। हमेशा पेट पर हाथ रखे, झुके-झुके चला करता है। चेहरे पर हमेशा नाराजगी नजर आती है।

मुस्कुराहट या सौम्यता उस चेहरे पर कभी नजर नहीं आती। वह दिन-रात सारे संसार को अभिशाप देता है। बीच-बीच में वह खाट पर लेटा पेट हाथ से थामे हुए चिल्लाता है। ऐसे समय पर सिस्टर उसे गाली देती या सुई लगाती है। खाना खाकर दस मिनिट पूरा होते ही वह कै कर देता है। सारी पीड़ाएं उसके दैनिक जीवन के कार्यकलाप बन गयी हैं। दर्द होना, दर्द से चिल्लाना, कै आने पर झुककर किडनी ट्रे लेकर उसमें कै करना, बीच-बीच में संडास जाना--सब बड़े कायदे से चलते हैं।

वह खड़ा होकर जॉन बलदेव मिर्जा को हमदर्दी से देखता रहा। मगर वह अधिक देर तक सांत्वना के शब्द न सुना सका, न खड़ा ही रह सका। उसका अपना दर्द तेज हो रहा था। वह पेट थामे अपने बिस्तर पर सिमटकर लेट गया और चिल्लाना शुरू कर दिया।

जॉन बलदेव मिर्जा को लगा कि शरीर का दायां हिस्सा बदन से अलग ही हो गया है। उसे महसूस नहीं हो रहा है कि कुछ अंग दाहिनी तरफ भी हैं। बायें हाथ-पैर पहले की तरह बड़ी फुर्ती से तो नहीं चलते, फिर भी उनमें सक्रियता शेष है। मुश्किल से ही सही, वह पांव भी हिला सकता है।

वह छोटी-छोटी बातें भी बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करता था। मगर अपनी पीड़ा, रोग व विवशता के विषय में कुछ कहना भी अब संभव नहीं।

बिस्तर की चादर पेशाब में डूबी है। सिरहाने का स्विच दबाने से ड्यूटी-रूम के पास लगी लाल बत्ती जलेगी। तब आया या चपरासी दौड़ा आयेगा। मगर आगे वह बत्ती क्या जलेगी? जॉन बलदेव मिर्जा ने दुखी होकर सोचा।

जीवन में पहली बार जॉन बलदेव मिर्जा को अकेलापन महसूस हुआ। उसे लगा, पृथ्वी से उसका संबंध टूट गया है। इस अस्पताल में आये महीनों हो गये, कोई नातेदार या रिश्तेदार उसकी चारपाई के नजदीक नहीं दिखाई पड़े। उसे इसका दुख भी नहीं। कारण यह है कि वह हमेशा बातचीत करता, खिलखिलाकर हंसता, ईश्वर की महिमा का यश गाता रहता। उसने अपने अनाथ होने का दुख कभी जाहिर नहीं किया। उसने बहन या पत्नी शब्द का कभी उच्चारण तक नहीं किया। उसे इसका अभाव भी कभी

महसूस नहीं हुआ।

जॉन बलदेव मिर्जा अब किसके बारे में बात कर रहा है, सो तो भगवान को ही मालूम है। उसकी आंखें बीच में चारों तरफ और कभी शून्य को घूरने लगती है। उस दृष्टि के कई अर्थ हैं।

सिस्टर उसके के पास पहुंची। सिस्टर को देखने पर जॉन बलदेव मिर्जा ने सिर घुमाकर उसे देखा। उस दृष्टि का मतलब समझकर सिस्टर ने चादर पर हाथ रखा। फिर जरा भी विलंब नहीं हुआ। वार्डबाय और आया ने जॉन बलदेव मिर्जा को बारी-बारी से इस करवट से उस करवट लिटाते हुए चादर बदल दी। शाम तक चार-पांच बार चादर बदलनी पड़ी। अपनी सेवा करने आने वालों को वह धन्यवाद सहित देखता रहा।

वार्ड में रोगियों से मिलने के लिए दर्शकों के आने का समय हो गया। शोर बढ़ता गाया। हर बेड पर दर्शकों की संख्या बढ़ती चली गयी।

रोगी का हाल-चाल पूछते हुए तोग आते थे। सांत्वना के शब्द, दबी आह-कराह, छोटी मुस्कुराहट आदि बराबर सुनाई पड़ते थे।

एकाएक संतरे की खुशबू सब जगह बिखर गयी। अधिकांश रोगियों के हाथ में संतरों की पोटलियां हैं। नागपुर के बागों में संतरों का मौसम होगा। कुछ रोगी संतरा छीलकर खाने लगे। कुछ रोगी उसे अपने हाथ में लिये बैठे थे।

जॉन बलदेव मिर्जा के वार्ड में छह नंबर वाले बेड पर एक युवक लेटा था। उसने दाढ़ी बढ़ा रखी थी। वह लोगों से बहुत कम बोलता था। अधिकांश समय उसके हाथ में एक पुस्तक रहती। जब वह पढ़ नहीं रहा होता तब तेज नजर चारों तरफ डालता। रोज शाम को एक सुंदर कन्या उसे देखने आती। उसके लौटने तक वह युवक खुश रहता। आज उस कन्या के साथ एक अधेड़ स्त्री भी है। कन्या फूल लायी है। स्त्री के हाथ में संतरे की टोकरी है। उन्हें देखकर युवक का जोश कम होता दिखाई दिया। उसने युवती से बहुत कम बातें कीं।

जॉन बलदेव मिर्जा को कहने की इच्छा हुई कि मित्र, अपनी साथिन से धाराप्रवाह बातचीत करते जाओ। कुछ समय बाद कन्या व स्त्री चली गयीं। युवक फिर से विषाद में डूबकर पुस्तक पढ़ने लगा।

कम-से-कम पुस्तक तो युवक को साथ दे रही थी। जॉन बलदेव मिर्जा का तो कोई नहीं। वह ललचाता रह गया कि काश मेरे पास भी कोई संतरों की पोटली लिये आता। उसकी आंखों के कोर से आंसू की बूंदें ढुलक पड़ीं।

सिस्टर संतरे के रस से भरा प्याला लिये जॉन बलदेव मिर्जा के पास आयी। उसने उसे तकिये के सहारे बिठाया और संतरे के जूस का गिलास होठों से लगा दिया। मगर वह पी नहीं सका।

मुंह में भरा घूंट भर रस मुंह में ही रख लिया। गले के नीचे उतारने का प्रयत्न तो किया, पर थोड़ा-सा हिस्सा ही गले के नीचे उतरा। शेष बाहर बह गया। बेडशीट व चादर संतरे के रस में भीग गये।

मुलाकाती एक एक कर लौटने लगे। आखिरी घंटी बजी। वार्ड फिर से खामोश होने लगा।

जॉन बलदेव मिर्जा को अपने सिर से कोई बोझ उतरता-सा महसूस हुआ। रोशनी बुझती जा रही थीं। कहीं अंधेरा छा रहा था। बिजली की बत्तियां धुंधली हो रही थीं। अंधेरा व रोशनी थिरक-थिरककर गायब होती हैं। कान बंद होते हैं। आवाज व कोलाहल कम होते-होते समाप्त होता है। एक धीमी सीटी कहीं सुनाई देती है।

जॉन बलदेव मिर्जा बेहोशी में धीरे-धीरे गर्क होता जा रहा है।

रात को डा. ख्वाजा वार्ड में आये। रेजिडेंट व हाउस-सर्जन उनके पीछे खड़े रहे।

जॉन बलदेव मिर्जा को जांचने के बाद डाक्टर ख्वाजा ने कहा, "गोयिंग वर्स्ट। शायद सांस लेने में भी बाधा हो सकती है।"

लोशन में हाथ धोते हुए डा. ख्वाजा बोले, "शायद आर्टिफिशल रेस्पिरेशन की तैयारियां जरूरी होंगी।"

"नो प्राब्लम, सर!" हाउस-सर्जन ने कहा।

डा. ख्वाजा वार्ड से चले गये। गलियारे में जाकर अदृश्य हो गये। हाउस-सर्जन रोगी की खाट के पास स्टूल पर बैठ गया। उसने रोगी की नाक व पेशाब की नली पर रबड़ की नली लगा दी।

सिस्टर गिलास में दूध ले आयी। बड़े सिरिंज में दूध भरकर नाक पर लगी रबड़ की नली से रोगी को दूध पिलाने लगी।

वार्ड में एकाएक जोर का रुदन सुनाई पड़ा। बगल के बेड पर लेटा पेट का रोगी दर्द से छटपटा रहा था।

बाईस

जिस दिन श्रीमती तिवारी ने होस्टल में आकर हल्ला मचाया उस दिन से हेलन सिंह के व्यवहार में स्पष्ट अंतर आ गया। उसका चेहरा प्रसन्न रहता है। अपने में गरिमामय हेलन सिंह के गालों पर बीच-बीच में जो कुटिलता प्रकट होती थी वह आजकल बिलकुल नजर नहीं आती। उसके बर्ताव में कोमलता आ गयी है।

आफिस में वह पुराना कठोर अनुशासन नहीं रखती। चपरासियों को नहीं डांटती। सिस्टर व नर्सें जिस दिन छुट्टी मांगती हैं उस दिन छुट्टी देती है। मर्दों पर टिप्पणी करने की आदत छोड़ दी है। होस्टल में लड़कियों को पूछते हुए बाय-फ्रेंड्स का आना अब उसे नहीं अखरता। वे अपनी पसंद के साथी के साथ जा सकती हैं। मगर जाने के पहले रजिस्टर में लिखना अनिवार्य है, रात को दस बजे के पहले होस्टल लौटना भी। हद से बाहर के आमोद-प्रमोद की अनुमति नहीं है।

रविवार के दिन मैट्रन हेलन सिंह छत पर खड़ी हुई नीचे लान में होस्टल की लड़कियों को साथी युवकों से इश्क की बातें करते कुतूहल से देखती। एक रविवार को उसने मेरी से पूछा, "मेरी, क्या तुम्हारा कोई साथी नहीं?

"है न, मैट्रन।"

"कौन है?" उन्होंने कुतूहल से पूछा।

"कुंजम्मा," बड़ी सहजता से मेरी ने कहा।

"छिः छिः!" मैट्रन ने कहा, जैसे कोई गलीज चीज देख ली हो। "वह बदचलन छोकरी?...उसे किसी भी रूप में मैं पसंद नहीं करती।" मगर हेलन सिंह ने कुछ और सोचा था। वह बाय-फ्रेंड की बात पूछ रही थी।

"डा. रवींद्रनाथ शरीफ है। उसका साथ अच्छा रहेगा," मैट्रन ने स्वगत कहा। मेरी ने सिर्फ हामी भरी।

उसके बाद प्रोफेसर तिवारी एक दिन हेलन सिंह से मिलने आये। पर हेलन सिंह ने न दरवाजा खोला, न स्वागत किया। उसने कहलवा दिया कि तबीयत ठीक नहीं और मुलाकात नहीं हो सकती।

निराश तिवारी अपनी बाइक पर बड़ा शोर करते हुए वापस चले गये।

हेलन सिंह को बड़ा दुख था कि जान-पहचान और पहचान के बाद की घनिष्ठता

यों बेइज्जती में परिणत हुई। उसे तिवारी के प्रति अब भी ममता थी। मगर उस दिन तिवारी अपने को माई का लाल साबित करने के बदले दबे रहे। इसीलिए उनके प्रति सम्मान कम हो गया। श्रीमती तिवारी की क्रोधाग्नि के सामने वे भयभीत हो गये। उन्हें एक बच्चे की तरह पत्नी का अनुगमन नहीं करना चाहिए था। मगर उसका दूसरा पहलू भी है। तिवारी बाबू अगर अकड़ते तो शायद माहौल और बिगड़ता। उनके उस व्यवहार का कारण क्या यही हो सकता है? हो-न हो, वे उसके गाल पर एक तमाचा तो जड़ सकते थे ! मर्द तो वही करता। दूसरे शब्दों में, उन दोनों के व्यवहार में मैट्रन के लिए भर्त्सना थी।

हेलन सिंह कई तरह से उस पर सोचती रही।

उसके जीवन के दो युग बीत चुके। सिर्फ भविष्य सामने है, जिसकी कोई उम्मीद नहीं। यह दृढ़ निर्णय किया था कि अब और एक पुरुष के साथ जीवन भर रिश्ता नहीं हो पायेगा। छाती पर पत्थर रखते हुए वह साल-पर-साल घसीटती रही। तभी तलहटी में फूट पड़े झरने की तरह तिवारी बाबू हेलन सिंह के जीवन में आये।

हेलन सिंह का जी इस दुख से कचोट रहा था कि होस्टल में मिलने आये तिवारी बाबू को निष्ठुरता से लौटा दिया। वह उसके बाद उनके टेलिफोन की प्रतीक्षा करती रही। तिवारी बाबू ने होस्टल आने के पहले तीन-चार बार टेलिफोन से संपर्क करने की कोशिश की थी। मगर हेलन सिंह ने अनसुना कर दिया। हर बार हीला-हवाला करती गयी।

तिवारी बाबू प्यार करने में कुशल व्यक्ति हैं। उनके दिल में गहरा और अपार स्नेह है। ऐसे व्यक्ति दिल के मजबूत नहीं होते।

तिवारी बाबू को जिस दिन देखा उसी दिन से हेलन सिंह उनका स्पर्श करना चाहती थी। उनकी आंखों में कोई सम्मोहक शक्ति थी। हेलन सिंह को लग रहा था कि उनके पूरे शरीर में स्नेह की नदी बह रही है। मगर कुछ नहीं हो पाया। कुंए की जगत तक पहुंची बाल्टी रस्सी के टूटने से गिर पड़ी।

बड़े अरसे तक तिवारी बाबू की कोई खबर नहीं मिली। एक रोज हेलन सिंह ने मेरी और कुंजम्मा को अपने कमरे में बुलवाया। वह अजीब व्यवहार देखकर कुंजम्मा स्तब्ध रह गयी। किसी भी काम से अपने कमरे में कुंजम्मा का आगमन हेलन सिंह को पसंद नहीं था।

हेलन सिंह ने उन दोनों को खाने के लिए चाकलेट, कंडेंस्ड मिल्क से भरा बेदाना खजूर और पीने के लिए फालूदा दिया। सब मीठा-ही-मीठा। मेरी की जीभ नमकीन के लिए तरसने लगी।

"कुंजम्मा ! तुम दुबली हो रही हो !" एकाएक हेलन सिंह ने कहा, "तुम्हारा शरीर दुबला हो रहा है और पेट मोटाता जा रहा है।"

कुंजम्मा ने अपना पेट हाथों से दबाने की कोशिश की।

हेलन सिंह खिलखिलाकर हंस पड़ी। उसके कंधे और छाती हिल उठीं। वह बोली, "मेरी का शरीर ही आदर्श है...स्लिम ब्यूटी।"

फिर हेलन सिंह कई बेसिर-पैर की खबरें सुनाने लगी——सिनेमा-थियेटर में पीछे बैठे मर्द चूतड़ पर चिकोटी काटते हैं। मछली-बाजार का दाढ़ी वाला जवान हेलन सिंह को देखकर आंख मार रहा था। उनका कोई जान-पहचान का व्यक्ति पहली पत्नी की हत्या करके दूसरी औरत से शादी करके जेल में फंस गया। श्री गोवर्धन आचारी ने पेट के दर्द की शिकायत से आयी अठारह साल की कुंवारी लड़की के पेट से मकई का गुच्छा आपरेट करके बाहर निकाला। क्रोध आने पर कोई पगली अपने और दूसरों के बाल खाने की चेष्टा करती थी। यमुना किनारे एक स्त्री और पुरुष की लाशें परस्पर आलिंगन में बंधी मिलीं। मवेशी का चारा महंगा हो गया है। एक चीनी कंघी का आविष्कार हुआ है, जो बालों पर चलाते समय पके बालों को गायब कर देती है। यों अनेक बेसिर-पैर की बातें हेलन सिंह ने कहीं।

थोड़ी देर की खामोशी के बाद एकाएक कुछ याद करके उसने पूछा, "क्या हाल ही में होस्टल में श्रीमती तिवारी तुम्हें मिलीं?"

"नहीं तो," मेरी ने कहा।

"उनकी मां कैसी है? क्या वे जिंदा हैं?"

"कुछ पता नहीं, मैडम!" मेरी बोली।

हेलन सिंह जो पूछना चाहती थी पूछ नहीं सकी।

काफी समय हो गया। मेरी व कुंजम्मा हेलन सिंह को 'गुड नाइट' कहकर चली गयीं।

उनके जाने के बाद रात को हेलन सिंह छत पर पहुंची। मंद हवा बह रही थी। सफेद आसमान पर काले बादल लुका-छिपी खेल रहे थे।

छत से देखने पर अस्पताल नगर का एक विहंगम दृश्य नजर आता है। नर्सेस होस्टल सबसे ऊंचाई पर बना था। वह छत का चक्कर लगाते हुए अस्पताल नगर का हृदय देखती रही। सिनेमाघर से मंद-मंद गीत छनता आ रहा था। वार्डों की अधिकांश बत्तियां बुझ गयीं। सिर्फ कार्डियोलाजी में प्रकाश का पूरा प्रवाह है। आपातकालीन सेवा के कक्ष में शायद कोई बड़ी नाजुक हालत में हो।

हेलन सिंह बड़ी देर तक टैरेस पर टहलती रही। अतीत व वर्तमान उसके मन में बारी-बारी से आंख-मिचौनी खेलते रहे। कितने ही कथा-पात्र उभर आये।

जब रात ढलने लगी, तब हेलन सिंह लोहे की सीढ़ियों से नीचे उतरी, बरामदा पार करके अपने कमरे में पहुंची। होस्टल बिलकुल शांत था। सभी अपने-अपने कमरे में थे। लगता है, अधिकतर लोग सो रहे थे।

बाहर हवा चली। फिर बूंदा-बांदी होने लगी। पता नहीं, कब आंखें मुंद गयीं। हेलन सिंह नींद आने तक, छत पर टपकती पानी की बूंदों की आवाज सुनती रही।

अचानक हेलन सिंह को बाइक की आवाज सुनाई दी। बाइक होस्टल के सामने आकर रुक गयी। इंजिन मौन हो गया। फिर भी दो तीन-बार छोटी-छोटी आहटें सुनाई दीं।

कान देकर सुनने लगी तो कोई दरवाजे पर दस्तक दे रहा था। हेलन सिंह ने उठकर बत्ती जलायी। इस ढलती रात में एक बजे कौन होगा?

नाइट गाऊन में बटन लगाते, केश संवारते, चेहरा पोंछते हुए उसने दरवाजा खोला। कमरे से आती रोशनी में देखा——तिवारी बाबू एक बांके घोड़े की तरह खड़े हैं।

"मुझे माफ करना। लाचारी से इस ढलती रात में आना पड़ा," तिवारी ने अपने केशों से पानी छिड़कते हुए कहा।

यह कहना नामुमकिन है कि हेलन सिंह को प्रसन्नता हुई, आशंका हुई या दुख? उसने बाहर देखा। नहीं, कोई जगा नहीं था।

"आइए, अंदर आइए !"

हेलन सिंह ने बड़ी आत्मीयता से निमंत्रित किया।

"नहीं, मैं अंदर नहीं आऊंगा, मुझे फुरसत नहीं है। एक बहुत जरूरी बात बताने आया हूं।"

बाहर की ओर देखकर हेलन सिंह ने कहा, "तिवारी बाबू, एक क्षण अंदर बैठिये। यों आधी रात को वहां खड़ा रहना ठीक नहीं है।"

"नहीं ! मेरे पास समय नहीं है। जरूरी बात सुनाकर तुरंत जाना है..." हेलन सिंह ने तिवारी बाबू को वाक्य पूरा नहीं करने दिया। उसने तिवारी का हाथ पकड़कर भीतर खींच लिया। अनमना होते हुए तिवारी भी अंदर घुसे। मगर उनकी चाल में जल्दी थी।

"बैठिये!" हेलन सिंह ने मोहक मुसकान से कहा, "क्षण भर बैठिए। बैठकर बात कीजिए। एक नहीं, हजार बातें कहिए।"

तिवारी बाबू सोफे पर बैठ गये।

"मैं इस नगर से हमेशा के लिए जा रहा हूं," तिवारी बाबू एकाएक बोले, "मेरा तबादला हो गया है। तार से संदेश आया था।"

"हाय !" हेलन सिंह के मुंह से यही शब्द निकला था। उसने अपने पर काबू रखते हुए कहा, "तो क्या हुआ ! बैठिए। मैं अभी मुंह धोकर आयी। तब सब बातें आराम से करेंगे।"

हेलन सिंह बाथरूम चली गयी।

हेलन सिंह जब वापस आयी तब उसके बदन से खुशबू आ रही थी। वह तिवारी

के सामने बैठी उन्हें देखती रही। तिवारी को सिर से पांव तक देखते हुए हेलन सिंह ने कहा, "जूते पर मिट्टी लगी है। उतार दीजिए। कोट भीगा है। वह भी खोलकर उस हैंगर पर टांग दीजिए।"

"मुझे फुरसत नहीं है। तुरंत जाना होगा। कल ही चले जाना है। नये स्थान पर परसों ड्यूटी ज्वाइन करनी है," तिवारी अधीर होते हुए बोले।

"कुछ भी हो, कल सबेरे ही तो जायेंगे न? थोड़ी देर बैठिए," हेलन सिंह ने कहा।

तिवारी ने जूता उतारकर कमरे के कोने में रखा। कोट उतारकर हैंगर पर लटकाया।

हेलन सिंह ने कहा, "यों एकाएक ट्रांसफर कैसे?"

"मुझे यह शहर छोड़ने की इच्छा हुई। मैंने खुद, जान-बूझकर कुछ गड़बड़ी कर दी।"

"तबादला बचा सकते थे, तिवारी बाबू!" संकोचपूर्वक हेलन सिंह ने कहा, "आपके लिए यही जगह बेहतर थी।"

तिवारी ने कुछ नहीं कहा। उनकी उतावली कुछ कम हो गयी। सांस की तेज गति कुछ मंद पड़ी।

"क्या आपको मुझसे नफरत है?" हेलन सिंह ने पूछा।

"आपसे? नफरत? मुझे? जीवन में कभी नहीं हो सकती। मुझे मालूम हो गया कि आप मुझे दुबारा देखना पसंद नहीं करतीं। इसीलिए मुझे लगा कि यह जगह छोड़कर चला जाऊं।"

"माफ कीजिए, तिवारी बाबू! ऐसा हो गया।" क्षमायाचना के स्वर में हेलन सिंह ने कहा। वह आगे बोली, "क्या हम फिर मिल नहीं सकते?"

तिवारी कुछ नहीं बोले।

"बोलिए, तिवारी बाबू! क्या हम अपना प्यार का रिश्ता पहले की तरह जारी नहीं रख सकते? क्या आपको एतराज है?"

"नहीं, कोई एतराज नहीं। मगर मैं जा रहा हूं न !" कुछ दुखी स्वर में तिवारी बोले।

"कोई बात नहीं। उसका भी उपाय है," थोड़ी देर की खामोशी के बाद हेलन सिंह ने उठकर कहा, "मैं चाय बनाऊं। अब दिन निकलने के पहले जाना। बस।"

हेलन सिंह रसोईघर में गयी। वह एक पुराना प्रेम-गीत गुनगुनाते हुए चाय बनाने लगी।

चाय पीते वक्त हेलन ने पूछा, "तो हम फिर से प्यार करेंगे। है न?"

"बिलकुल।" गरम चाय की चुस्की लेते हुए तिवारी बाबू ने कहा।

हेलन सिंह क्षण भर सोचती रही। फिर बड़े तपाक से बोलने लगी, "तिवारी बाबू, मुसीबत यही थी कि आपसे मुलाकात हुई। मैं अपने जीवन में पुरुषों के संसार को ही भुला चुकी थी। उसी दुनिया को मैं शाप दे रही थी। तभी आप मेरी जिंदगी में चले आये।

फिर से बत्ती जलने लगी। मेरे मन की कुछ इच्छाएं जाग उठीं। आपका परिचय पाने के बाद मेरे व्यवहार में ही परिवर्तन आया। एक पुरुष के साथ जीवन का आनंद पाने की इच्छा मन में उमड़ने लगी...'' हेलन ने बात रोकी। उसके हृदय में कोई इच्छा सिसकने लगी।

"अब भी समय है," तिवारी बोले।

"मगर साथी कहां?" "गद्‌गद हेलन सिंह ने पूछा।

"लो, यह मैं हूं," अपनी छाती पर हाथ रखते हुए तिवारी ने कहा।

कुछ सोचते हुए हेलन ने कहा, "दो स्त्रियों को लेकर खेल कैसे शुरू करेंगे? वह आपकी जिंदगी तहस-नहस कर देगी।"

तिवारी ठठाकर हंसे। फिर वे पागल की तरह हंस पड़े।

आश्चर्य से हेलन सिंह ने पूछा, "अरे, आपको क्या हो गया?"

"हम अलग हो गये। दो दिन पहले हमने अदालत में तलाक ले लिया," तिवारी ने प्रतिहिंसा की भावना से कहा, "वह अब मेरी कोई नहीं रही।"

हेलन सिंह की चिल्लाने की इच्छा हुई, 'आप तो माई के लाल हैं !' लेकिन वह कुछ नहीं कह सकी। अपलक आंखों से वह उन्हें देखती रही।

तिवारी ने हेलन की नजर में अपनी नजर डालते हुए कहा, "अब हम चैन से जी सकेंगे। अगर हेलन को पसंद हो तो।"

"आप तो जाने की बात कह रहे थे।"

"उससे क्या हुआ? हेलन भी मेरे साथ आ सकती है। हम पहले अध्याय से फिर से शुरू करेंगे।"

"क्या मैं सच सुन रही हूं?"

"सत्य ! केवल सत्य ही।" तिवारी ने न्यायालय की शपथ की तरह कहा।

हेलन सिंह कुछ सोचती रही। वह घूरती हुई सोफे का कुशन मसल रही थी।

मौन भंग करते हुए तिवारी ने पूछा, "कैसा चाहिए? बोलो, शादी करने के बाद साथ रहें या साथ रहते समय शादी करने से काम चलेगा?"

तिवारी यों पूछ रहे थे मानो जीवन का आरंभ और अंत तय कर लिया हो।

हेलन सिंह के मुंह से निकला, "किसी भी तरह हो, मुझे आपत्ति नहीं है।"

तिवारी ने फिर कुछ सोचकर प्रश्न किया, "किस तरह विवाह संपन्न करें? मंदिर में बंधुजनों के साथ या रजिस्ट्रार की कचहरी में? या किसी कमरे में सिर्फ एक-दूसरे के गले में माला पहनाकर?"

"तिवारी बाबू ! आप जो पसंद करें।"

बाहर ठंडी हवा चल रही थी। इसके बावजूद हेलन पसीने से तर हो रही थी। आनंद की अनेक सारिकाएं उसके आकाश में मंडरा रही थीं।

तिवारी ने एक संशोधन-सा पेश किया, "अगर गिरजाघर में पादरीजी के आशीर्वाद के साथ चाहती हो तो वह भी मुझे पसंद है।"

"आप जो पसंद करें।"

वे काफी समय बातें करते रहे। समय बहुत बीता तो तिवारी बाबू उठे।

"आज्ञा दीजिए।"

हेलन बड़ी प्रसन्न थी।

"तिवारी बाबू ! आज आप न जायें। आज आपने मुझे स्वीकार किया है। हमारी पहली रात है। यहां विश्राम कीजिए। सबेरा होने के पहले आपको जगा दूंगी।"

संदेहपूर्वक तिवारी ने पूछा, "पहली रात कैसे?"

"मैं ऐसा सोच बैठी।"

दोनों झट ठंडे पड़ गये। उनके बीच एक बिजली-सी कौंध उठी।

"बैठो।" हेलन सिंह ने कुछ हुक्म और उससे अधिक प्यार से कहा। तिवारी बाबू एक बच्चे की तरह बैठ गये।

हेलन बेडरूम के भीतर गयी। रेलगाड़ी के आने के समय पेटी व बिस्तर बांधने की-सी जल्दी में वह बिस्तर लगाने लगी। पुरानी चादर और तकिये का खोल उतारकर रद्दी की टोकरी में फेंक दी। अलमारी से लाल छींटवाली नयी चादर लेकर बिस्तर लगाया। बिस्तर पर गुलाब-जल छिड़का।

हेलन सिंह ने बाथरूम में प्रवेश करके दरवाजा बंद किया। उसने स्नान करके नये कपड़े पहने। मंदिर से लाया हुआ चंदन लगाया। श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने अगरबत्ती जलायी। श्रीकृष्ण का क्षण भर ध्यान किया।

"आइए तिवारी बाबू ! मैंने शयन-कक्ष सजाया है।"

सब-कुछ समझ लेने की अदा से तिवारीबाबू ने शयन-कक्ष में प्रवेश किया। वे कपड़े उतारकर नहाने गये।

तिवारी बदन पर एक बाथ-टावेल लपेटे आये। उनकी पेशियों में प्रकाश प्रतिबिंबित हुआ।

अब तिवारी बाबू पवित्र थे।

हेलन दो गिलासों में दूध ले आयी। दोनों गिलासों पर चंदन का टीका लगाकर उसने तिवारी की तरफ दूध का एक गिलास बढ़ाया।

दोनों ने छोटे बच्चे की तरह दूध पिया।

फिर दोनों बिस्तर पर लेट गये। दीपक बुझ गया।

शयन-कक्ष में श्रीकृष्ण को साक्षी बनाकर पहली रात प्रारंभ की।

याद नहीं, कब सो गये।

हेलन सिंह चौंककर जाग उठी। दिन निकल आया था।

हेलन सिंह कांप उठी। उसने व्याकुलता से प्रार्थना की, 'हे कृष्ण ! हे प्रभु ! मेरी रक्षा कर।' सात बज चुके थे। मार्मिक रहस्य अब पूरे मोहल्ले में खुलेगा।

बाहरी दरवाजा कोई जोर से खटखटा रहा था। कोई जोर से आवाज दे रहा था——"मैट्रन! मैट्रन!" बाहर कोई बड़ा हल्ला मचा रहा था।

"हे प्रभु! क्या तूने मुझे छोड़ दिया? सत्यानाश हो गया।"

हेलन सिंह ने बेडरूम का पर्दा खींचकर बंद किया, ड्रांइगरूम में से निकलकर बाहरी दरवाजा खोला।

मेरी हांफती हुई बाहर खड़ी थी। लान व बरामदे में चार-पांच स्टाफ नर्सें घबराई खड़ी थीं। बरामदे से कुंजम्मा दौड़ी आ रही थी।

"मिसेस तिवारी..." हांफते हुए मेरी ने कहा। वह वाक्य पूरा नहीं कर पा रही थी।

अपने को हैरान करती, बिना भय दिखाये हेलन सिंह ने पूछा, "वे कहां है?"

"इमर्जेंसी में। जहर पी लिया। सुनते हैं, मौत के नजदीक हैं।"

"हां, मैट्रन, हां।"

"ऐसा क्यों सोचा?"

"तिवारी बाबू की लाश भी मार्चरी में लाकर रखी है," मेरी ने कहा। हेलन सिंह को लगा कि सिर फटकर चूर-चूर होता जा रहा है।

"क्या बकवास कर रही है?"

"हां, मैट्रन, हां।"

घटना यों थी। कल रात को जोर की बारिश व हवा चल रही थी। रात को करीब बारह बजे, तिवारी बाबू किसी दोस्त के घर पार्टी के बाद अपनी सहज तेज रफतार से बाइक चलाते घर आ रहे थे। ओवर-ब्रिज से उतरते-उतरते बाइक फिसल गयी। बाइक और तिवारी बाबू नीचे खड्ड में गिर पड़े। वहीं पर तिवारी की मौत हो गयी।

सब-इंस्पेक्टर शर्मा और उनका दल ही अस्पताल में लाश ले आये। अप्रत्याशित दुख का समाचार सुनकर श्रीमती तिवारी ने जहर पी लिया।

हेलन सिंह को आश्चर्य, भावावेश, दुख, क्रोध——सब-कुछ महसूस हुआ।

"अच्छा, तुम लोग जाओ। मैं अभी आयी," हेलन सिंह ने मेरी और मित्रों से कहा।

यह विलक्षण सूचना देने हेलन सिंह हांफते हुई अंदर भाग गयी।

तभी हेलन सिंह के अचरज का ठिकाना न रहा।

तिवारी बाबू नहीं। उनका नामोनिशान तक नहीं।

बिस्तर की चादर पर कोई सिलवट नहीं। पिछली रात को उस पर कोई सोया नहीं। बेड-रूम एकदम ठंडा-ठंडा है।

तो...तो...?

सिर चकराया और हेलन सिंह पलंग पर मूर्च्छित हो गिर पड़ी।

तेईस

कार्डियोलाजी और मार्चरी की इमारतों के पीछे से जमुना बहती है।

बरसात में कभी-कभी बाढ़ आती है। तब नदी जल इमारत की ऊंची, काली चट्टानों की नींव तक पहुंच जाता है।

अब जमुना में पानी कम है। वह शांत व सुंदर है। पानी की सतह पर पक्षी आराम से बैठे हैं। कुछ आसमान में उड़ते हुए पानी में मछली को देखते ही झट उसे चोंचों में उठा लेते हैं। जाड़े के दिनों की धूप में जल दमक उठा। थोड़ी दूरी पर एक लंबे वृद्ध साधू सूर्य-नमस्कार कर रहे हैं। दूर स्त्रियां व बच्चे नहा रहे हैं। मल्लाह तरकारी-भाजी से लदा बजरा नदी पर खेते जा रहे है। उनके पीछे कोई मछुआरा अपनी किश्ती लिये आ रहा है। वह गा रहा है। गाना मामूली है, पर बचपन में सुने हुए किसी गीत की याद दिलाता है।

नदी के जल में लहरों का निशान तक नहीं। उसमें सूरज की छाया है। देवदास सूखी रेत पर बैठा है। बगल में लक्ष्मी थी।

"काश, यह चांदनी रात होती ! नदी जल पर चांदनी फैलती," देवदास ने कहा।

अपने बदन में लगी रेत झाड़ते हुए लक्ष्मी ने कहा, "ऐसी ही कल्पना कर लो। हम कैसे-कैसे हवाई किले बांधते हैं!"

"हां, वैसी निशा में मैं इसी तरह की एक छोटी किश्ती में चढ़कर संसार की धार से होकर तिरता जाऊंगा। गीत गाता हुआ लोगों के दिल मोह लूंगा। संसार में कहां क्या क्या है, प्रत्यक्ष देखूंगा। दुनिया की सही-सही जानकारी पाऊंगा। अपना भी परिचय संसार को दूंगा," देवदास ने जमुना पर चलती किश्ती की ओर इशारा करते हुए कहा।

"वाह! कितनी सुंदर कल्पना है। आपको कवि के रूप में जन्म लेना चाहिए था," लक्ष्मी ने कहा।

"और एक जन्म लेने को जी चाहता है। और एक बार परीक्षा लेने। अगर मिले तो इस जीवन की भांति उसे असंतोषजनक नहीं बनाऊंगा।" कुछ दुखी होकर देवदास बोल रहा था।

तब सायरन सुनाई पड़ा। नदी के उस पार बने नये कारखाने से आवाज आ रही थी।

घड़ी पर नजर डालते हुए लक्ष्मी ने कहा, "अरे ! वक्त हो गया। चलें?"

"तुम्हारी नजर हमेशा घड़ी पर रहती है। घड़ी पर नजर डालते-डालते तुम अपने समय की हत्या कर रही हो!"

''अकेले मैं ही नहीं। अधिकांश लोग बीच-बीच में घड़ी देखा करते हैं,'' लक्ष्मी ने कहा।

''मानता हूं। लेकिन घड़ी में समय देखने वालों को असल में कोई जल्दी नहीं रहती। वे यों ही घड़ी पर दृष्टि डालते रहते हैं,'' देवदास ने कहा

''चलो!'' लक्ष्मी उठी।

रेतीला स्थान पारकर वे पत्थर की सीढ़ियों से कालेज के अहाते में पहुंचे। वे फिर से अस्पताल के परिसर में थे। दस मिनट नगर व गांव को जोड़ते हैं।

''पुलिस सर्जन आ गये होंगे। तेज चलो!'' धीरे से चलते देवदास को लक्ष्मी ने कोंचा। देवदास नदी-तट की मस्ती में था। वे मुर्दाघर के पास पहुंचे।

मुर्दाघर कार्डियोलाजी विभाग के बगल में है। लोग मुर्दाघर की तरफ नहीं जाया करते। उस तरफ आंख उठाकर देखते तक नहीं।

'लाशें सुरक्षित रखने का स्थान!' सुनते ही मन में कंपकंपी महसूस होती है।

यह एक बड़ा मुर्दाघर है। पचास-साठ लाशें यहां सुरक्षित रखी जा सकती हैं। तीन तल्लों में बनी बर्थों में लाशें रखते हैं। रेलगाड़ी के दूसरे दर्जे के स्लीपर बर्थों की तरह।

लाश को सुरक्षित रखने और बाहर ले आने के लिए मोर्चरी में प्रवेश करने पर उसमें अधिक समय तक खड़े नहीं रह सकते। इतनी ठंड होती है। माइनस तापमान। लाशों का सर्द होकर पड़े रहने का दृश्य भी डराता है। मुर्दाघर के छोटे गलियारे से सटा हुआ एक बड़ा हाल है। यहीं पर पोस्ट-मार्टम ('शवपरीक्षा') करते हैं। वहां सर्जन चटर्जी लाशों और छात्रों के इंतजार में बैठे हैं।

देवदास और मित्रों का दल सर्जन के कमरे में पहुंचा। मेडिकल छात्रों को अपने पाठ्यक्रम में तीस पोस्ट-मार्टमों का प्रत्यक्ष अनुभव पाना पड़ता है। उनके रिकार्ड तैयार करने होते हैं।

पुलिस सर्जन अपनी लकड़ी की कुर्सी पर बैठकर पाइप के कश ले रहे हैं। उनके कमरे का रंग-ढंग देखने पर लगता है कि वहां रहने वालों को मरे अनेक वर्ष गुजर गये हैं। बिना मेजपोश की खुरदरी मेज। उस पर न किताब, न कलम, न ऐश ट्रे। मिट्टी की दो तीन पाइप हैं। एक टिन सीलोनी तमाखू बंद रखा है ताकि उसके भीतर लाश की बदबू प्रवेश न करे। कमरे के पास तीन-चार बेंच, हाथ से बुने कपड़े के मोटे खिड़की के परदे। दीवार पर मार्क्स, टैगोर, और सत्यजित रे की तसवीरें। उन तसवीरों पर धूल व मकड़ी का जाला। इतने सुंदर अस्पताल के परिसर में ऐसा संकरा कमरा! उन्नीसवीं सदी

की याद दिलाता है।

चटर्जी ने अपने बुझे पाइप की राख रद्दी की टोकरी में झाड़ने के बाद सिलोनी तंबाकू का टिन खोला और मेज पर पड़ा दूसरा पाइप भरकर उसमें आग सुलगायी। वे कश लेने लगे। उनके ओठों से हमेशा पाइप का धुआं निकलता रहता है। अगर पाइप नहीं रहती तो वे वायलिन बजाते रहते हैं।

चटर्जी संगीत में जितनी लगन व ज्ञान रखते हैं उतनी लगन व ज्ञान रखने वाले लोग मुश्किल से मिलेंगे। उनकी बातचीत और पैरों की चाल तक तालमय रहती है। आठों पहर उनके शरीर से किसी अज्ञात गीत की लहरें निकलती हैं। चाहे गाली दें, पत्थर उठाकर फेंकें, आरी लेकर चीरें, चाकू लेकर काटें——उनकी हर क्रिया लयात्मक होती है। उस लय का क्रम नहीं टूटता।

चटर्जी का परिवार शहर में संगीत-कार्यक्रमों के लिए मशहूर है। उनकी पत्नी गाती है। बेटा गिटार बजाता है। बेटी हार्मोनियम बजाती है। छोटी बेटी तवला और साला कृष्णन बांसुरी बजाता है।

पोस्ट-मार्टम के बाद घर लौटे चटर्जी के यहां संगीत की महफिल जमती है। चटर्जी म्यूसिक क्लब कई रंगारंग कार्यक्रमों में भाग लेता है। वे बारी-बारी से पोस्ट-मार्टम और संगीत कार्यक्रम चलाते हैं।

"प्यारे बेटो ! मैं यह पाइप जरा खतम करूं। तब तक तुम लोग जरा घूमकर आ जाओ," छात्रों की तरफ देखकर वे बोले।

"सर, हमारा पोस्टिंग अब शीघ्र समाप्त होने वाला है। हमने एक भी केस नहीं देखा।" एक छात्र ने दुखपूर्वक निवेदन किया।

"तो क्या हुआ ! तीस केस लेना है न? तीन मामले देखना काफी है। उन्हें तीस बनाकर लिखना। पोस्ट-मार्टम में सीखने को कुछ नहीं रहता। सिर्फ कसाईगिरी है। कसाई का काम।" पाइप खतम करके धुएं का मजा लेते हुए चटर्जी बोले।

"पढ़ाई के दिनों में मैंने एक भी केस नहीं देखा था। बाद में यहीं आकर फंस गया। जब यह पेशा बन गया तब सीखने लगा। अब मैं लाश के बाल की खाल से हत्यारे का पता कर सकता हूं। मैंने सर्विस में आने के बाद ही सीखना शुरू किया।"

मेडिको चटर्जी की बातें सुनने के इंतजार में थे तो उन्होंने कहा, "बेटो ! बाहर जाकर ताजा हवा में सांस लो। एक-एक चाय पीकर और सिगरेट के कश लेकर आओ। उसके बाद ही मैं शुरू करूंगा।"

मेडिको बाहर निकल गये।

पोस्ट-मार्टम हाल के बरामदे पर और लॉन में पुलिस वाले तथा बंधुजन लाशें लेकर प्रतीक्षा में हैं। चटाई व कपड़े में लपेटी लाशें मानो अपना भविष्य जानने के लिए अधीर

हैं। लॉन में धूप खिली थी। वहां बीच-बीच में गिद्धों की परछाईं नजर आ रही थी।

"आओ, आओ !" लॉन में टहलते मेडिको छात्रों को चटर्जी ने बुलाया।

वे पोस्ट-मार्टम कक्ष में प्रविष्ट हुए। हब्शी जैसे लगने वाले नीले रंग के चोगे पहने अटेंडेंट पुलिस सर्जन को देखने पर एकाएक व्यस्त हो गये। मेज की बगल में क्लर्क बाबू बैठे हैं। वे पोस्ट-मार्टम रिपोर्ट की फाइल तैयार कर रहे हैं।

चौड़ी मेज पर लाश को काटने-चीरने के औजार रखे हैं। चमकीले, काली मूठ के चाकू, बसूले, आरियां, मैग्निफाइंग ग्लास, लाठी जितनी लंबी टार्च। लाश के आंतरिक अंग सुरक्षित रखने के लिए कांच के मर्तबान——सब करीने से मेज पर रखे हुए हैं।

पाइप का कश लेने के बाद चटर्जी ने पूछा, "आज कितने केस होंगे?"

"सर!" एक क्लर्क कुरसी से उठकर चटर्जी के पास आया, "आज बहुत केस होंगे। अभी तक छह पहुंच चुके हैं।''

"अच्छा, अच्छा ! जल्दी देखो।" आखिरी कश लेने के बाद पाइप मेज पर रखा और दोनों हथेलियां रगड़कर गरम कीं।

"बच्चो ! नाटक शुरू होने वाला है।" मेडिको छात्रों को देखकर हंसते हुए चटर्जी ने कहा। वे उनके सामने एक कतार में खड़े थे।

''जितनी दूर खड़े रहो उतना ही अच्छा,'' पीछे की ओर हटते एक छात्र को देखकर चटर्जी ने कहा नहीं तो, इसमें देखने को रखा ही क्या है? शरीर की हवा निकल जाये तो लाश। दुर्घटना में मौत हो तो चीर-फाड़ अलग से। इस सब का शायद कोई मतलब नहीं। मगर अच्छी तरह देख लो। तुम लोगों में से किसी को शायद पुलिस सर्जन होना पड़े। मैं भी लाश बनूंगा न?''

अटेंडेंट ने पूरा पैकेट अगरबत्ती का जलाया। एक छोटे बर्तन में भरे लोबान में अंगारे डाले। पोस्ट-मार्टम हाल में अगरबत्ती और लोबान की खुशबू चारों तरफ फैल गयी।

पहली लाश भीतर लायी गयी। किसी अनजान व्यक्ति की लाश थी। उसे लाने वाले पुलिस के सिपाही दरवाजे के बाहर खड़े थे। कपड़े में लिपटी लाश मेज पर खोली गयी।

लाश नंगी थी।

लाश का सिर गायब था। हत्यारों ने सिर काटकर और कहीं गाड़ दिया होगा। पुलिस उसे खोजने में व्यस्त होगी। चार-पांच-दिन बाद एक सड़ा-गला सिर पोस्ट-मार्टम के लिए अलग से आयेगा।

लाश के पांव मोटी रस्सी से बांधे गये हैं। मृतक व्यक्ति जीवित रहते समय काफी स्वस्थ रहा होगा। मांसपेशियां अब भी मजबूत दिखाई देती हैं। पूरा शरीर मिट्टी से सना। दायें हाथ की उंगलियां कट गयी हैं। आखिरी संघर्ष में कटी होंगी। हत्यारों से मृतक ने अच्छी लड़ाई लड़ी होगी। कंधे पर दो गहरे घाव और हैं। पुरुष लिंग काटा गया है।

उस अंग को जांचते हुए चटर्जी ने कहा, "इसने कोई बदमाशी की होगी। यह एक बांका मजनू रहा होगा।"

उन्होंने हमेशा लड़कियों का पीछा करने वाले एक मेडिको की तरफ देखा। फिर कहा, "ऐसी मुसीबत और किसी पर न पड़े।"

पोस्ट-मार्टम के कमरे में सम्मिलित हंसी गूंज उठी।

पुलिस सर्जन का हाथ सक्रिय था। अटेंडेंट लोग मदद के लिए चारों तरफ खड़े थे। पोस्ट-मार्टम के लिए एक कसाई के हाथ जैसी सफाई ही चाहिए। वहां कुशलता हाथ की नहीं, अक्ल की है।

लाश के सटे हुए दोनों हाथ को चटर्जी ने जोर लगाकर खोला। ठंडी पड़ी पेशियों के खुलते समय होने वाली हल्की-सी 'चिर्र' ध्वनि सुनाई दी। उन्होंने चाकू लिया और देख पाने में असमर्थ बच्चे की तरह सूनी आंखों से क्षण भर खड़े रहे। पहला चीरा दाढ़ी से नाभि तक होता है, मगर इस लाश की दाढ़ी कहां? इसलिए वे कुछ अप्रतिम रहे। कोई बात नहीं, जो है उसी से शुरू करेंगे। इसमें सावधानी या डर की कोई बात नहीं थी। फिर भी डाक्टर के मन में मृतक के प्रति सम्मान की भावना थी। मांस पूर्णतया काटा गया। चाकू मेज पर रखा। उन्होंने दोनों हाथों को आजाद किया। बटन खुले कोट की तरह, खुली पड़ी खाल और मांस को दोनों तरफ हटाया।

चिरे हुए प्याज जैसे रंग की चमकदार पसलियां बाहर निकलीं। बड़ा चाकू लेकर उन हड्डियों के कार्टीलेज दोनों तरफ तोड़कर, सीने के नीचे पीठ की रीढ़ नेकटाई उठाने की सहजता से ऊपर उठायी।

वर्षों से सोते-जागते हमेशा स्वयं धड़कता हृदय, फूलते-संकुचित होते फेफड़े, प्राणों का बायोकैमिस्ट जिगर, सब-कुछ पचाता आमाशय व अंतड़ियां——सब खुली आंखों में नजर आये।

सहायकों ने मृतक के आंतरिक अंगों को निकाल-निकालकर प्रत्येक का वजन और आकार नोट कर लिया।

सब-कुछ बीस मिनट में खतम हो गया। अगली लाश पति द्वारा जान से मार डाली गयी युवा पत्नी की थी। अंतड़ियां बाहर निकली थीं। योनि का भाग ध्वस्त किया गया था।

कमरे में बदबू फैल गयी। चटर्जी ने आवाज दी, "लोबान।"

लोबान का धुआं कमरे में फैल गया। लाश की बदबू और लोबान के मिश्रण से एक खास गंध कमरे में फैल गयी।

चाकू हाथ में लिये चटर्जी ने कहा, "अनैतिक संबंध ! पारिवारिक कलह !"

एक-एक करके लाशें आती रहीं।

पुलिस सर्जन के हाथ थक गये।

"आओ !" मेडिको छात्रों को निमंत्रण देते हुए वे बाहर निकले। लॉन में बेंच पर बैठकर वे ताल बजाते हुए पाइप के कश लेने लगे। अस्पताल परिसर में सबसे सुंदर लान मुर्दाघर के सामने का था। उन्होंने अपने विभाग के सभी कर्मचारियों को पौधे लगाने और उनको सींचने का काम सौंपा था। प्रत्येक पोस्ट-मार्टम समाप्त करने पर चटर्जी खिड़की का पर्दा खोलकर लॉन की तरफ देखते। वहां खिले फूलों, पौधों और पेड़ों को देखकर वे अपने काम की नीरसता भूल जाते थे।

चटर्जी ने गुलाब के फूल का स्पर्श करते हुए कहा, "अगर ये यहां न होते तो मैं पहले ही मर जाता।"

अटेंडेंट बरामदे में दिखाई दिया तो पुलिस सर्जन उठे। फिर स्वगत स्वर में बोले, "अच्छा ! नया माल आया है !"

चटर्जी बरामदे पर चढ़े तो सब-इंस्पेक्टर शर्मा व पुलिस के सिपाही बाइक दुर्घटना में मरे प्रोफेसर तिवारी की लाश लिये खड़े थे।

कपड़े में लिपटी तिवारी बाबू की लाश को देखते हुए चटर्जी कुछ देर मौन रहे। क्या वे दोस्त थे——कौन जाने? क्या चटर्जी की आंखें भीग गयीं——कौन जाने?

"शर्माजी ! आपको जल्दी विदा करूंगा।" धीमी आवाज में कहते हुए चटर्जी ने पोस्ट-मार्टम हाल में प्रवेश किया।

मेडिकोज पोस्ट-मार्टम रिपोर्ट लिये बाहर निकले। आठ छात्र थे। वे नोट व रिकार्ड लिखते-लिखते रात-दिन एक करने को उतावले चारों तरफ बिखर गये।

देवदास और लक्ष्मी किसी की नजर में पड़े बिना पत्थर की सीढ़ियां उतरते हुए फिर से नदी-तट पर आये।

ज्वार में नदी-जल कगार की तरफ उठ रहा था। सूरज बादलों के भीतर था। हवा रेतीले तट पर फैली लंबी घास को सहलाते हुए चलने लगी।

वे घास के पौधे हलका मर्मर संगीत गुंजाते हुए पवन की गति के अनुसार हिलते जा रहे थे। यह दृश्य बड़ा रमणीक लग रहा था।

थोड़ी देर घाट पर एक-एक करके नावें लग रही थीं। प्रवासी लोग दुर्गा-पूजा की छुट्टियों के लिए पेटी भर सामान लिये आ रहे थे।

देवदास ने कहा, "मानव एक विशिष्ट नियम के अनुसार कार्य करने वाला यंत्र है।"

लक्ष्मी ने कहा, "मैं ऐसा नहीं मानती। आदमी अपनी इच्छानुसार रेंगता जीव है।"

"वह हमारी अभिलाषा है," देवदास बोला।

"पुलिस सर्जन का जीवन मेरी बात का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।" लक्ष्मी ने कहा, "मगर वे अपने जीवन की नीरसता को गीत गाते हुए भुला देते हैं।"

"हां, वह ठीक है। हमारा काम हमें जिस दिशा में ले जाता है वहीं उस काम को

छोड़ देना है। चटर्जी का संगीत वही मुक्ति है।"

"अरे, रे, वक्त बहुत हो गया, चलें !" लक्ष्मी ने जल्दी की।

हंसते हुए देवदास ने कहा, ''तुम फिर से घड़ी देख रही हो।"

"आओ, चलें," लक्ष्मी ने कहा।

वे सीढ़ियां चढ़ने लगे।

सांझ का झुटपुटा थकी हुई हंसी की तरह जल में प्रतिबिंबित हो उठा।

चौबीस

रात के करीब दो बज रहे थे। कुंजम्मा को प्रसव-पीड़ा शुरू हुई। उस दिन सबेरे पेट में दर्द शुरू हुआ। तभी कुंजम्मा को बात का पता लग गया था। उसने दिन का वक्त बैठे-लेटे बिताया।

दोपहर के वक्त मेरी कमरे में आयी तो कुंजम्मा के माथे से पसीना छूट रहा था।

मेरी ने पूछा, "पेट का दर्द दूर हो गया, दीदी?"

"नहीं छुटकी, दूर हो जायेगा।" पेट संभालते हुए कुंजम्मा दीवार की तरफ करवट लिये लेटी थी।

"कुछ दवा लेतीं, दीदी?"

"अरे, कुछ नहीं चाहिए, वह दूर हो जायेगा।" मंत्र रटने की तरह कुंजम्मा ने कहा। फिर भी मेरी थोड़ी देर कनखियों से देखती रही। मगर मेरी को कुछ संदेह या शंका नहीं हुई। गैस का मामला होगा। आमाशय में गैस बढ़ गयी होगी।

वस्तुतः कुंजम्मा पिछले नौ महीनों से अपने पेट में एक गर्भ लिये उसे संभाले हुए चल रही थी। कुंजम्मा के गर्भवती रहने का मर्म सिर्फ उसे ही मालूम था। और किसी बच्चे तक को उसका पता नहीं था।

कुंजम्मा वैसे भी कुछ हृष्ट-पुष्ट थी। इसलिए किसी ने उसके बढ़ते पेट की तरफ ध्यान नहीं दिया। कपड़े पहनने के ढंग से भी उसने थोड़ा-बहुत उसे छिपा रखा था।

पति सिपाही और प्रेमी सब-इंस्पेक्टर शर्माजी ने कुंजम्मा को ठुकराया। तो भी कुंजम्मा ने अपने साहस की पूंजी के बल पर भविष्य से लड़ने का निश्चय किया। उसे अच्छी तरह मालूम था कि एक पत्र भेजने से सिपाही वापस आ आयेगा। मगर कुंजम्मा स्वाभिमानी मर्द को पसंद करती है। बैंगन-से जीने वाले मर्दुओं के प्रति कुंजम्मा के मन में बिलकुल ममता नहीं है।

गर्भ रहने के बाद प्रसव तक जैसी समस्याएं होती हैं, उनमें से कोई भी कुंजम्मा को कष्ट नहीं देती थी। संभव है, कुंजम्मा ने उन सबको दांत भींचकर सहन कर लिया हो। गजब की दिलेर औरत थी।

कुंजम्मा बिलकुल घबरायी नहीं। उसका व्यवहार ऐसा रहा कि उसने सारा कार्यक्रम पहले से तय कर लिया। प्रसव के बाद कैसी स्थिति होगी? क्या कुंजम्मा ने मन में योजना

बनायी होगी कि किसी अज्ञात कन्यामठ में अपने बच्चे को पाल-पोसकर एक दिन बड़े सबेरे सब-इंस्पेक्टर शर्मा के यहां जाकर बदला लेगी? इतने दिन ये सारे मर्म छिपाये रखने वाली कुंजम्मा का अपना अलग ही इतिहास है।

एक अर्से से वह रातों में अपने गर्भस्थ शिशु से बातें करती रहती है। चौंककर कभी मेरी पूछती, "दीदी, किससे बात कर रही हो?" कुंजम्मा बताती कि अभी मैंने सपना देखा है। कभी कुंजम्मा हंस पड़ती, कभी सिसक-सिसककर रोती, कभी पगली की तरह बक-झक करती।

पिछले नौ मास कुंजम्मा के लिए शायद नौ युगों के समान बीते। उसने एक-एक क्षण जाने कैसे बिताया होगा! मातृत्व का बोझ क्या ऐसे क्षणों को आनंद से लहरायेगा? या उस बोझ ने कुंजम्मा को एकदम असमर्थ बना दिया?

गर्भ के दिनों में शारीरिक शिथिलता और मुखाकृति में परिवर्तन को किसी पर प्रकट किये बिना कुंजम्मा रह सकी। सचमुच यह ताज्जुब की बात थी! पर यों, दुनिया में कितनी ही अजीब बातें होती हैं।

रीढ़ से शुरू करके पेडू में समाप्त होता दर्द उसने बड़ी देर तक दांत भींचकर सहन किया। जब आगे सहन करना असंभव लगा तब कुंजम्मा धीरे से उठी, नाइट गाऊन के ऊपर एक काली चादर ओढ़ ली। फिर धीरे से कमरे से बाहर निकली। दरवाजा बंद करते हुए उसने क्षण भर मेरी की तरफ देखा। वह तकिये पर सिर रखे गहरी नींद सो रही थी——एक सफेद कबूतर की तरह।

होस्टल में गहरी खमोशी थी। बस एक बत्ती जल रही थी। बरामदा, लॉन और मैट्रन के क्वार्टर की परिक्रमा करते हुए कुंजम्मा छोटे फाटक पर पहुंची। वहां क्षण भर रुककर फूलती सांस को आराम दिया। उसने चारों तरफ देखा। चौकीदार बरामदे में सो रहा था। हेलन सिंह के क्वार्टर की एक खिड़की खुली थी। वह संसार को देखने-जानने के लिए हमेशा एक खिड़की खुली रखती थी।

छोटा फाटक खोलकर कुंजम्मा बाहर निकली। आधी रात को दर्द से दोहरी होती काली चादर ओढ़े अस्पताल की सड़क से प्रेतात्मा की तरह वह चली जा रही थी। देर तक चलती रही। कोई सामने से आया। मगर कुंजम्मा ने उस पर ध्यान नहीं दिया। नर्सों के क्वार्टर, डाक्टरों के बंगले, सिनेमाघर आदि पारकर अस्पताल के दक्खिनतम भाग में, मुर्दाघर के सामने पहुंचकर कुंजम्मा खड़ी हो गयी। पास कार्डियोलाजी में रोशनी थी। कुछ चहल-पहल के आसार मिले। मुर्दाघर का चौकीदार दीवार के सहारे बैठा-बैठा सो रहा था।

सारे चौकीदार नींद का मजा ले रहे थे।

मुर्दाघर के पीछे से दबे पांव चलकर निर्जन ऊपरी भाग को उसने पार किया और पत्थर की सीढ़ियों से जमुना-किनारे जा पहुंची।

विशाल नदी-तट पर पहुंचकर कुंजम्मा को लगा कि वह मुक्त हो गयी है। पसीने से तर कुंजम्मा को नदी-जल का स्पर्श कर आती हवा ने कुछ आराम दिया।

आकाश पर बादल थे। कहीं-कहीं तारे टिमटिमा रहे थे। जल के विस्तार के पार नदी का दूसरा तट नहीं दिख रहा था। फिर भी आकाश के नीचे नदी पांव पसारे पड़ी थी। नदी में कोई नाव या बजरा नहीं दिखाई दिया। किसी मनुष्य मात्र का स्वर भी सुनाई नहीं दे रहा था !

कोई पक्षी तक नहीं बोल रहा था।

कुंजम्मा ने अपनी काली चादर जमुना के रेतीले पाट पर बिछायी। फिर कुछ भी सोचे बिना, नक्षत्रों को ताकती हुई उस चादर पर पीठ के बल लेट गयी।

असहनीय पीड़ा फिर से प्रारंभ हो गयी। कुंजम्मा को लगा जैसे कोई जांघ की सारी पेशियों को ऊपर खींचक पेड़ू पर दबा रहा हो। मस्तिष्क, हृदय, जिगर, अंतड़ियां——सभी मिलकर पेड़ू की गहराई में उतरते-से लगे। रीढ़ और पीठ आगे बढ़ रहे हैं। आंखों में अंधेरा छा रहा है। सिर फटता जा रहा है।

जब पीड़ा सहना असंभव हो गया तब कुंजम्मा चीख पड़ी——निःशब्द ! पेशियां तनी थीं।

खुले मुंह से सिर्फ हवा निकली।

आरोह-अवरोह के क्रम से दर्द बढ़ता-घटता रहा।

विशाल और सर्वग्राही नदी, अपने तट पर सारी दुनिया-जहान को नजर-अंदाज करती मातृभावना का क्रंदन देखती खड़ी है। वह हिलोरों को पेड़ू में संभाले, ब्रह्ममुहूर्त में ध्यान-निरत हो, अंधकार की भीनी चदरिया हटाकर अंतर्मन की आंखें खोले जनन-प्रक्रिया का कोलाहल निस्संग भाव से देखती-सुनती रही।

सुदूर पूर्व के क्षितिज में प्रकाश की प्रथम किरण अंधकार को वेधते हुए आसमान पर फूट पड़ी। मशाल-सी प्रथम किरण नदी के विशाल वक्ष पर एक आघात के साथ पड़ी। यह प्रकाश ही था, फिर भी नदी कुछ चौंकी।

नदी की गोद में हलका-सा कंपन उठा।

यमुना के रेतीले तट पर एक नवजात शिशु का रुदन गूंज उठा। यह प्रथम स्वर दिगंत तक छा गया।

यमुना में हिलोरें उठीं। झूमती, फेन उगलती नदी भाव-विभोर हो नृत्य करने लगी।

प्रभात-वेला में मेरी की नींद एकाएक खुली तो कुंजम्मा अपने पलंग पर पड़ी सो रही थी। मेरी बाथरूम गयी। दैनिक कार्यक्रम पूरे करके लौटी। तब भी कुंजम्मा नहीं जगी तो मेरी ने उसका स्पर्श करके जगाने की कोशिश की। दो-तीन बार आवाज दी। फिर भी नहीं

जगी तो दीवार की करवट लेटी कुंजम्मा को दोनों हाथों से पकड़कर पीठ के बल लिटाया, चादर हटायी।

"दैया रे !" मेरी के गले से आर्तनाद उठा।

बिस्तर की चादर खून से भरी थी। कुंजम्मा के भीतरी कपड़े खून से लथपथ थे। कुंजम्मा बेहोश पड़ी थी।

नर्सों के होस्टल में हंगामा मच गया। होस्टल की लड़कियां कमरे के सामने इकट्ठा हो गयीं। तब तक मैट्रन हेलन सिंह दौड़ती-हांफती आ गयी। कमरे में भीड़ लगाती लड़कियों को हटाते हुए वह कुंजम्मा के पास आयी। सिर से पांव तक देखा। उसकी नब्ज की जांच की। पलकें खोलकर देखा कि कहीं अनीमिया तो नहीं। फिर खून-सने कपड़े में छोटी उंगली लगायी।

मैट्रन हेलन सिंह कुछ सोचती रही। छोटी उंगली ऊपर उठाकर वह उसे कुत्ते की तरह सूंघने लगी।

एंबुलेंस होस्टल गेट पर आ गयी। कई लोगों ने कुंजम्मा को उठाया और एंबुलेंस पर लिटाया, इमर्जेंसी पहुंचाया।

इमर्जेंसी में डा. तनूजा कुंजम्मा की आपातकालीन सेवा के लिए आ पहुंची। कुंजम्मा के पलंग के दोनों तरफ खून व ग्लूकोज की बोतलें लटकायी गयीं।

दोपहर होते-होते कुंजम्मा होश में आ गयी। शाम होने पर वह बातें करने और कुछ पीने लगी।

दूसरे दिन कुंजम्मा ने मानो अपना स्वास्थ्य फिर से पा लिया। वह दोस्तों से यों बात कर रही थी, मानो कुछ हुआ ही नहीं। उसी समय सब-इंस्पेक्टर शर्मा और दो सिपाही इमर्जेंसी में कुंजम्मा के स्पेशल रूम में आ गये।

वे कुंजम्मा से पूछताछ करने आये थे।

कुंजम्मा का रोग था——प्रसव के बाद का रक्तस्राव। मगर कुंजम्मा ने कहां बच्चे को जन्म दिया? कैसे? बच्चे को क्या हुआ? सब बातें कानून के संरक्षकों को जाननी हैं। इस सबके लिए वे आये थे।

सब-इंस्पेक्टर शर्मा और पुलिस वाले कुंजम्मा से दो घंटे तक सवाल करते रहे। आखिर अस्पताल के सुपरिंटेंडेंट की अनुमति से सब-इंस्पेक्टर शर्मा कुंजम्मा को गिरफ्तार करके ले गये।

दूसरे दिन यमुना नदी के रेतीले तट पर एक नाटक मंचित हो रहा था।

एक पुलिस सब-इंस्पेक्टर और दो सिपाही एक औरत को रेत पर घसीटते ले जा रहे थे। जुमना-किनारे इसे देखने वाले लोगों की भीड़ जमा है। भीड़ में सभी धर्मों, जातियों के लोग हैं। उनमें कसूरवार भी हैं। भविष्य में कसरू करने वाले भी हैं।

डाक्टर, नर्स और मैट्रन हैं। व्यापारी व कलाकार हैं। मेडिको लोगों की फौज है। नावों के मल्लाह हैं। सूर्य-स्नान के लिए आये साधु हैं। पितृजनों को पिंड प्रदान करने आये बंधु-जन हैं। आपस में इश्क की बातें करने आये प्रेमी व प्रेमिकाएं हैं।

इन सब बातों से गाफिल डा. कुमार नदी में स्नान करने आये हैं। देवदास व लक्ष्मी भी हैं।

सूरज का प्रकाश नदी-जल पर जगमगा उठा। हिलोरें कुछ हिचक-सी रही थीं। पूरब से हवा आ रही थी। चलती नावें एवं बोट निश्चल हो गये। पक्षी मछलियों को चोंच मारने की कोशिश किये बिना तैरते हुए खेलते रहे।

पुलिस वाले जिस औरत को घसीटते ला रहे थे, वह एकाएक रुकी। वह आगे बढ़ने से मानो इनकार कर रही थी। पुलिस वालों ने उसे बलपूर्वक खींचा। एक सिपाही ने लाठी से टखनों पर प्रहार किया। वह दर्द से तड़प उठी।

जब वह उठने से इनकार करने लगी तब पुलिस वाले उसके दोनों हाथ पकड़कर घसीटने लगे। उसके केश खुल गये थे। कपड़े अस्त-व्यस्त थे। पैरों में से चप्पलें निकल गयीं। उसकी टूटी देह के निशान रेत पर पड़ने लगे। कुछ देर बाद उसके मुंह से कोई शब्द सुनाई पड़ा। पुलिस वालों ने उसे मुक्त किया। वह लड़खड़ाती हुई चलने लगी। मुर्दाघर की पत्थर की सीढ़ियों की तरफ बढ़ी। वहां एक दिशा में उसने उंगली से इशारा किया। फिर वह खड़ी हो गयी। अचल पुलिस वाले उससे कुछ कहलवाने, उससे आज्ञा का पालन कराने की कोशिश में थे। वह इसका अनुसरण नहीं कर रही थी।

सब-इंस्पेक्टर ने उसके पेट में लाठी दे मारी। उसने पेट थामे असहनीय पीड़ा से सिर झुकाया। सब-इंस्पेक्टर ने उसकी गर्दन दबायी और केश पकड़कर खींचे, तो वह उकडू बैठ गयी। जमुना के किनारे हाथ से रेत कुरेदने लगी।

कुछ ही देर में एक छोटा-सा गड्ढा दिखाई दिया तो वह शिथिल हो गयी। सब-इंस्पेक्टर ने उसकी पीठ लाठी से सहलायी। वह फिर से मिट्टी खोदने लगा। दो-तीन मुट्ठी मिट्टी निकालते ही वह पीछे की ओर उलट गयी।

सब-इंस्पेक्टर ने उसे पकड़कर दूर हटाया। फिर उसने खुद गड्ढे की मिट्टी हटाने के बाद कोई चीज बाहर निकाली।

एक नवजात शिशु की लाश थी। जमुना की हिलोरें निश्चल हो गयीं। तब तक निश्चल खड़े बजरे चलने लगे।

तमाशाइयों की भीड़ छंटने लगी। वे नदी को छोड़ किनारे पर पहुंच रहे थे।

नदी के उस पार कारखाने के सायरन गूंज उठे।

पच्चीस

कुंजम्मा की दुर्गति के साथ नर्सों का होस्टल श्मशान-सा हो गया। शंका और व्याकुलता के कारण होस्टल-वासी मूक हो गये। पहले जहां हमेशा शोरगुल व चहल-पहल रहती थी, वहां अब वातावरण मानो हिमावृत-सा भारी-भारी हो गया।

मैट्रन हेलन सिंह होस्टल के एक छोर से दूसरे छोर तक टहलती, मंत्र-सी दुहराती रही, "बेलगाम जिंदगी का यही नतीजा होता है। सब इससे शिक्षा ग्रहण करें।"

बुजुर्ग नर्सों ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "कुछ भी हो, है बड़ी खुर्राट। नौ महीने तक राज खुलने नहीं दिया, छिपाये ही रखा इसने।"

हेलन सिंह ने निष्ठुरता से कहा, "अरे ! वह तो इससे भी बड़ी चीज को छुपायेगी।"

ये सब बातें सुनकर अकेली मेरी ही दुखी हुई।

रात को मेरी सो नहीं पा रही थी। उसने सोने की पूरी कोशिश तो की, मगर बगल में खाली पड़ी चारपाई को देख मेरी का जी सिसक उठता था। कुंजम्मा अब कहां होगी? थाने के फर्श पर या हवालात में? कुंजम्मा के कपड़े, गहने, चप्पल, प्रसाधन की चीजें——सब कमरे में बिखरे पड़े थे। उनसे मेरी मौन भाषा में बातें कर रही थीं, मानो कुंजम्मा से बात करती हो। उस पतित नारी को समझा ाा-मनाया——"तुम बच जाओगी। ईसा मसीह तुम्हें बचायेंगे, आदि।" मेरी दिन निकलने तक यही कहती रही थी।

दिन ज्यों-त्यों करके निकला तो मेरी ने स्नान करके कपड़े बदले और बाहर निकली। वह पुलिस सर्जन चटर्जी के क्वार्टर की तरफ गयी।

चटर्जी का क्वार्टर दूसरे क्वार्टरों से कुछ दूर और अकेला था। वहां पहले एक जीवशाला थी जहां फिजियोलाजी व फार्माकोलाजी की प्रयोगशालाओं के जीवों और जानवरों को पालते थे। मकान तो नये ढंग का था, फिर भी जीवशाला होने के कारण उस भवन का वातावरण कुछ जंगली-सा था। लोग उस मकान को पहले शैतान का किला मानते थे। जीव-जंतु नये भवन में चले गये, तो पुराना मकान खाली हो गया। चटर्जी ने कहा कि वे उसी पुराने मकान से संतुष्ट हैं तो लोगों के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। वैसे पुलिस सर्जन तो थे ही रूखे, शुष्क। परंतु इस कठोर-से दिखने वाले आदमी के भीतर जो सौंदर्य-चेतना छुपी थी वह शुरू में लोगों की समझ में नहीं आयी। उस क्वार्टर से जब संगीत की लहरें उठीं, तब लोग असलियत समझ पाये। आदमी अपनी राय कितनी जल्दी बदलते

हैं——जैसे कपड़े बदलते हैं।

क्वार्टर के नजदीक आते-आते मेरी को वायलिन की मंद ध्वनि सुनाई दी। वर्षों से पेंट न होने के कारण फाटक खरखराता हुआ खुला। किंतु उस खरखराहट में भी तालात्मकता थी। मेरी भीतर पहुंची।

बरामदे के सिमेंट वाले फर्श पर पालथी मारे चटर्जी वायलिन बजा रहे थे। वे यमुना-तीर के ध्यानस्थ साधुओं की तरह बैठे थे।

उनका मन पूर्णरूप से राग भोपाली में लीन था। आलाप पूरा करके ही उन्होंने सिर उठाया।

एक अजनबी लड़की को देखकर वे मुस्कुराये। वह मुस्कुराहट स्पष्ट तो नहीं थी। कुछ बाहर खिली, कुछ मुंह में भीतर ही समायी हुई।

वायलिन मेज पर रखकर चटर्जी ने कहा, "आओ, बैठो ! कहां से आ रही हो? क्या सीखना चाहती हो?"

उन्होंने एक ही सांस में सब कह डाला।

"मुझे, मुझे एक..." खड़ी खड़ी मेरी ने कहा। शब्द बाहर नहीं आ पा रहे थे।

एक पुरानी टूटी कुर्सी की ओर इशारा करके चटर्जी ने कहा, "बैठो।"

उसे अपने लिए अनुपयुक्त स्थान पर बैठने की विवशता महसूस हो रही थी। कुर्सी पर मुश्किल से बैठी।

एकाएक चटर्जी ने पूछा, "क्या शास्त्रीय संगीत सीखा है?"

मेरी कुछ परेशान हुई। जब उसने देखा कि बातचीत का सिलसिला ही दूसरी तरह से शुरू हो रहा है, तो घबराहट में उसका पसीना छूट गया।

"न सीखा हो, तो भी कोई बात नहीं। देखने पर पहले ऐसा लगा। उठने-बैठने और चलने में ताल-लय की कमी भी महसूस नहीं हुई।"

मेरी ने कुछ कहने के लिए ओंठ हिलाये। उसने माथे का पसीना पोंछ डाला।

"क्या वीणा सीखना चाहती हो? अच्छा रहेगा। वैसे तुम वीणा गोद में लिये बैठी रहोगी तो वह दृश्य भी सुंदर रहेगा," चटर्जी ने मेज पर ताल देते हुए कहा।

"क्षमा करें," धीरे से मेरी ने बात शुरू की, "मैं संगीत सीखने नहीं आयी। मैं एक और ही काम से आयी हूं।"

"अच्छा ! तो मैं अपने बड़े बेटे को भेजूंगा," चटर्जी बोले, "वही इस घर में अन्य सारे काम संभालता है। मुझे किसी काम की फुरसत नहीं रहती। मेरी घड़ी बड़ी तेज चलती है।"

चटर्जी भीतर जाने लगे तो मेरी ने कहा,"सर, मुझे आपसे कुछ बातें कहनी हैं।"

"तो मैं अभी आया," कहते हुए चटर्जी वायलिन भीतर ले गये। अब बरामदा सूना

था। भीतर से बाजों की स्वर-लहरी सुनाई दे रही थी। कम-से-कम तीन-चार कलाकार होंगे।

मेरी ने बरामदे का निरीक्षण किया। एक कोने में पुरानी मेज पर एक पिंजरा रखा था। उसके भीतर दो-चार गिनिपिग उछल-कूद रहे थे। इन्हें नये भवन में जाने वाले पुराने निवासियों की स्मृति के लिए छोड़ गये थे। दीवार पर तरह-तरह के बाजों की तसवीरें थीं। फर्श पर, एक कोने में फटा तबला पड़ा था। किसी का ध्यान उस पर नहीं गया।

एक युवक बरामदे तक आया और मेरी की ओर थोड़ी देर ध्यान से देखने के बाद मुस्कुराता हुआ वापस चला गया। वह कुछ नहीं बोला। उसका वह मंदहास मोहक था।

चटर्जी बाहर आये।

"क्षमा करना बेटी, मुझसे भूल हो गयी, " चटर्जी कहने लगे, "एक लड़की मेरे बेटे से प्रेम करती है और उसके पीछे लगी है। उसे संगीत का ककहरा तक मालूम नहीं। वही दुर्भाग्य की बात है। तुम्हें देखकर मैंने सोचा कि शायद तुम वही हो। वह आज सबेरे-सबेरे यह प्रार्थना करने आयी थी कि उन दोनों की शादी करा दी जाये। उसने चेतावनी दी है कि एक दिन सुप्रभात में वह यहां आ धमकेगी।"

चटर्जी देर तक जोर से हंसते रहे।

"खैर, तुम कहां से आ रही हो?"

मेरी ने चटर्जी को अपना परिचय दिया। उसने विस्तार से बताया कि कुंजम्मा पर कैसी-कैसी विपदाएं टूट पड़ी हैं और आगे उस पर दुर्भाग्य की कैसी मार पड़ सकती है। मेरी ने अपनी दुर्भाग्यपूर्ण कथा इस प्रार्थना के साथ पूरी की, ''आप मेरी कुंजम्मा को बचायें।''

सारी बातें ध्यान से सुनने के बाद चटर्जी कुर्सी से उठे। दोनों हथेलियां परस्पर रगड़कर उनसे अपना मुंह ढांपकर, थोड़ी देर बैठे रहे। कुछ सोचने के पश्चात वे दोनों हथेलियां फैलाये मेरी के आगे आकर खड़े हो गये।

"बेटी !... तुम अपने लिए यही संबोधन देने दो।...ये हाथ पवित्र हैं, बेटी ! ये बाजा बजाने वाले हाथ हैं। सचाई खोलने वाले हाथ हैं। आज तक इन हाथों ने कोई कलंकित कार्य नहीं किया है। धन-कुबेर मेरे द्वार पर आकर निराश लौटे हैं। मुझे मोटर, बंगला देने का प्रलोभन दिया गया है। पर क्या करूं? मैं अभी तक इनका गुलाम नहीं बन सका। किंतु मेरी बेटी, तुम्हारे आंसू व दुख उन प्रलोभनों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। मगर यह चटर्जी तुम्हारे अमूल्य अश्रुकणों का मूल्य देने में असमर्थ है। मुझे क्षमा कर दो, बेटी!''

थोड़ी देर रुककर उन्होंने कहा, "इस चटर्जी ने आदर्शवाद के लिए अपनी प्यारी संतानों के सपने तक चूर-चूर कर दिये हैं।"

आंखें पोंछते हुए मेरी उठी।

"सर, कुछ कर सकें तो..." चटर्जी ने उसे वाक्य पूरा नहीं करने दिया। वे फिर एक बडे निष्ठुर व्यक्ति की तरह बोले, "नदी-किनारे जन्मा वह बच्चा अगर एक बार भी रोया

हो तो तुम्हारी साथिन के हाथों में हथकड़ी पड़ेगी। बेशक ईश्वर भी तुम्हारी कुंजम्मा को बचा नहीं सकेगा, जब तक चटर्जी जिंदा रहे तब तक।"

मेरी चलने को उद्यत हुई।

"जाऊं, सर !"

"अच्छा !"

उसके जाने के बाद चटर्जी ने फिर वायलिन उठाया।

सबेरे-सबेरे सड़कों पर भीड़ कम थी। मेरी चलती रही। वह कहां जा रही थी? उसी को उसका पता नहीं था। मेरी तत्काल किसी निर्जन स्थान पर जी भर रोना चाहती थी। वह कार्डियोलाजी और मार्चरी को पारकर खाली भूभाग के भी आगे पत्थर की सीढ़ियों से उतरते हुए नदी-तट पर पहुंची।

नदी के रेतीले किनारे पर पिछले रोज इकट्ठा हुए लोगों के पदचिह्न पूर्णतः गायब नहीं हुए थे। एक मानव-शरीर को घसीटते हुए ले चलने के निशान और नवजात शिशु को निकालने का गड्ढा भी वैसे ही पड़े थे।

मेरी ने तट पर प्रकृति की प्रशंसा करने योग्य कोई दृश्य नहीं पाया। सूरज निकल रहा था। वह फीका-फीका था। अस्त होता चांद और किसी देश में था। थोड़ी दूर यह नदी में डा. कुमार नहा रहे थे। वे दोनों हाथ जोड़े प्रार्थना कर रहे थे। दो नंगे साधु सूर्य-नमस्कार कर रहे थे। चीखते हुए बजरे नदी में आगे बढ़ रहे थे। जानवरों और पक्षियों के शव नदी में बह रहे थे। कुछ तो किनारे तक आ गये थे।

कुंजम्मा इसी रेतीले तट पर कहीं पड़ी-पड़ी चिल्लायी थी। मेरी को लगा कि कुंजम्मा की चिल्लाहट नदी के दूसरे पार प्रतिध्वनित हो रही है। वह बड़ी देर तक किनारे बैठी रही। सूरज आसमान के ऊपर आ गया। नदी में किरणें प्रतिबिंबित हुईं, नदी-जल बिल्लौर-सा दमक उठा।

मेरी उठकर पत्थर की सीढ़ियां चढ़ीं। पुलिस वाले और असहज मृत्यु को प्राप्त लोगों के निराश बंधु-जन चीर-फाड़ के बाद लाशों को प्राप्त करने की प्रतीक्षा में खड़े हैं। पुलिस सर्जन चटर्जी बरामदे में दिखाई दिये। वे जोर से कह रहे थे, "वार्ड में इलाज के दौरान मरे इस युवक की चिकित्सा करने वाले डाक्टर कहां हैं?"

वह डाक्टर भागा हुआ आया।

"आइए, आइए, आपसे कुछ बातें पूछनी हैं।"

दोनों पोस्ट-मार्टम कक्ष में गये।

मेरी साड़ी के भीतर के पल्लू से केशों को ढंके खड़ी रही। तभी सब-इंस्पेक्टर शर्मा और दो पुलिस वाले उस तरफ आते दिखाई दिये। पुलिस वाले के हाथ में कपड़े में लिपटी और धागे से बंधी एक छोटी-सी गठरी है। वह नवजात शिशु की लाश है। पुलिस वाला

एक लालटेन ले जाने की-सी सहजता से उसे रस्सी से लटकाये ला रहा था। सब-इंस्पेक्टर शर्मा आज पहले से अधिक मस्त थे। वे सिगरेट फूंकते जा रहे थे।

शर्मा और सिपाही चटर्जी से मिलने की प्रतीक्षा में बरामदे में खड़े थे।

मेरी सांझ तक सोती रही। शांतिपूर्ण निद्रा। सुख-सुषुप्ति। डीप स्लीप।

जगी तो चौंक उठी। जल्दी से बाथरूम गयी। उसे खुद अचरज हुआ कि इतनी दारुण घटनाओं और दृश्यों की गवाह रहने के बाद वह कैसे सो सकी ! अकारण छुट्टी लेने के नाम पर मैट्रन आज जरूर डांटेगी।

गालियां उनके मुंह से ही सुन लेने के इरादे से मेरी कपड़े बदलकर हेलन सिंह के कमरे की तरफ गयी।

दरवाजा बंद था। तीन-चार बार दस्तक देने के बाद ही भीतर से आवाज आयी।

मेरी ने अंदर प्रवेश किया तो देखा कि मैट्रन बाथरूम में बेहोश-सी पड़ी है। उसकी आंखें अधखुली थीं। गालों में सुर्खी नहीं रही थी।

"मैट्रन ! क्या हुआ? क्या तबियत खराब है?" मेरी ने पूछा।

"नहीं, कुछ नहीं," शब्द कुछ फिसलते-से बाहर आये।

"मैट्रन ! क्या हुआ? क्या बुखार है?" मेरी ने मैट्रन के माथे पर और गले पर हाथ रखकर देखते हुए पूछा।

"नहीं, नहीं, कुछ नहीं," फिसलते शब्दों में हेलन सिंह ने कहा।

"मेरी, मुझे एक इंजेक्शन दो।"

"क्या? कौन-सा इंजेक्शन?" मेरी ने पूछा।

हेलन सिंह उठने लगी। पर उठ नहीं पा रही थी। उसने कमरे के कोने में मेज पर स्टील बर्तन की ओर इशारा किया।

मेरी ने वहां स्टील के बर्तन में गरम पानी में सिरिंज और सुइयां देखीं। उसके पास इंजेक्शन की दवा की कुछ शीशियां देखीं। मेरी दंग रह गयी——'पेथाडिन'।

"जल्दी तैयार करो !"

शब्द तो फिसल रहे थे, फिर भी वे आदेशात्मक शब्द थे।

तिवारी बाबू की मृत्यु के बाद मैट्रन हेलन सिंह एकदम शिथिल हो गयी थी। इसका कारण मेरी समझ नहीं सकी। पता नहीं, नष्ट हुई चीज वापस पाने या उसे भुलाने के लिए? किसलिए हेलन सिंह अब नशीली दवाओं की गुलाम हुई थी?

"जल्दी तैयार करो ! क्या ताक रही हो?" क्रुद्ध होकर हेलन सिंह बोली। उसने अधमुंदी आंखें पूरी खोलीं। आंखों के भीतर खून की नसें खिलीं। उसके होंठ सूख गये थे। उसने साइड टेबिल पर रखा गिलास का पानी एक घूंट में पी लिया।

जब मेरी पेथाडिन का सिरिंज हेलन सिंह की बांह में देने लगी तब उसने कलाई दिखायी। वह इंजेक्शन मांस में न लेकर सीधे रक्त की धमनियों में लेना चाहती थी। मौन होने पर भी यही आज्ञा थी उसकी। उसकी नीली धमनी में पेथाडिन चढ़ गया।

हेलन सिंह की आंखें बंद हुईं। होंठ नुकीले होते गये। नाक लाल हो गयी। हेलन सिंह कुछ क्षणों तक रति-मूर्च्छा के-से आनंद से प्रभावित होती रही।

फिर तो वह कुछ नहीं बोली। सिर्फ होंठ हिले। पानी मांगने के लिए।

मेरी एक डरावने सपने से जगने का-सा अनुभव करके तेजी से बाहर चली गयी। किसी तरह कमरे में पहुंचकर चादर ओढ़कर सो जाना चाहिए।

मेरी और कुंजम्मा ने उस कमरे में कितने ही दिन और रात जागते-जागते साथ बिताई थीं। अब उस कमरे के दरवाजे पर एक नयी युवती आ खड़ी थी। उसके हाथ में पेटी और बिस्तर थे।

युवती ने मेरी को अपने हाथ का लिफाफा दिया। मेरी ने लिफाफा खोलकर पढ़ा।

यह युवती नयी स्टाफ-नर्स थी। उसके कमरे में कुंजम्मा की जगह रहने के लिए आयी थी।

"नाम?"

"अलफोंसा।"

छब्बीस

ब्रिगेडियर ताजउद्दीन जनरल रांउड पर निकले हैं। वे कालेज के प्रिंसिपल, अस्पताल के सुपरिंटेंडेंट और मेडिसिन विभाग के अध्यक्ष हैं। मेडिसिन विभाग के अध्यक्ष होने के नाते, वे अधिकांश दिनों में रोगियों के निरीक्षणार्थ आते हैं।

नियमानुसार वे मेडिकल वार्ड में पहुंचे। वार्ड के अधिकतर कर्मचारी सुपरिंटेंडेंट के पीछे कतार में खड़े थे। उनका राउंड बड़ा शानदार होता था। वे बड़ी धूमधाम से स्वागत की प्रतीक्षा करते थे। एक सैनिक टुकड़ी की तरह वे आगे बढ़ते रहे।

सुपरिंटेंडेंट का निरीक्षण अस्पताल के कर्मचारियों के लिए हर रोज का सिर-दर्द था। वे छोटी गलती को भी माफ नहीं करते। कहीं एक भारी गलती हो जाती तो कोर्ट-मार्शल चलता।

मेडिकल वार्ड में ब्रिगेडियर ताजउद्दीन का भी अपना एक यूनिट है। यूनिट के सारे रोगियों का परीक्षण वे स्वयं करते हैं। मगर चिकित्सा नहीं करते। उसकी जिम्मेदारी यूनिट के सीनिसर प्रोफसरों की होती है। मगर ताजउद्दीन साहब अपने को सर्वज्ञ मानकर सवाल पूछते, टिप्पणी करते हैं। कभी-कभी केस-शीट लेकर किसी जरूरी या बेकार दवा का नाम पढ़कर हाउस-सर्जन से पूछते हैं, "यह दवा क्यों देते हो?"

हाउस-सर्जन स्पष्टीकरण देते हैं। स्पष्टीकरण चाहे समझें या न समझें, पर वे बताते हैं, "किसी भी रोगी को यों ही कोई दवा नहीं देनी चाहिए। जब तुम रोगी को दवा देते हो तो उसकी जरूरत समझाने की जिम्मेदारी भी तुम्हारी है।" कुछ देर बाद वे एक श्रेष्ठ उपदेश देते, "तुम्हें हर दवा को समझना चाहिए। अर्थात उसके साइड इफैक्ट्स के बारे में !"

वे जॉन बलदेव मिर्जा के बेड के पास पहुंचे। वह महीनों से उसी पर पड़ा था। उसके पास पहुंचते हैं तो ब्रिगेडियर ताजउद्दीन की आंखों में उपहास झलकने लगता है। क्षण-भर वे मिर्जा के बेड के पास खड़े होकर उसकी नाक व पेशाब की रबड़ नलियों की ओर इशारा करके कहेंगे——

"यह आदमी वे दोनों नलियां धारण किये यहां अनंतकाल तक पड़ा रहेगा। एक नली से दिया जाने वाला द्रव्य मूत्र बनेगा और दूसरी नली से बाहर निकल जायेगा।"

सुपरिंटेंडेंट हमेशा डा. ख्वाजा के प्रतिद्वंद्वी रहे हैं। वे ख्वाजा की आलोचना करने

लगे। उन्होंने पीछे चलते सहायक के कानों में धीरे से कहा, "डा. ख्वाजा गरजते हुए पढ़ाना ही जानते हैं। इलाज करना उन्हें नहीं आता।"

सहायक को पता था कि ब्रिगेडियर के शब्दों में सचाई नहीं, फिर भी उसने कहा, "आपने बिलकुल ठीक फरमाया।"

डा. ताजउद्दीन डा. ख्वाजा की हंसी उड़ाते थे तो उसका एक कारण भी था। उन्होंने जनरल मेडिसिन में एम.डी. उपाधि भी तो ली थी। परंतु उपाधि लेते ही मिलिटरी सेवा में भरती हुए। उन्हें फौजी अस्पताल में अनेक प्रकार के रोगियों की चिकित्सा का मौका नहीं मिलता था। वे ज़्यादा समय प्रशासन देखते थे। अस्पताल में ड्यूटी के बाद वे सीधे आफिसर्स क्लब में पहुंचते। वहां ब्रिज के खेल और व्हिस्की के मायावी संसार में काफी समय बिताते। इसलिए डाक्टरी की पुस्तकों से उनका संबंध छूट-सा गया। मगर वे सफल प्रशासक के रूप में प्रसिद्ध हुए।

वे डेपुटेशन पर मेडिकल कालेज के अध्यक्ष होकर आये। तब तक वे थ्योरी और प्रैक्टिकल दोनों भूल चुके थे। मेडिकल कालेज में प्रशिक्षण और अनुसंधान को सबसे पहला स्थान दिया जाता था। छात्रों की नजर में सम्मान पाने के लिए उन्हें ललित ढंग से सिखाने में निपुण अध्यापक होना जरूरी है। प्रत्येक छात्र की कुशलता को पहचानने की क्षमता ही किसी को आदर्श अध्यापक बनाती है। डा. ख्वाजा कालेज भर में उस विषय में सबका सम्मान पा चुके थे। अविवाहित ब्रिगेडियर ताजउद्दीन छात्रों के बीच में अध्यापक के रूप में प्रतिष्ठा नहीं पा सके थे। वे मेडिसिन के बुनियादी तत्व तक भूल चुके थे। अपनी कमजोरी को छिपाने की कोशिश करने के बावजूद कभी-कभी उनकी कलई खुलती। ब्रिगेडियर को उसका पता भी चलता।

परंतु वे अपनी कमजोरी को सत्ता के बल पर छिपाने की कोशिश करते थे। वे जरूरी और गैर-जरूरी दोनों प्रकार से हुकूमत चलाते। इसीलिए प्रिंसिपल होने के नाते उन्होंने अस्पताल के सुपरिंटेंडेंट और मेडिकल विभाग के निदेशक, दोनों पद अपने पास ही रख लिये। तब वे किसी भी क्षेत्र में अपनी शान दिखा सकते थे।

यदि कोई ब्रिगेडियर ताजउद्दीन से साधारण बातचीत करे, तो यही लगेगा कि हर बात पर वे हामी भरेंगे। उनकी प्रतिक्रिया बड़ी सरल दिखती है। किंतु कोई मदद या रियायत मांगते समय, पता चलेगा कि वे रियायत नहीं करते।

कालेज हो या अस्पताल, या मेडिसिन विभाग——कहीं भी, कोई भी समस्या उठने पर, ब्रिगेडियर उसके समाधान के लिए कायदे-कानून का सहारा लेते हैं। वे मानवीय मूल्य या मित्रता को कोई महत्व नहीं देते। ब्रिगेडियर मेडिसिन विभाग की बातों में जब कभी अनावश्यक दखल देते तब डा. ख्वाजा उसमें आपत्ति उठाते थे। डा. ख्वाजा उनकी आलोचना करते हुए कहते, "फौजी है,...हेड गुमाश्ता है।"

यही कारण है कि विभाग के सबसे कुशल डाक्टर ख्वाजा से सुपरिंटेंडेंट का छत्तीस का नाता रहा।

किंतु उस दिन एक चमत्कार हो गया। डा. ख्वाजा की आलोचना करते हुए सुपरिंटेंडेंट वार्ड से चले गये। करीब एक घंटा बीता होगा। एकाएक जॉन बलदेव मिर्जा होश में आया। वह नवजात शिशु जैसा था। अचरज से चारों तरफ देख रहा था। चारों तरफ के बेड पर नये लोग थे। पेट के दर्द के मारे हमेशा चिल्लाते रोगी कहां गया? चुपचाप बीच-बीच से तीखी दृष्टि से देखता और शेष समय पढ़ता रहने वाला दाढ़ी वाला युवक कहां है? रोज फूलों की चंगेरी और संतरे की टोकरी लेकर उस युवक से मिलने आने वाली खूबसूरत लड़की कहां गयी? प्रभात से प्रदोष तक उसांस भरने वाला दमे का रोगी कहां है? उनके बेडों पर और लोगों ने कब्जा किया हुआ है। पिछली रात उसके सोते समय, सब अपनी-अपनी जगह थे।

वार्ड-बाय ठेले में दोपहर का खाना लेकर आया। अजीब-सा लगता है। क्या वह दोपहर तक सो गया? उठने लगा। तभी मिर्जा को याद आया कि उसके शरीर का एक हिस्सा लकवे के कारण बेकार हो गया है। सक्रिय हाथ ऊपर उठाकर चेहरा संवारा। तभी पता चला कि नाक के भीतर रबड़ नली लगी है। वह नली माथे पर प्लास्टर से चिपका रखी है। लेटे-लेटे उसने नाक में लगाई नली हटानी शुरू की।

ड्यूटी-रूम की सिस्टर के आते-आते वह रायल्स ट्यूब बाहर निकाल चुका था।

सिस्टर को देखने पर मिर्जा ने मुस्कुराते हुए कुछ कहना चाहा। उसे यही जानना था कि घड़ी में क्या बजा है? मगर शब्द निकल नहीं पा रहे थे।

सिस्टर आश्चर्य और आनंद से कुछ देर सन्न रह गयी।

“हूय...!” कहती हुई सिस्टर ड्यूटी-रूम की ओर दौड़ पड़ी। उसने हाउस-सर्जन, सीनियर रेजिडेंट और स्टाफ नर्स से ऊंची आवाज में कहा कि जॉन बलदेव मिर्जा होश में आ गया है। जो भी सुनता वह दूसरों को भी बताता। कुछ ही क्षणों में सब मिर्जा के बेड के पास पहुंच गये।

वार्ड में एक मेले का-सा दृश्य हो गया। कितने ही दिनों से बेहोश पड़ा रोगी होश में आया है। उसके सक्रिय हाथ-पांव को अधिक ताकत मिली है।

मेडिको और अन्य डाक्टर वार्ड में पहुंचे। अगर कोई दूसरी जगह होती तो मेडिको छात्र नाच उठते। पर उन सबके दिल खुशी से नाच रहे थे। देवदास और लक्ष्मी वार्ड में सबका मुंह मीठा करा रहे थे।

तब तक डा. ख्वाजा वार्ड में पहुंच गये। वे अपने निजी कमरे में कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। खुशी की खबर सुनकर वे पुस्तक हाथ में लिये ही दौड़े आये। उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। डा. ख्वाजा के लिए जॉन बलदेव मिर्जा का रोग एक चुनौती था। उसमें

स्वाभिमान और आत्मश्लाघा का अंश शामिल था।

फूली सांस थमने के बाद डा. ख्वाजा ने पूछा, "बाबा, कैसे हैं? आराम से हैं न?"

जॉन बलदेव मिर्जा सप्रयास हंसा। वह बड़ी मंद हंसी थी। फिर भी ख्वाजा को लगा कि सारा संसार जोर से हंस रहा है। जिस नाव और नाव के मुसाफिर को समंदर में डूबा समझा था, वे दोनों अचानक जिंदा बचकर किनारे लौटे हैं। डा. ख्वाजा ने चारों तरफ खड़े लोगों से कहा, "मुझे भी मिठाई दो।"

लक्ष्मी ने डा. ख्वाजा की हथेली में चाकलेट रखा। डा. ख्वाजा ने वह चाकलेट जॉन बलदेव मिर्जा की तरफ बढ़ाया। मिर्जा ने बायां हाथ बढाकर उसे ले लिया। वह चाकलेट का ऊपरी कागज हटाने के लिए दायां हाथ उठाने की कोशिश कर रहा था। उसमें असफल हुआ तो वह उदास हो गया तब डा. ख्वाजा ने खुद चाकलेट खोलकर मिर्जा के मुंह में डाल दिया।

मिर्जा उसे बड़ी मुश्किल से बच्चे की तरह चूसने लगा। जिस रात वह बेहोश हुआ था उस रात भी चाकलेट से बात शुरू हुई थी। उस दिन उसने चाकलेट टोकरी में फेंककर अल्मुनियम का रैपर चबाना शुरू कर दिया था। अब भी वह ऐसा ही करतब दिखाना चाहता था। चाकलेट चबाते समय उसकी आंखों में जो शरारती हंसी झलकी, वह यही बता रही थी।

जॉन बलदेव मिर्जा आज बड़ा चुस्त था। उसने इशारे से बताया कि उठकर तकिये के सहारे लेटना चाहता है। सिस्टर और नर्स ने उसे दो तकियों के सहारे बेड पर लिटा दिया। इतने दिनों से बेहोश रहने के बावजूद उसे एक बेड सोर (शरीर का घाव) तक नहीं हुआ था। उसकी बड़ी अच्छी सेवा की जा रही थी।

मिर्जा को उस दिन जोर की भूख लगी। जिंदगी में इतनी भूख शायद पहली बार लग रही थी। उसने पहले एक गिलास दूध थोड़ा-थोड़ा करके पी डाला। पहले की तरह सुड़ककर नहीं पी सकता था। बीच-बीच में होंठों के छोर से दूध नीचे बह रहा था। मुश्किल के बावजूद वह मानो खाने-पीने के लिए कमर कसे हुए था। वह बारी-बारी से दूध, हार्लिक्स, संतरे, सेब और खिचड़ी खाता रहा। एक भी क्षण नष्ट किये बिना वह चबाता-पीता रहा।

दूसरे दिन सबेरे आया मिर्जा को एक व्हीलचेयर में बिठाकर बाहर ले गयी। सैंट्रल आउटडोर के सामने विशाल बगीचे से होकर व्हीलचेयर बढ़ने लगी।

अन्य दो रोगी भी व्हीलचेयर पर वहां आये थे। वे आंखें खोले, नाक फुलाकर मानो पूरे बगीचे को आत्मसात कर रहे थे। वे आया से मुंह बंद किये बिना बातें कर रहे थे। इसे देख मिर्जा को बड़ा दुख हुआ। उसे एक फूल पाने की चाह हुई। बायां हाथ उठाकर उसने खिले गुलाबों की तरफ इशारा किया। आया गाड़ी को स्टैंड पर रोककर हरी घास को हटाते हुए बगीचे में एक स्वस्थ पौधे से बड़ा-सा गुलाब तोड़ लायी। फूल पूरे यौवन

पर था। मिर्जा ने उस लाल और गीले फूल की पंखुड़ियों पर अपने होंठ दबाये। बुझी होने पर भी यादें बचपन की तरफ फिसल गयीं। उसकी आंखों में कुछ खो जाने के अहसास का अनुभव हुआ।

इमारतों के ऊपर सूरज की किरणें पड़ रही थीं। वृक्ष की ऊंची डालियों पर प्रकाश छितराया था। उसने कभी सैंट्रल आउटडोर के सामने इतनी शांति नहीं देखी थी। मगर वह कभी प्रभात के समय उधर आया भी नहीं था।

छह बजे का सायरन गूंज उठा। आया गाड़ी लिये वार्ड की तरफ चल दी।

कई दिनों बाद जॉन बलदेव मिर्जा को ईसा मसीह की याद आयी। उसे बाइबिल खोलकर उसकी सूक्तियां दुहराने की इच्छा हुई।

आया और स्टाफ नर्सों ने उसे बिस्तर पर दीवार की तरफ सिर टेके लिटाया तो उसने बाएं हाथ से माथे और छाती पर सलीब का निशान बनाया। उसने बड़ी लाचारी की नजर से आया की तरफ देखा। आया इसका मतलब समझ गयी। जॉन बलदेव मिर्जा की बाइबिल ड्यूटी-रूम की अलमारी में सुरक्षित रखी है।

आया बाइबिल लेकर उसके पास आयी। वह बहुत दिनों के बाद बाइबिल देख रहा था। वह अपनी खुशी किस तरह जाहिर करे? उसकी सुस्त पेशियों के हर कोश में मुक्ति उमड़ आयी।

साइड स्टूल खींचकर आया उस पर बैठ गयी और बाइबिल खोल ली। गला साफ करके वह आंखों पर चश्मा ठीक रखकर बाइबिल पढ़ने लगी——

परमेश्वर ही हमारा अभयकेंद्र एवं शक्ति है,
विपदा में उचित सहायता है।
अतएव चाहे भूमंडल ही विचलित हो !
चाहे पर्वतगण टूटकर सागर में डूबें!
समुद्रजल चाहे उफन उठे !
उसके उत्पात से चाहे पर्वत कंपित हो उठें!
फिर भी हम भयभीत नहीं होंगे।
एक नदी है, उसके झरने प्रभुनगरी को
अत्युन्नत के पवित्र निवास को
आमोदपूर्ण बनाते हैं।
उस नगर के मध्य में
प्रभु है,
वह विचलित नहीं हो जायेगा।
प्रभात में प्रभु उसकी सहायता करेंगे।

जनता क्रोध कर उठती है,
मुल्कों के पांव लड़खड़ाते हैं,
वह अपना आदेश सुनाता है
पृथ्वी गल जाती है।
सेनाओं का सिरजनहार
हमारे साथ है।
याकूब देवता ही
हमारा आश्रय है।
आओ ! सिरजनहार का कार्य देखो !
देखो ! उसने कैसे पृथ्वी को
पराजित कर दिया है !
पृथ्वी की सीमांत रेखाओं तक
वह युद्धों को समाप्त करता है।
वह धनुष को तोड़ता है,
भाले को चूर-चूर करता है,
रथों को भून डालता है।
"शांत हो जाओ, पहचान लो कि
मैं ही प्रभु हूं।
जन के बीच मैं उन्नत हूं।
धरती पर मैं समुन्नत हूं।"
सेनाओं का सिरजनहार
हमारे साथ है,
याकूब देवता,
हमारा आश्रय है।

बाइबिल बंद करके आया ने मिर्जा की तरफ देखा। लेटे-लेटे वह जाने क्या सोचता हुआ अर्थपूर्ण नजरों से चारों ओर देख रहा था। वह क्या सोच रहा होगा? शायद...कुछ भी हो, मिर्जा का चिंतन गहरा था।

सत्ताइस

डा. ख्वाजा का एक दिन शुरू हो रहा है। ब्रह्म मुहूर्त में वे जागते हैं। उन्हें जगाने के लिए अन्य लोगों की सहायता या अलार्म की जरूरत नहीं पड़ती। ऐन वक्त पर वे अपने आप जगते हैं। नींद के बीच में एकाएक चौंककर या स्वप्न के बीच में नहीं उठते। वे एक फूल के क्रमशः विकास की तरह, धीरे-धीरे बिस्तर छोड़ते हैं।

आज का दिन डा. ख्वाजा के लिए बड़ी ही व्यस्तता का है। एम.बी.बी.एस. वालों के लिए एक बेड साइड मेडिसिन क्लास, एम.डी.वालों के लिए एक डिमांस्ट्रेशन क्लास, दोपहर बाद सेमिनार, रात को भारतीय मेडिकल एसोसिएशन के राष्ट्रीय सम्मेलन में मुख्य भाषण ! स्नान के बाद डा. ख्वाजा रसोईघर में पहुंचे। मुट्ठी भर अंगूर मिक्सी में डाले और ठंडा पानी मिलाकर जूस तैयार किया। रोज सबेरे वे गिलास भर फलों का रस पीते हैं। टमाटर, संतरा, अनन्नास या अंगूर——कोई भी फल। इसमें वे चीनी या नमक नहीं मिलाते। वे चाय या काफी पीने के आदी नहीं। भोजन का वे जरा भी शौक नहीं रखते। ब्रेड के दो-तीन स्लाइस, थोड़ा-सा मक्खन और ठंडा पानी या मुट्ठी भर कार्न फ्लेक्स और गिलास भर दूध——इतना ही नाश्ते में लेते हैं। रात को एक प्याला दही—जो खट्टा न हो, और एकाध फल, बस। वे इससे अधिक कुछ नहीं खाते। डा. ख्वाजा पूरे शाकाहारी हैं, वे अंडा तक नहीं छूते। बहुत कम भोजन करने के बावजूद उनमें चुस्ती की कमी नहीं रही।

डा. ख्वाजा ने अपने अध्ययन कक्ष में प्रवेश किया। वे किताबें मानो निगल जाते हैं। जिस तेजी से वे पृष्ठ पलटते, उसे देख दर्शक दंग रह जाते। वे जरूरी नोट्स भी साथ-साथ लिख लेते। रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर खड़े यात्री की-सी जल्दी में पढ़ते व नोट बनाते। इतने कम समय में इतना अधिक पढ़ने और याद करने वाले दूसरे आदमी मुश्किल से मिल सकेंगे।

भारतीय मेडिकल एसोसिएशन में प्रस्तुत करने के लिए आलेख तैयार हो गया तो डा. ख्वाजा तनकर बैठ गये। उन्हें एक जेनरल विषय मिला था—'भारतीय जनता और भोजन का पौष्टिक मूल्य।' वे भारत में भोजन की कमी से होने वाले दोषों पर भाषण देने जा रहे थे। उन्होंने जब पड़ोसी के रसोईघर के सामने वाली अपनी खिड़की खोली तो अत्यधिक मात्रा में पौष्टिक भोजन तैयार करने वाले रसोईघर से सुगंध उठने लगी। वह उन्हीं के विभाग के द्वितीय प्रोफेसर संतुकुमार का घर था।

दिन चढ़ रहा था। प्रोफेसरों के क्वार्टरों में चहल-पहल शुरू हो रही थी।

डा. ख्वाजा दरवाजा खोलकर बगीचे में पहुंचे। वे रोज बगीचे में घंटा भर गोड़ना, निराना, पेड़-पौधों को काटना-छीटना, खाद डालना, सींचना खुद करते हुए गुजारते थे।

यह बगीचा उनका परिवार है। उसके घास-पौधे, फूल-पेड़——सब उनके परिवार के सदस्य हैं। वे पौधों की जबान समझते हैं। उन्होंने अपनी आंखों से फूलों का प्रसव देखा था। ख्वाजा ने वृक्षों की गंध का विवरण पुस्तक में अंकित किया है। वे रोज इन स्थावर जंगम वस्तुओं के ज्वार-भाटे में स्नान करते थे।

बगीचे के सामने से सड़क निकलती है। उस सड़क की दूसरी तरफ श्री आचारी रहते हैं। उनके बंगले पर रोगी कालिंग बेल बजा रहे हैं। डा. आचारी को वेतन का पचास प्रतिशत प्राइवेट प्रैक्टिस न करने के भत्ते के रूप में मिलता था। कानूनन वे घर पर रोगियों की परीक्षा नहीं कर सकते थे। फिर भी वे ऐसा करते थे। वे वर्जित फल खाते थे। ऐसा फल लोगों को विशेष मधुर लगता है।

डा. ख्वाजा के ब ीचे के बगल वाले लॉन में पांच-छह आदमी दिखाई दे रहे थे——डा. संतुकुमार और उनके सु पुत्र। उनके अहाते में बगीचा नहीं था। बगीचे की जगह उन्होंने छोटा-सा अखाड़ा बना रखा था। उसमें पास-पास स्थापित दो लोहे के बार, एकल बार, दो तीन मुद्गर और लोहे का एक बड़ा गोला था। छोटा-सा कुरुक्षेत्र मानिए। संतुकुमार के सुपुत्र सर्कस के खिलाड़ियों की तरह उछलने, कूदने, मुद्गर चलाने, पलटी मारने लगे। बीच-बीच में वे "हिप हिप" ध्वनि निकालते।

मोटे-ताजे संतुकुमार सिर्फ जांघिया पहने हुए थे। वे जमीन पर पेट के बल लेटे हुए हाथ-पांव की उंगलियों पर खड़े रहने के प्रयास में लगे थे। उसमें सफलता पाने पर वे अगला कठिन करतब आजमाते हैं। संतुकुमार हमेशा एक असंभव बात को संभव करना अपनी मंजिल मानते है।

पौधों के झुरमुट में डा. ख्वाजा का सिर दिखाई दिया, तो संतुकुमार ने आवाज दी—— "गुड मार्निंग! ख्वाजा, क्या कर रहे हो?"

ख्वाजा बगीचे के छोर पर आये।

संतुकुमार हांफ रहे थे। उनके सुपुत्र कसरत करते जा रहे थे। संतुकुमार के छह बच्चे थे। सभी पुत्र। वे यह दैनिक कसरत इसलिए करते-कराते थे कि पुत्र भी खा-पीकर उनके समान मोटे-ताजे न हो जाएं।

हांफते-हांफते संतुकुमार ने डा. ख्वाजा से कहा, "तुम्हें भी कोई कसरत करनी चाहिए।" व्यंग्यात्मक हंसी से ख्वाजा बोले, "अरे, उसके लिए मैं कोई खास भोजन नहीं करता। न मैं मोटा हूं। तुम जितनी तरह की कसरत करते हो उनमें से एक भी करूं तो मेरी मौत निश्चित है।"

गरदन का पसीना पोंछते हुए संतुकुमार बोले, "तुम्हारी राय ठीक नहीं। खाना खूब खाना। जो भी मिले खाना। फिर कसरत करके पचाना; फिर से खाना, फिर से पचाना——एक विषम चक्र होता है।"

वे एक बढ़िया लतीफा सुनाने की खुशी से हंस पड़े। फिर कहा, "स्वादिष्ट वस्तुएं खाने से बढ़कर आनंद की और कोई बात दुनिया भर में नहीं है। उसके लिए यों दो पलटी मारना काफी है।''

ख्वाजा ने पूछा, "तुम इतनी पलटी मारते हो, फिर भी तुम्हारा मुटापा जरा भी घटा नहीं !"

संतुकुमार हंसे, "निकट भविष्य में सब सुरक्षित है।"

"खैर, अगला करतब क्या है? मैं भी देखूं," ख्वाजा ने कहा।

"आज का प्रोग्राम समाप्त ! आगे हाट-कोल्ड बाथ होगा।"

डा. ख्वाजा ने पूछा, "यह हाट-कोल्ड बाथ क्या चीज है?

संतुकुमार बोले, "सुनिए। पहले ठंडे पानी का शावर खोलना। जब शरीर ठंड से ठिठुरने लगे तक एकाएक गरम पानी का शावर खोलना। जब शरीर बहुत गरम लगे तव फिर से ठंडे पानी का शावर खोलना। यों बारी-बारी करके आखिर गरम पानी से स्नान समाप्त करना।"

"क्या किसी एक पानी से स्नान करना काफी नहीं? गरम-ठंडे पानी में बारी-बारी से नहाने का मतलब?"

संतुकुमार बोले, "तुम्हें तो फिजियालाजी ही शायद मालूम नहीं। ठंडे पानी में नहाते समय शरीर के करोड़ों छिद्र बंद होते हैं। एकाएक गरम पानी डालते समय वे रोम खुलते हैं। फिर ठंडा पानी पड़ने पर वे वापस अपने स्थान पर आ जाते हैं।"

ख्वाजा ने क्षण-भर सोचकर कहा, "आप बेशक महापुरुष हैं।"

"क्यों? सो कैसे?" संतुकुमार ने पूछा।

"आप अपने शरीर के छिद्रों को अपनी इच्छानुसार खोलने और बंद करने में समर्थ हैं। यही बात महत्व की है।"

दोनों हंस पड़े।

डा. ख्वाजा बागबानी के बाद कमरे में आ गये। वह प्रोफेसर का विशाल मकान था। वे खुद सारे कमरों की सफाई करते, स्वच्छ रखते। पुस्तकें रखने की अलमारियां भी श्रद्धापूर्वक साफ करते। डा. ख्वाजा का आग्रह था कि पुस्तक को कोई रामचिरैया या कीड़ा न खाये। पुस्तकों का बड़ा भंडार ही उनकी कमाई रहा है। ग्रंथ ही हैं उनकी विरासत——शास्त्र व साहित्य। दिन में वे वैज्ञानिक ग्रंथ पढ़ते, तो रात्रि की घड़ियों में साहित्य का अध्ययन करते——साहित्यिक ग्रंथों में बिखरी पड़ी अनेक सामाजिक और रोमांचक कथाएं।

वे हजारों थ्रिलर पढ़ चुके हैं। उससे उन्हें घटनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया निश्चित करने तथा किसी बात पर एकाएक निर्णय लेने में सहायता मिलती है। संसार का बहुत सारा सामान्य ज्ञान उनके अध्ययन में मदद देता है। इस ग्रंथ-परायण ने ही डा. ख्वाजा को श्रेष्ठ अध्यापक का पद दिलाया है। पुस्तकों ने ही उन्हें एक प्रसिद्ध वक्ता बनाया है। वे पुस्तकों को प्यार करते हैं, इनकी पूजा करते हैं और फूल की तरह सावधानी से संभालकर रखते हैं।

डा. ख्वाजा अलमारियां बंद करके भक्ति व श्रद्धा से उन्हें और एक बार पलटकर देख कमरे से बाहर निकले। बाहर से ताला लगाया और गैरेज से अपना स्कूटर लेकर सड़क पर आ गये। स्कूटर स्टार्ट करने के पहले उन्होंने अपने सूने पड़े मकान की तरफ फिर एक बार देखा। उस घर पर पहरा देने के लिए एक कुत्ता तक नहीं था। उस समय उनकी मानसिक स्थिति कैसी थी, कौन जाने? वे कालेज की तरफ चल पड़े।

वार्ड में वे राउंड्स के लिए चले तो जॉन बलदेव मिर्जा सुस्त-सा दिखाई दिया। कल चुस्त रोगी मिर्जा का क्या हुआ? कै और पेट का दर्द?

"आओ ! आओ !" उन्होंने मेडिको छात्रों को बुलाया। लक्ष्मी और देवदास सहित पूरा दल वार्ड के एक कोने से दौड़ा आया। वे उस समय आये रोगी (बवासीर रोगी) के चारों ओर इकट्ठे होकर उसके रोग का इतिहास जानने में लगे थे।

"हम लोग आज एक नये विषय पर चर्चा करेंगे। कई बार इस पर बात कर चुके हैं—– पेपटिक अल्सर ! तो भी जॉन बलदेव के अल्सर का विशेष महत्व है। यहां ऐसी स्थिति है, जैसी कि पागल बंदर को शराब पिलाने पर होती है।"

जान बलदेव मिर्जा ने अपने सक्रिय बाएं हाथ से पेट को कसकर पकड़ लिया है। होश आने पर दो तीन-दिन वह बड़े लालच से खाता-पीता था। मिर्जा के केस में गड़बड़ी का कारण बना है अमित भोजन। जितना खाया, सब कै में जा रहा है।

डा. ख्वाजा ने कहा, "सिस्टर, इसे पीने के लिए और लीक्विड्स देना। कै करे तो करे। पीते, कै करते-करते एक स्थिति आयेगी कि कै कर नहीं पायेगा। तभी ड्रिप देना। खैर, इसकी टट्टी का रंग क्या है?"

क्षमायाचना में सिस्टर ने कहा, "सारी सर, मैं वह देखना भूल गयी।"

"कोई बात नहीं," डाक्टर ने छात्रों की तरफ देखते हुए कहा, "यहां दूसरे का मल देखना भूल गये हैं। मगर आदमी अपने मल का रंग ही नहीं देखता। अगर आदमी में अपने मल का रंग देखने की आदत होती तो इस विश्व में पेट के कितने ही रोग न होते।"

डा. ख्वाजा की आंखों में नयी चमक थी। उन्होंने क्षण भर गंभीरता से सोचा।

देवदास को विशेष उत्साह अनुभव हुआ। डाक्टर साहब कोई गंभीर बात सिखाने वाले हैं। पढ़ाते समय अचानक उनकी शून्य दृष्टि, नहीं तो उन आंखों में अनुभव होती

कौंध उसका संकेत है।

वही हुआ। डा. ख्वाजा कहने लगे, "बिल्ली को पेट का दर्द बहुत कम हुआ करता है। दर्द के पहले उसका पता बिल्ली को लग जाता है। वह तुरंत खास तरह की हरी घास खोजकर खा लेती है। आप लोगों ने देखा होगा कि बिल्ली बीच-बीच में घास में टटोलते हुए कुछ सूंघती चलती है। वह घास की खोज है। बिल्ली अपनी दवा का पता स्वयं कर लेती है। आश्चर्य होता है न कि रोग का पता बिल्ली को कैसे लगता है? मगर इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं। बिल्ली बार-बार टट्टी जाते हुए पीछे मुड़कर अपनी टट्टी को देखती है। यह देखना यों ही नहीं होता। बिल्ली हर बार देखती है कि उसके मल का रंग कैसा है। बिल्ली अपने मल के रंग में फर्क देखकर अपने उदररोग का पता कर लेती है। परंतु परिणाम-प्रक्रिया में मानव की यह कुशलता उसके हाथ से खो गयी।

"अपनी व्यस्त जीवनयात्रा में अपने मल का रंग देखने की फुरसत आदमी को नहीं होती। किसी तरह विसर्जन करना है। उसके बाद उसे अपना शरीर सुरक्षित रखना है।"

सारे छात्र एक साथ हंस पड़े।

कक्षा के बाद मेडिको एक साथ डा. ख्वाजा के पास आये। आज कालेज स्टेडियम में इंटर-यूनिवर्सिटी हाकी प्रतियोगिता चल रही थी। मेडिको वह खेल देखना चाहते थे। डा. ख्वाजा स्पोर्ट्स कौंसिल के उपाध्यक्ष थे। अध्यक्ष थे ब्रिगेडियर ताजउद्दीन।

"अच्छा, तो अभी जाओ न ! अगर पहले कहते तो क्लास लिये बिना ही छोड़ देता।"

समस्या और थी। दोपहर के बाद ब्रिगेडियर की एक थ्योरी की क्लास थी। यह महीने में एक बार ही होती थी। वे बड़े ठाठ-बाट से पढ़ाने आते थे। पहले ट्यूटर आते। फिर लेक्चररों का आगमन होता। दीवार पर चार्ट, नक्शे, एक्स-रे फिल्में, एक्स-रे लॉबी आदि भी लाते। कभी-कभी रोगियों को भी हाजिर करते। इतनी तैयारी के बाद ब्रिगेडियर दो लेडी रेजिडेंट डाक्टरों की संगत में प्रवेश करते। अटेंडेंट कई मोटे-मोटे ग्रंथ भी लाते। पहले हाजिरी ली जाती। हर छात्र को उठकर हाजिरी देनी होती है। ब्रिगेडियर हर छात्र पर ध्यान से नजर डालते हैं। बीच-बीच में कुछ सवाल पूछते हैं। इसी में आधा घंटा बीत जाता है। बचे हुए क्षणों में वे कुछ बकवास सुनाते हैं। बीच में वे छात्रों को डांटना भी नहीं भूलते।

ऐसा भाषण छूट सकता था। इस नुकसान का किसी को अफसोस नहीं था। मगर ब्रिगेडियर से छुट्टी मांगने की हिम्मत छात्रों में नहीं थी। बिल्ली को घंटी कौन बांधे?

ख्वाजा बोले, "अच्छा ! अच्छा ! मैं उनको समझाऊंगा। तुम लोग स्टेडियम जाकर खेल देख लो।"

"सर!" देवदास अब भी झिझक रहा था। लक्ष्मी और अन्य छात्र उसके पीछे थे। "खेल देखते समय भूख लगेगी, सर!"

"ओह ! तो क्या सवाल यही है?" डा. ख्वाजा ने अपना पर्स खोलकर उसमें से रुपये निकालकर छात्रों को दिये।

देवदास ने कहा, "यह बहुत ज्यादा हैं।"

"कोई बात नहीं, जो भी चाहिए खरीदकर खा लेना।"

डा. ख्वाजा ब्रीफकेस लिये चल दिये।

उस दिन शाम को एक मजेदार घटना हुई। ब्रिगेडियर अपने दल-बल सहित क्लास लेने आये तो कक्षा सूनी पड़ी थी। उन्हें बड़ा गुस्सा आया। उनका ज्ञान उनके मस्तिष्क में गाढ़ा बन जाता है।

दूसरे दिन ब्रिगेडियर ने मेडिको छात्रों को एक-एक कर अपने केबिन में बुलवाया, उनको डांटा और जुर्माना लगाया।

डा. ख्वाजा मेडिको छात्रों की तरफ से ब्रिगेडियर के सामने हाजिर हुए। उन्होंने कहा, "भूल मेरी है और आपसे कहना भूल जाने के अपराध के लिए क्षमा-याचना करता हूं।"

तब भी ब्रिगेडियर का क्रोध ठंडा नहीं हुआ। उन्होंने कहा, "डाक्टर ख्वाजा, आप कुशल प्राध्यापक हो सकते हैं। बड़े विद्वान भी। मगर, उसके नाम पर दूसरों का उपहास न कीजिए। अध्यापन में कम कुशल अध्यापक भी हो सकते हैं। उन्हें भी जीना है न? जीने दीजिए उन्हें।"

"सर, मैंने ऐसी कोई बात नहीं सोची। सोचा था, जब आप विभाग की मीटिंग में आयेंगे तब बता दूंगा। मीटिंग में आप आये ही नहीं," ख्वाजा बोले।

"मगर मैं तो अपने कमरे में ही था। एक पर्ची चपरासी के जरिये भेजना काफी था।"

"माफ करें ब्रिगेडियर, व्यस्तता के बीच मैं भूल गया।"

अपने मोटे चश्मे से घूरते हुए ब्रिगेडियर ने कहा, "कैसी व्यस्तता? आपने यह जान-बूझकर किया था।" ख्वाजा का चेहरा लाल हो चला। भावावेश में उन्होंने फिर से क्षमायाचना के स्वर में कहा, "नहीं सर, मैंने ऐसा कभी नहीं सोचा था। सोचूंगा भी नहीं।"

ब्रिगेडियर गोली दागने की तरह गरजे, "सफेद झूठ।"

डा. ख्वाजा का चेहरा कहीं अधिक लाल हो गया। उनके शब्द लड़खड़ा रहे थे।

वे गरज उठे, "अगर यही समझते हों तो वही सही, मैंने जान-बूझकर किया है।"

डा. ख्वाजा ने ब्रिगेडियर की तरफ इस तरह देखा कि अगर ऐसा ही हुआ है तो अब देखता हूं, क्या करते हो। उसके बाद वे तेजी से बाहर निकल गये।

अठाइस

मानव-शरीर के अंगों में सबसे प्रधान कौन-सा है? मस्तिष्क, हृदय, जिगर आदि प्राणावयव? हां, जरूर ये ऊर्जापूर्ण अंग ही प्रधान हैं। मगर आदमी की हथेली?

ईश्वर ने हथेली देकर मनुष्य पर बड़ी कृपा की है। हथेली ऐसा अंग है जिसमें अपनी इच्छानुसार हिलाने लायक पांच उंगलियां हैं। अगर हथेली न होती तो मनुष्य का पूर्वज वानर पेड़ की डाली को पकड़कर कैसे झूमता? वह कहानी के व्यापारी को टोपियां चुराकर एक-एक करके सिर पर कैसे रख पाता? उन्हें फिर से खींचकर नीचे कैसे फेंक पाता?

मस्तिष्क या हृदय के नष्ट होने पर आदमी मर जरूर जायेगा। बस इतना ही। मगर हथेली नष्ट हो जाये तो, जीवन की बड़ी दुर्दशा हो जायेगी।

देवदास और लक्ष्मी सतमंजिले पुस्तकालय के, चौथे तल्ले में बैठे हथेली पर एक सर्जरी पुस्तक पढ़ रहे थे।

लक्ष्मी ने कहा, "यह नदी-तट पर बैठकर पढ़ने की पुस्तक है। तभी जल्दी समझ में आयेगी।"

देवदास इससे सहमत नहीं हुआ। वह बोला, "मुझे यह स्वीकार नहीं। नदी और नदी-तट स्वयं आत्मसात करने की चीजें हैं। उस महान प्रकृति को पृष्ठभूमि बनाकर और किसी वस्तु को अपने में समा लेना ठीक नहीं। वह तो नदी की प्राकृतिक सुषमा को ठुकराने के समान है।"

"ठीक है ! एक बड़ी वस्तु के भीतर रहते हुए छोटी वस्तु को देखना नहीं चाहिए," लक्ष्मी ने मान लिया।

"वाह ! भाई वाह !" देवदास हंसा।

"अच्छा ! यों ही सही रास्ते पर आ जाओ," लक्ष्मी बोली, "पढ़ते-पढ़ते बोर हो गयी, कैंटीन चलकर जरा चाय पीयें।"

देवदास ने कुछ निराश-सा होकर कहा, "परीक्षा सिर पर आ गयी है। मैंने दुनिया भर की चीजें पढ़ते-पढ़ते सारा समय गंवा दिया। अभी तक पाठ्य-पुस्तकें खोलीं तक नहीं।"

"तो क्या हुआ? अकलमंद लोग हमेशा इम्तिहान पास कर जाते हैं।"

"सिर्फ उसी से काम नहीं चलेगा। परीक्षा के पार लगना और परीक्षक को धोखा देना आसान है। मगर वह ठीक नहीं है। विषयों का खूब ग्रहण किये बिना केवल तिकड़म

से परीक्षा पास नहीं करनी चाहिए। वह धोखा है। हम सब वही करते हैं।"

वे उठे। कैंटीन जाने के बदले देवदास लिफ्ट की तरफ चला। लक्ष्मी कुछ कहे बिना देवदास के पीछे चली। वे सातवें तल्ले पर पहुंचे।

सातवें तल्ले पर साहित्यिक ग्रंथों का भंडार था। देवदास प्रति-दिन कम-से-कम एक बार वहां आता। उपन्यासों से भरी अलमारियों के बीच से वे चल रहे थे।

यह एक विलक्षण ग्रंथालय है। कम ही ऐसी पुस्तकें होंगी जो इस सतमंजिले भवन में न हों। इसे ग्रंथप्रेमियों का तीर्थ-स्थान कहा जाता है। दुर्लभ पांडुलिपियां यहां अद्भुत निधि की तरह सुरक्षित रखी हैं, ताड़ के पत्तों और तांबे के पट्टों पर। दुनिया भर के प्रमुख प्रकाशन यहां मिलेंगे। यहां रोज सेमिनार व अध्यापन के कार्यक्रम चलते रहते हैं।

देवदास ने कहा, "मैं अगले जन्म में किताब के कीड़े के रूप में जन्म लूंगा। उसके बाद इस भवन में प्रवेश करके इन सारे ग्रंथों को चाट लूंगा। यहां के कण-कण में समा जाऊंगा।"

"मैं भी।"

"काहे को? क्यों, मेरा खून पीने?" देवदास ने उसकी हंसी उड़ायी।

अलमारी में, 'वार एंड पीस' देख देवदास रुक गया।

"क्या तुम्हें याद है कि 'हैंडबुक आफ सर्जरी' में अंगूठे के महत्व के बारे में क्या कहा है? अंगूठे से शेष सारी उंगलियों को इच्छानुसार छू सकते हैं। हथेली का अंगूठा अपनी इच्छानुसार चलाने की क्षमता पाने के ही कारण मानव इतना कलाकार हो सका है। अगर वह न होता तो आदमी इतनी बड़ी कामयाबियां शायद ही हासिल करता। परंतु उसके पहले भी तालस्ताय ने 'वार एंड पीस' में अंगूठे की महिमा का वर्णन किया है।"

लक्ष्मी ताकती रही। उसने वह पुस्तक नहीं पढ़ी है।

"लंबे अर्से तक प्यार करने के बाद प्रेमिका मरिया एंटो की पत्नी हो गयी। एक प्रसंग पर एंटो से पत्नी मरिया शिकायत करती है कि आप मुझे पहले जैसा प्यार नहीं करते। जानती हो, एंटों ने इसका क्या जवाब दिया? उसने कहा——'तुम अब मेरी दाहिनी हथेली का अंगूठा हो। उसका महत्व उसके नष्ट होने पर ही विदित होगा'।"

लक्ष्मी श्रद्धासहित 'वार एंड पीस' पुस्तक को देख रही थी।

वह कांच की अलमारी के भीतर दूसरी पुस्तकों से दबी पड़ी थी। उस हालत में भी वह सक्रिय थी। दबी पड़ी दशा में भी उस किताब का प्रभाव पूरे ग्रंथालय में छाया हुआ था।

"मैंने अपना सारा बचपन बरबाद कर दिया। ऐसी एक रचना का आनंद ले नहीं सकी," खेदपूर्वक लक्ष्मी ने कहा, "क्या किया जाये? मेरा माहौल वैसा था। मेरे पिताजी हम लोगों को पाठ्य-पुस्तक के अलावा कुछ भी पढ़ने नहीं देते थे। मां भी वैसी ही थी।

दोनों एक ही रट लगाये रहते थे——रैंक रैंक, रैंक ! वे हमें दड़बों के चूजों की तरह हिलने-डुलने तक दिये बिना पालते रहे।"

"अब भी समय है। पुस्तकें चुनकर ला दूंगा," देवदास ने कहा।

दर्द-भरी आवाज में लक्ष्मी ने कहा, "मैंने कितना परिश्रम किया ! मुझसे नहीं हो पाता। पुस्तक खोलते-खोलते मन में और कोई खयाल उठने लगता है। मैं रोज हार जाती हूं।"

"सुना है कि तुम्हारे घर में ही बहुत बड़ा ग्रंथालय है। क्या तुम्हारे पिताजी पढ़ते हैं या केवल दिखावे के लिए शो केस में पुस्तकें सजा रखी हैं?"

"सही बात है कि घर में बड़ा पुस्तकालय है। मगर वह पिताजी के अध्ययन-कक्ष में है। हमें उस कमरे में जाने की अनुमति नहीं है," दुख से लक्ष्मी बोलने लगी, "वैसे भी मैं पिताजी से घर पर थोड़ा ही मिल पाती हूं। घर पर सब अपनी-अपनी दुनिया में मस्त रहते हैं।"

कुछ देर तक लक्ष्मी मौन रही।

देवदास ने पूछा, "अब तो हम बालिग हो गये हैं। फिर माता-पिता से इतने दृढ़ संबंध की क्या जरूरत है?"

लक्ष्मी बोली, "माता-पिता और संतानों को परस्पर स्नेह करना ही होगा। अगर ये नहीं तो जिंदगी का मतलब क्या है?"

"मैं उस पर भरोसा नहीं रखता। रिश्तेदारों के परस्पर प्यार का कोई मतलब नहीं। हमें दूसरों को प्यार करना चाहिए, न कि अपने ही लोगों को। वह स्नेह असीम भी होना चाहिए।"

लक्ष्मी ने कहा, "ऐसे लोग गेरुए वस्त्र पहनकर संन्यास ले लें।"

देवदास ने कहा, "गेरुए कपड़े पहने बिना भी संन्यास संभव है... संन्यास श्रद्धा पर आधारित है। वह कमंडल और कपड़ों के द्वारा दिखाने की चीज नहीं है।"

लक्ष्मी ने कहा, "हरेक का अपना लिबास होता है। पोशाक से ही तो आदमी पहचाना जाता है। जज की पोशाक, साधु की पोशाक, ब्रिगेडियर की पोशाक, डाक्टर की पोशाक——ये सभी आइडेंटिटी हैं न?"

"पोशाक एक पर्दा है। आइडेंटिटी के भीतर की दीनता और खोखलापन छिपाने की एक चाल है पोशाक। क्या किया जाये ! दुनिया ही ऐसी हो गयी है," देवदास ने कहा।

"अच्छा, अच्छा," लक्ष्मी ने कहा, "आज हमें हथेली की सर्जरी सीखना है, चलो वार्ड चलें।"

वे आइसोलेशन वार्ड में गैस गैंग्रीन के एक रोगी के बेड के पास पहुंचे। बेड के चारों ओर बड़ी तीखी दुर्गंध फैली थी। लक्ष्मी को लगा कि और थोड़ा समय उसी माहौल

में सांस लेती रही तो बेहोश होकर गिर पड़ेगी।

रोगी के दाएं हाथ पर गैंग्रीन ने आक्रमण किया था। मेडिको छात्र उसके रोग का इतिहास लिखने लगे। पचास बरस का जुलाहा था, जिसका पेशा था कपड़ा बुनना। पत्नी तपेदिक का शिकार है। छह संतानें हैं। बड़ा बेटा चौबीस बरस का। उसे मिर्गी है। दूसरा पुत्र गूंगा है। तीसरा बेटा चोरी के मामले में फंसने से गांव से भाग गया। चौथी संतान एक कन्या है। वह अवैध गर्भ धारण किये घर पर रहती है। उसके प्रसव के दिन नजदीक हैं। पांचवां बेटा सिनेमाघरों में चोर-बाजार में टिकट बेचने का धंधा करता है। जितने पैसे मिलते हैं गांजा-ताश में उड़ा देता है। बीच-बीच में सरकारी मेहमान भी होकर लौटता है। छठा बेटा बारह साल का है। वह बालिग व्यक्ति की-सी व्यथाएं झेला करता है।

तीन सप्ताह पहले वह जुलाहा कपड़ा बुन रहा था तो करघे की एक छोटी कील दाएं हाथ की छोटी उंगली में गहरी चुभ गयी। उसने उसी समय उसे खींचकर बाहर निकाला और दूर फेंक दिया। खून भी रिस गया, मगर वह पहले की तरह काम करने लगा। एक हफ्ता बीता तो छोटी उंगली में जरा-सा दर्द और सूजन अनुभव हुई। दूसरे दिन पूरी हथेली सूज गयी। हथेली का ऊपरी हिस्सा कछुए जैसा हो गया। तेज बुखार, कंपन, कै और जोर की थकान अनुभव हुई। सूजन कोहनी तक बढ़ी और पूरा हाथ लाल हो गया। हाथ उठाना तक नामुमकिन हो गया। उसने एक होमियो डाक्टर को दिखाया। होमियो डाक्टर ने एक सफेद चूर्ण दिया। पांच दिन बीते तो सारी उंगलियां पक गयीं। हाथ कंधे तक सूज गया। फिर दो दिन घर पर ही लेटा रहा। तीसरे दिन होश आने पर उसने अपने को अस्पताल में पड़ा पाया। डाक्टर ने कहा कि उसका हाथ कंधे से काटकर अलग करना होगा। वह रोने लगा।

अब इसका दाहिना हाथ उसके शरीर जितना मोटा है। वह हाथ चारपाई में यों पड़ा है मानो और एक आदमी ही बगल में लेटा हो।

दो स्टाफ नर्सें उसकी बांह पर बंधा कपड़ा खोलकर हटाने लगीं। दुर्गंध पहले से कहीं अधिक महसूस हो रही थी। कई मेडिको छात्रों ने नाक पर हाथ रख लिया।

वार्ड में श्री गोवर्धन आचारी की ऊंची आवाज सुनाई पड़ी––"कोई नाक पर उंगली न रखे।" वे एक काली परछाई की तरह आ रहे थे। "रोगी की कोई भी बदबू हमारे लिए खुशबू होनी चाहिए। आगे कोई नाक बंद करे तो उसकी नाक मैं आपरेशन के पहले इस चाकू से काटकर फेंकूंगा।"

मवाद में भीगा कपड़ा व रुई खोलकर हटायी तो ऊखल जितना बड़ा, सूजा हुआ स्याही के रंग का हाथ वीभत्स रूप में खाट पर पड़ा था। आचारी ने कंधे पर फूटा एक बड़ा फफोला चाकू से छुआ। कुछ द्रव और सीत्कार के साथ हवा बाहर चली आयी।

"यह गैस गैंग्रीन है," श्री आचारी कहने लगे, "इसकी बांह कंधे से काटकर अलग

करने में कोई बड़ा मतलब नहीं है। गैंग्रीन शायद फेफड़ों में भी फैला हो। बहुधा इसकी हवा उड़ जाने की संभावना है।"

श्री आचारी के सामने रोगी चुपचाप पड़ा था। सर्जन जो कि उसके लिए अनजान भाषा में बोलता था——उसकी नजर में रक्षक था। उसने आचारी को उतनी ही भक्ति से देखा जितनी कि कोई देवता की मूर्ति को देखते वक्त अनुभव करता है। यह रोगी कृष्णभक्त रहा होगा। वह बैलगाड़ी में चढ़कर ढोलक बजाते हुए हरिकीर्तन करते हुए मथुरा को जाने की अपनी पुरानी घटना याद करता होगा। हरे कृष्ण ! मुझे बचाओ ! क्या वह प्रार्थना करता है? उसके होंठ कांप रहे हैं। क्या वह प्रार्थना है? क्या आत्मा के प्रहरी के रहस्य की ध्वनियां हैं? या पीड़ा का इतिहास सुनाता है? अथवा जीवन की पहेलियां हैं, या केवल रुदन है?

दाएं हाथ से काम करने वाले एक बुनकर का दायां हाथ काटकर हटा देना भीषण पाप है। श्री आचारी ने वह सत्य उस रोगी की समझ में आने वाली भाषा में समझाया।

श्री आचारी ने कहा, "अब गेंद बीच मैदान में है। एक तरफ गोली नहीं है। उसे कुछ हो गया है। पता नहीं, वह कहां चला गया है। क्या वह जाली के पीछे चला गया है? हो न हो, धर्म का ही महत्व है। धर्म पर भरोसा रखें, तो अब गोल कर नहीं सकते। नहीं तो, अब गेंद आगे ठेल दो, गोल बन जायेगा। धर्म पर आस्था हो तो इसका हाथ काटना ही पड़ेगा। जीना मरने से बेहतर तो है। प्रभु की लीलाएं जितने वर्ष देखते रह सकें, उसका उतना ही आनंद लिया जाना भक्तिमार्ग है। हाथ नहीं तो क्या हुआ, पांव नहीं तो क्या हुआ? एक जून का खाना भी जिस भिखारी के नसीब में न हो वह भी मेरी गाड़ी से अपने को बचा लेता है। भीख मांगने पर भी वह जीना चाहता है। मेरी गाड़ी के नीचे दबकर मरने की अपेक्षा दाताओं से ठुकराया जाना पसंद करता है। जीवन एक पहेली है। शतरंज के चौखाने हैं। बिना सोचे एक मोहरा आगे बढ़ाये तो बस ताज नष्ट हो जायेगा।

"रोग बढ़ता है। रोगी बढ़ते हैं। नदियां सूखती हैं। मिट्टी के ढेले ढेर बनते हैं। यमुना तट पर अर्थी लगती है। श्रीकृष्ण की द्वारिका में रबड़ की खेती होती है।

"मक्का की मसजिद में पलटन रहती है।

ठंडे पानी को ईसा मसीह ने अंगूर का रस बनाया है।

जान पॉल दरवाजा खोलते हैं?

रोगी आशा करते हैं कि दस्तक दो तो दरवाजा खुलेगा।

मगर ईसा मसीह ने कहा कि उंगलियों से दस्तक दो।

मसीहा का मतलब था कि चांदी के सिक्कों से दरवाजे पर दस्तक दो।

दस्तक देने से अगर आवाज निकलनी है

तो चांदी का सिक्का ही चाहिए !"

एकाएक श्री आचारी चुप हो गये। श्री आचारी दुहरी प्रकृति के मानव हैं। उनके भीतर दो व्यक्ति हैं। एक सज्जन हैं, एक आचारी भी।

श्री आचारी के भीतर रहने वाले सज्जन को बाहर के आचारी पसंद नहीं करते। श्री आचारी सज्जन होना पसंद करते हैं। मगर भीतर के आचारी श्री आचारी को सज्जन होने नहीं देते।

इसलिए बीच-बीच में श्री आचारी अपने ही रची हुई गजल गाते-गाते उसका मजा लेते हैं।

श्री आचारी को इसकी चिंता नहीं कि उनके शिष्य उन्हें पसंद करते हैं कि नहीं।

आचारी ने कितनी ही बार कहा था--

"मेरे लिए मेरी क्लास में कुल पचास छात्र हैं। मैं पचास छात्रों को कई ग्रुपों में सर्जरी सिखाता हूं। लिखित नियम है कि इन पचास लोगों को सर्जरी सीखनी चाहिए। मगर लिखित नियम हमेशा अमल में नहीं आता। इसलिए मैं सचमुच यह अभिलाषा नहीं रखता कि मेरी सिखाई बातें सभी पचास छात्रों की समझ में आ जायें। अगर मेरी बातें एक भी छात्र समझ ले तो अपने को धन्य मानूंगा।

"मैं अपने लिए पढ़ता हूं", हजार आदमियों के लिए नहीं कहता। छह लोगों के लिए कहता हूं।

''मैं उन छह लोगों के लिए जीने को तैयार हूं। जरूरत पड़े तो जान भी दे दूंगा।''

किंतु उसी दिन श्री आचारी ने ऊंची आवाज में कहा, "इस रोगी को तुरंत थियेटर ले चलो। दाएं हाथ से काम करने वाले बुनकर का दायां हाथ मैं काटने जा रहा हूं। द्रोणाचार्य ने जैसे एकलव्य के दाएं हाथ का अंगूठा दक्षिणा में मांगा था, वैसे ही।"

श्री आचारी उस दिन अच्छे मूड में थे। उन्होंने पिछले दिन और उस दिन अनेक गजलें पढ़ी थीं।

रास्ता भटकने पर कोई भी दुष्ट शायरी करेगा।

उनतीस

मेरी एक अर्जी लिये श्री आचारी के कमरे में पहुंची। आचारी ने पूछा, "आज, इस समय?"

मेरी ने बड़े विनय से अर्जी मेज पर रखी। पता नहीं कि उसके ओठों पर मुस्कुराहट थी या शिकायत!

आचारी अर्जी एक बार पढ़ने के बाद मेरी को थोड़ी देर देखते रहे। उस तीव्र दृष्टि का मतलब? आचारी ने अर्जी पर और एक बार नजर डाली। फिर उसे मेज पर पेपरवेट के नीचे रखा।

"यह नामुमकिन है। तुम जिंदगी भर मेरे विभाग में रहोगी। मेरी अभिलाषा जाहिर करने के बाद जो लड़कियां उसे पूरा नहीं करतीं उन्हें मैं मुफ्त में नहीं छोड़ता। स्त्रियों के प्रति सम्मान होने के कारण ही मैंने तुम्हारी सहमति के बिना तुम्हें हाथ नहीं लगाया। क्षण भर में मैं ऐसा कर सकता हूं। मगर नहीं करूंगा। मेरी जानकारी में किसी लड़की ने मेरे अनुरोध को ठुकराया नहीं है। मैं नहीं कहता कि तुमने ठुकरा दिया। पर एक-न-एक दिन तुम्हारा मन बदलेगा। उसी मानसिक परिवर्तन की प्रतीक्षा में हूं...।

"एक बार इच्छा मन में उठे तो उसे आचारी पूरी किये बिना नहीं रहेगा। मेरे हौसले ऐसे ही तो हैं। वे लहरों की तरह उठते रहेंगे। किनारे से टकराकर हंसते हुए वापस आयेंगे, फिर उठेंगे। मेरी अभिलाषाएं ऐसी हैं...।

मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम पूरे दिल से हामी भर लो, बस। वह सहमति मिलने के बाद तुम्हें एक बार गले लगा लूंगा। इतना ही। उसी दिन तुम्हें छुट्टी मिलेगी...।

अर्जी छोड़ जाओ। एक दिन सोचो। तुम्हारा भविष्य मेरे तराजू पर डोल रहा है। याद रहे...।

और एक बात। दबाव से हारकर सहमति न देना। वह गुनाह है। हृदय की सहमति चाहिए। बिना सहमति के किसी लड़की को छूने से बेहतर है रबड़ की गुड़िया को छूना।...अच्छा, जाओ !"

आचारी ने इतना कहकर बातें खतम कीं।

"सिस्टर, कहां जा रही हो?"

मेरी आचारी के कमरे से डा. रवींद्रनाथ के कमरे में आ गयी। यह आकस्मिक रूप से कई बार हुआ है। रवींद्रनाथ की आवाज पहचानकर मेरी ने सिर ऊपर उठाया। मेरी

हमेशा आचारी के कमरे से सिर झुकाये ही निकलती थी। उस कमरे से निकलते समय मेरी दुनिया को देखने से डरती थी।

धीमी आवाज में रवींद्रनाथ ने पूछा, "क्या हालचाल हैं? बाघ के कठघरे से आ रही हो? बाघ अब भी बकरी को खाता है?"

मेरी मौन थी। वे गलियारे से थोड़ा फासले पर, साथ-साथ चल रहे थे।

डा. रवींद्रनाथ नर्सरी में सीखा हुआ शिशु-गीत दुहरा रहा था——"मेरी हैड ए लिटिल लैंब..."

क्या डा. रवींद्रनाथ को गलतफहमी हो गयी है या मेरी को जरा-सा चौंकाने के लिए कह रहा है? वह और किसी से लंबी-चौड़ी बातें नहीं करता। सबसे सौम्य भाव से ही बात करता है।

रोगियों से बात करता है, तब सुनने वाले को लगता है कि वे एक-दूसरे को सालों से पहचानते हैं। मेरी ने इतने सुयोग्य और सहृदय डाक्टर को इस अस्पताल में नहीं देखा है।

लेकिन डा. रवींद्रनाथ मेरी से बातें करते समय थोड़ी आजादी दिखाता है। छोटे-मोटे चुटकले सुनाता है। मेरी को यह आजादी व मजाक कभी नहीं अखरते। बीच में वह सुनने को न मिलता तो वह दुखी होती।

"डाक्टर, कहां चले?"

"सेमिनार में।"

डा. रवींद्रनाथ के हाथ में काफी मोटी फाइल थी! एक्सरे फिल्में और दो-तीन मोटी पोथियां भी। वह हमेशा फाइलों का बोझ ढोता हुए चलता था। मेरी ने उसे कभी मक्खी मारते नहीं देखा है, सदा व्यस्त रहता है। हमेशा चलती मशीन-सा है। इस मरियल आदमी में इतनी ऊर्जा कहां से आती है? अजीब बात है।

"डाक्टर, क्या आप कभी आराम नहीं करते?" मेरी ने पूछा।

"आराम तो सदा करता हूं। आराम के बीच थोड़ा-सा काम भी करता हूं," हंसते हुए रवींद्रनाथ ने कहा।

मेरी बोली, "आप अजीब आदमी हैं।"

"मेरी मां भी यही कहती है। मां का कहना है कि बचपन में मैं क्षण भर भी चुप नहीं रहता था। सोते समय भी हाथ-पांव पटकता हुआ खेलता था। मां मुझे अद्‌भुत बालक कहकर पुकारती थी।"

मेरी ने कहा, "आप की मां ने आपको बचपन से ही ठीक पहचान लिया।" मेरी को उस समय उस मां को देखने की इच्छा हुई।

"चलो सिस्टर, मेरे क्वार्टर पर चलो। मैं तुम्हें बढ़िया चाय पिलाऊंगा।"

"नहीं डाक्टर, जल्दी में हूं।"

"आओ प्लीज!" वह प्यार-भरा बुलावा मेरी ठुकरा नहीं सकी।

प्यारेलाल का फाटक पारकर वे बाहर निकले। फाटक पर मेरी ने प्यारेलाल से कहा, "प्यारेलाल, शाम को होस्टल आने पर मुझसे जरूर मिलना। जरूरी काम है।"

"अच्छा सिस्टर!" नम्रतापूर्वक से प्यारेलाल ने कहा।

दोनों तरफ हरे-भरे लान के बीच से जाती कंक्रीट की सड़क से वे चले जा रहे थे, बातें करते हुए।

रवींद्रनाथ का क्वार्टर उसके पद के अनुसार छोटा था। उसका भीतरी भाग सादगी से सजा था। दो-तीन कुरसियां, एक तिपाई। एक बड़ी मेज और आराम-कुरसी। हलके पीले रंग के खिड़की के पर्दे। छोटे बच्चों के दो फोटो। बस !

रवींद्रनाथ बड़ी जल्दी गरम चाय तैयार करके ले आया। रसोईघर से बर्तनों के टकराने की आवाज या मिट्टी के तेल की गंध——कुछ नहीं आयी। रवींद्रनाथ हर काम बड़ी खामोशी से करता है।

चाय पीते हुए डा. रवींद्रनाथ ने पूछा, "मेरी, फुरसत का समय कैसे बिताती हो?"

"सोते और सपना देखते," मेरी बोली।

"मीठे सपने?"

"अफसोस; सभी दुःस्वप्न !"

"क्यों इस तरह बुरे सपने देखते हुए समय बरबाद करती हो?"

"और क्या करूं?"

"पढ़ना !"

"पढ़ने की आदत बिलकुल नहीं। किताब हाथ में लेते ही आंखें बंद हो जाती हैं। मेरे लिए पुस्तक नींद लाने का उपाय है।"

"तब तो साथिनों से गपशप करना। शहर का चक्कर लगाना। कभी-कभी सिनेमा देखना। उन सबसे जिंदगी में मजा आयेगा न?"

'साथिन' शब्द मेरी के दिल में चुभ-सा गया। उसका मन एकाएक कहीं दूर उड़ चला।

"हूं, क्या हुआ? क्या सोच रही हो, मेरी?" रवींद्रनाथ ने पूछा।

"अब मेरी कोई साथिन नहीं। कुंजम्मा के जाने के बाद मैं एकदम अकेली हूं। दूसरा हेलन सिंह का सहारा था। वह भी अब नष्ट हो गया। वे आठों पहर नशे में रहती हैं। फुरसत के समय हमेशा बेड पर बेहोश पड़ी मिलती हैं। जैसे पहिया पंक्चर हो जाने पर कोई खूबसूरत मोटर सड़क के किनारे पड़ी हो !"

दोनों मौन हो गये। डा. रवींद्रनाथ ने अपने प्याले में और चाय डाली। मेरी की चाय

ठंडी हो रही थी।

रवींद्रनाथ ने पूछा, "कुंजम्मा के मुकद्दमे का फैसला क्या हुआ?"

"सब हो गया। फैसला भी सुनाया गया। वह अब जेल में है।"

रवींद्रनाथ ने पूछा, "उसका पति?"

"वह जेल गया था। मगर कुंजम्मा ने उससे मिलने से इनकार कर दिया।"

कोई बात सोचकर रवींद्रनाथ ने कहा, "हम लोग एक दिन जेल चलें।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊंगी।" मेरी का विचार दृढ़ था।

मेरी ने विदा ली।

"क्या आज छुट्टी का दिन है?" रवींद्रनाथ ने पूछा।

"आजकल मेरी नाइट ड्यूटी है, डाक्टर ! अब जाकर कुछ सोऊंगी। नाइट ड्यूटी वाले दिन भर नहीं सोते तो हेलन सिंह गाली देती है।"

"अब?"

"अब वे आठों पहर सोती हैं," मेरी बोली।

होस्टल पहुंचकर कपड़े बदलने के बाद मेरी हेलन सिंह के कमरे की तरफ गयी।

खरगोश की तसवीर से सजा दरवाजे का पर्दा एकदम मैला पड़ा था। नीचे कहीं-कहीं फटा भी था। हेलन सिंह आजकल उन बातों पर ध्यान नहीं देती।

भीतर सोफा व तिपाइयां बेतरतीब पड़ी थीं। तिपाई पर बिस्कुट, मूंगफली के छिलके, रम की बोतल आदि थी। मैले कपड़े कुरसी व मसहरी के ऊपर पड़े थे। खाली चाय की प्यालियां चारपाई के नीचे रखी हुई थीं। एक मक्खी प्याली में तड़प रही थी। प्याली का तूफान।

हाय ! यह कमरा कितनी शान और कायदे से सजा रहता था !

"मैट्रन !" मेरी ने धीरे से आवाज दी।

हेलन सिंह मरे पड़े बड़े मेंढ़क जैसी पड़ी थी। पिंडलियां नंगी, बाल तकिये पर बिखरे, चेहरे पर पहले की-सी न ख़ुशी, न चुस्ती। आंखों के नीचे काले गड्ढे। पलकें पूरी मुंदी नहीं थीं। लग रहा था जैसे कि किसी के इंतजार में खोल रखी हैं।

"मैट्रन!" मेरी ने आवाज जरा-सी ऊंची की।

हेलन सिंह धीरे से उठी, जैसे कि स्लो मोशन फिल्म में दिखाया जाता है। बड़ी मुश्किल से आंखें खोलीं और कहा, "मेरी, जरा आंख लग गयी थी।"

मेरी ने कहा, "मैंने श्री आचारी को एक अर्जी दी है।"

"अच्छा हुआ ! बहुत अच्छा !" बहुत कम शब्द निकल रहे थे।

मैट्रन फिर से बेड पर गिर पड़ी।

मेरी अपने कमरे में लौटी। साथिन अलफोंसा बाईबिल पढ़ रही थी। वह बहुत कम

बोलती थी। कहीं नहीं जाती। न साथी, न संगी। हमेशा प्रार्थना व व्रत में लीन रहती थी। लगता था कि प्रभु ने उसे इसी के लिए संसार में भेजा था। उसे सज-धज, फैशन में बिलकुल दिलचस्पी नहीं थी। खाना तक दूसरे के लिए खाती-सी नजर आती थी।

नींद के बाद मेरी ने नहाकर वर्दी पहनी और नाइट ड्यूटी के लिए तैयार हो गयी। ड्यूटी वालों को लेकर वैन अस्पताल की तरफ चल पड़ी।

मेरी का दिल बुझा-बुझा था। उसे कमरा बंदकर चुपचाप भीतर रहने का मन हुआ। मगर वार्ड पहुंचने पर मन में कुछ उत्साह आया। मिस्टर आचारी ने जिस रोगी के पेट का आपरेशन किया था उस की हालत नाजुक थी।

ड्यूटी की पारी लेते समय पहली सिस्टर ने मेरी से कहा, "बिटिया ! उस केस का जरा ध्यान रखना। लाख ध्यान देने पर भी शायद ही उसका सबेरा हो।"

मेरी ने कहा, "उसे कुछ नहीं होगा।"

"हूं, ऐसा क्यों कहती हो?"

"श्री आचारी का आपरेशन है न! ऐसा कोई इतिहास इस अस्पताल में नहीं है न!"

"ठीक है। मगर बिटिया, बीच में स्वयं भगवान ही आकर आपरेशन करें।" थोड़ा रुक कर फिर चलते चलते उसने कहा, "देर हो रही है। गुड नाइट!"

एक रोगी की हालत बड़ी नाजुक थी। वैसे वार्ड सामान्यतया शांत था। मेरी से चुपचाप ड्यूटी रूम में रहा नहीं गया। वह रोगी के पास पहुंची।

वह करीब बीस वर्ष का युवक था। उसकी यादें परलोक की सैर कर रही थीं। दोनों हाथों में ड्रिप की नलियां थीं। एक नली में खून और दूसरी में मेंटेनेंस फ्लूयिड ! नाक में व पेशाब के लिए अलग से नलियां लगी हैं। वह अनेक नलियों से बना यंत्र जैसा पड़ा था। एक गरीब औरत गंभीर चेहरा लिये बगल के स्टूल पर बैठी थी। शायद उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि रोना है या और कुछ करना है।

हर तीसवें मिनट में मेरी नब्ज की गति शीट पर नोट करती जा रही थी। हाउस-सर्जन रक्तचाप वाली मशीन लिये हाजिर था।

उस सर्जन को नयी-नयी पोस्टिंग मिली थी। वह प्रत्येक काम कुछ कर दिखाने के हठ से कर रहा था।

हाउस-सर्जन अपने आपको बता रहा था--"इलक्ट्रलैस इबैलेंस है।"

आधी रात होते-होते रोगी की सांस की गति मंद पड़ने लगी।

सर्जन कृत्रिम श्वास देने का यंत्र ले आया। डाक्टर और सिस्टर मेरी ने बारी-बारी से दो-दो घंटे, रोस्ट्रम ड्यूटी करने का निश्चय किया।

डेढ़ बजा था। हाउस-सर्जन रोगी की नाक और मुंह माउथपीस के अंदर करके, कसकर फूलता बैलून दबाने लगा। प्राण-वायु जीवन के बूंद की तरह रोगी की श्वास-नली में प्रविष्ट

हुई। रोगी के सूखे चेहरे में कुछ जान आयी। निर्जीव नेत्रों में प्रकाश अंकुरित हो रहा था। प्रत्याशा की गति बढ़ रही थी।

दो घंटे बीते तो हाउस-सर्जन थक गया। तब मेरी पहुंची। उसने एक बच्चे को लेने की सहजता से अंबु-बैग डाक्टर के हाथ से ले लिया। रोगी के पास बैठकर प्रेमपूर्वक उस पर दृष्टि डाले मेरी बैलून दबाने लगी। मगर वह सुधरी हालत अधिक देर तक टिकी नहीं रही। आषाढ़ की धूप की तरह वह जल्दी गायब हो चली। वार्ड के ऊपर काले बादल छा गये।

जरा भी आराम किये बिना, एक ही मुद्रा में बैठे-बैठे ही मेरी ने अपना काम जारी रखा। रात भर की अपनी पीड़ा से एक जान को मौत से बचा सके तो एक जीवन की पुर्नप्राप्ति के समान होगा।

दो घंटों तक बैलून दबाते-दबाते मेरी भी थक गयी। पर मेरी ने हार नहीं मानी।

आया आकर बोली, "हाउस-सर्जन सो रहा है।"

"ठीक, उन्हें मत जगाओ। जब तक जगकर न आयें तब तक मैं संभालूंगी।"

मेरी रात भर उसी तरह बैठी रोगी को कृत्रिम श्वास देती रही। उसके हाथों-पावों ने एकदम जवाब दे दिया। सिर चकराने लगा। आंखों में अंधेरा छा गया। संदेह हो रहा था कि पैर जमीन पर टिक रहे हैं कि नहीं! मेरी की हालत रोगी से भी बदतर हो रही थी। उसकी सेवा के कारण रोगी दिन चढ़ने के पहले नहीं मरा।

हाउस-सर्जन की लापरवाही और गैर-जिम्मेदारी के व्यवहार पर मेरी ने शिकायत नहीं की। रोगी के मौत से बचने के कारण वह सब कुछ भूल गयी।

बड़े सबेरे आये ड्यूटी सर्जन रोगी को थियेटर ले गये।

दूसरे दिन नाइट ड्यूटी पर आयी मेरी वार्ड में पहुंची तो सबसे पहले उस रोगी के पास आ गयी। तब तक उस रोगी का गला-चीरकर उसमें नकली श्वास का यंत्र लगा दिया था। एक डाक्टर व नर्स को बारी-बारी से दो-दो घंटे तक रोगी की सेवा करनी चाहिए। अब बैग अपने आप फूलता-बंद होता रहेगा। मगर श्वास की गति, नब्ज, आक्सीजन की मात्रा आदि नोट करते रहना होगा। जरा भी असावधानी रोगी की मृत्यु का कारण बन सकती है।

एक सप्ताह उसी तरह बीता। रोगी कृत्रिम श्वास के सहारे पड़ा रहा।

ड्यूटी करते-करते डाक्टर व नर्सें सब थक गयीं? हार गयीं? मगर रोगी में कोई परिवर्तन नहीं। रोगी तो अपनी तरफ से सांस लेने को तैयार नहीं, उसकी दूसरी पेचीदगियां भी बढ़ रही थीं।

दसवें दिन रात को श्री आचारी वार्ड में आये और रोगी के बेड के पास खड़े होकर कहा, "वह मुझे हराने के लिए पैदा हुआ है। इसके जीवन का लक्ष्य मुझे पराजित करना

है। वह पूरा होने वाला है।"

वे आगे बोले, "एक मामूली मामला था न? एक हाउस-सर्जन के लायक, छोटा-सा आपरेशन! उसकी बात कहिए। मैं उस पर विश्वास रखता हूं। अगर यही भाग्य में लिखा है तो यही सही।"

मेरी को छोटी उंगली से स्पर्श करके श्री आचारी ने कहा, "सिस्टर, इस ट्यूब को निकाल दो। उसे मरने दो।"

श्री आचारी फर्श पर जूता जोर से पटकते हुए गलियारे में गायब हो गये। पराजय ने उन्हें बहुत चिढ़ाया था। मेरी बेड के पास पहुंची। रोगी ने थकी आंखें खोलीं।

रोगी ने मेरी की तरफ देखा। क्या श्री आचारी की बातें रोगी ने सुन लीं? आचारी के शब्द क्या रोगी के मस्तिष्क में पहुंचे? क्या उसकी ध्वनि रोगी के मन को कंपा रही है?

किंतु रोगी हर हालत के लिए तैयार लेटा था। उसके होंठ बुदबुदा रहे थे कि अगर जीवन की एक बूंद भी बची है तो मुझे एक और क्षण जीने दीजिए। सूखे, पतले होंठों में चमकता, ओझल होता वह क्या है? क्या प्रत्याशा की झलक? या सिर्फ जड़ता?

रोगी का गला चीरकर श्वास की नली में लगायी ट्यूब बाहर निकालने का मन मेरी का नहीं हुआ ! उसके हाथ कांप उठे। ट्यूब निकालते ही रोगी मर जायेगा। क्या वह अपने हाथ से वह काम करे? मेरी मृत्यु का स्विच दवाने में झिझकती रही।

उसने हाउस-सर्जन से कहा, "आप निकाल दीजिए। मुझसे नहीं हो पाता।"

हाउस-सर्जन ने हाथ बढ़ाया। मेरी कहना चाहती थी, 'नहीं।' मगर सर्जन ने हाथ खींच लिया। वह जीवन को समाप्त करने में झिझकता था।

मेरी ने पूछा, "रोगी जब मरे, तब मरे। हम लोग ड्यूटी करते जायेंगे। क्या आप सहमत हैं?"

"हां," हाउस-सर्जन ने कहा। वह बिलकुल संवेदन-शून्य हो गया था। मेरी अत्यंत भाव-विह्वल थी।

मेरी और हाउस-सर्जन बारी-बारी से ड्यूटी करते रहे। आखिर सवेरा हुआ।

दिन की ड्यूटी वाली नर्सें वार्ड में आ गयीं। मेरी ड्यूटी सौंप रही थी। सोच रही थी, 'कहीं वह रोगी बच गया तो?'

उस रोगी की तरफ इशारा करते हुए मेरी ने नयी नर्स को बताया, "पूरी कोशिश करना। एक आदमी के जीवन का मामला है न?"

रोगी की तरफ और एक बार नजर डालने के बाद मेरी वार्ड से निकल गयी।

मगर गलियारे में मेरी के गायब होने के पहले ही रोगी ने गले में ट्यूब रहते हुए ही अंतिम सांस ली।

मेरी को रोगी की सेवा करने का पुरस्कार दो दिन बाद मिला। पुरस्कार था दंड। दो सप्ताह के लिए मुअत्तिल कर दिया गया।

श्री आचारी के आदेश देते ही उसने रोगी के गले की ट्यूब नहीं निकाली थी, यह एक गंभीर अपराध था।

तीस

एम.बी.बी.एस. के अंतिम वर्ष की परीक्षा प्रारंभ होने वाली है। इस निर्णायक परीक्षा को पास कर लेने पर छात्र डाक्टर हो जायेंगे। परंतु यह एक बड़ी दीवार है। बड़े होशियार, मेहनती और प्रतिभाशील छात्र यहां हार जाते हैं। सर्जरी, मेडिसिन, गायनाकोलाजी आदि सभी विषयों में पास होना पड़ता है। कुशल परीक्षक प्रोफसर यह नहीं जानना चाहते कि एक मेडिको को क्या-क्या मालूम है, वे तो यही पता लगाने में लगे रहते हैं कि मेडिको क्या-क्या नहीं जानता। इसलिए यह कोई परीक्षा नहीं, एक अग्नि-परीक्षा है।

देवदास बैठा कैलेंडर की तरफ देख रहा है। परीक्षा में अब अठारह दिन शेष हैं। देवदास डायरी खोलकर फिर से टाइम-टेबिल तैयार करने लगा। गत तीन दिनों से वह टाइम-टेबिल बनाता है, रद्द करता है, फिर से तैयार करता है। आगामी अठारह दिनों के भीतर सर्जरी, मेडिसिन, गायनाकोलाजी, प्रिवेंटिव ऐंड सोशल मेडिसिन, आप्थेमोलाजी—— पांचों विषयों को अंतिम रूप में पढ़कर कंठस्थ कर लेना होगा।

सर्जरी और मेडिसिन के लिए पांच-पांच दिन, गायनाकोलाजी और प्रिवेंटिव मेडिसिन के लिए तीन-तीन दिन——कुल सोलह दिन गये। शेष दो दिन बचे आप्थेमोलाजी के लिए। देवदास ने सुंदर ढंग से लिखा।

देवदास लौ और बेल्ली का लिखा हुआ सर्जरी-ग्रंथ खोलकर उस पर नजर डालने लगा। आधा घंटा पढ़ने पर भी कुछ कहीं याद नहीं रहता। एकाग्रता, पता नहीं, कहां गायब हो गयी! मन में सैकड़ों प्रश्न उठ आते हैं। एडमिशन टिकट लेना है, फीस की बकाया राशि अदा करनी होगी। उसके लिए पैसे कहां है? पैसों का इंतजाम करना होगा। प्रिवेंटिव मेडिसिन की हाजिरी में दो दिन कम हैं। विभाग में जाकर ट्यूटर से मिलकर सब ठीक करना होगा। उसका गुस्से से भरा चेहरा देखना पड़ेगा, गाली सुननी पड़ेगी। नगर में फिल्म सोसाइटी दस दिन फिल्म-शो चला रही है। देवदास स्वयं उसका सदस्य है। शो शुरू हो चुका है। इतने अच्छे विश्व-स्तर की फिल्में देखने का मौका आगे मिले-न मिले, कौन जाने? वह भी नष्ट हुआ। छाया और प्रकाश की धूप-छांह धीरे-धीरे गायब हो जायेगी। परीक्षा के बाद छुट्टियों के दिनों का सदुपयोग करना पड़ेगा। खरीदकर रखी हुई पुस्तकें पूरी-पूरी पढ़नी पड़ेंगी। मित्रों के साथ सांझ तक नदी-तट पर बैठना चाहिए। एक नौका-यात्रा का प्रबंध करना चाहिए। परीक्षा के बाद मेडिसिन और सर्जरी बारंबार पढ़कर समझ लेना चाहिए।

सामने से तीन वर्ष गुजर गये। फिर भी उन दिनों का उचित उपयोग नहीं किया गया। अगर उपयोग करता तो ये सारे विषय हृदयस्थ होते। बुनियादी बातें तक याद नहीं रहतीं। कितने ही दिन व्यर्थ हो गये। वे सब कहां से लौटेंगे?

देवदास बड़ा दुखी है। मन लगाम से छूटे घोड़े की तरह कहां-कहां दौड़ पड़ता है, पता नहीं।

उसने उठकर केतली में पानी भरकर स्टोव जलाया। चाय पीने से सब-कुछ ठीक हो जायेगा। नया जोश मिलेगा।

चाय पीते-पीते कोई दरवाजे पर दस्तक दे रहा था। बगल के कमरे का अनिल कुमार।

अनिल बोला, "अरे, तुम पढ़ते रहोगे या कल के लिए कुछ बाकी भी रखोगे?"

"नहीं, भाई! सबेरे ही बैठा हूं। एक भी अक्षर पढ़ नहीं पाता," देवदास ने दुख से कहा।

अनिल हंसते हुए बोला, "मैं भी। मेडिसिन की पुस्तक खोलकर रखी, तो एका-एक शतरंज खेलने का लोभ हुआ। सो कामनरूम चला गया। अभी तक खेलता रहा। दुर्भाग्य! और क्या कहूं?"

देवदास ने व्याकुलता से कहा, "मेरे सारे विषय बाकी हैं।"

"मैंने छुआ तक नहीं," अनिल बोला।

अनिल की बातचीत या व्यवहार में कोई व्यग्रता नहीं दिखाई दे रही थी। उसकी प्रवृत्ति ही ऐसी है। परीक्षा उसके लिए कभी समस्या नहीं रही है। आज तक अनिल कुमार किसी परीक्षा में नहीं हारा है। मगर वह कोई क्लास नहीं छोड़ता। इतने दिनों तक अध्यापकों ने जो कुछ सिखाया, अनिल ने ध्यान से सुना है। उसकी स्मरण-शक्ति गजब की है। इसीलिए अनिल परीक्षा से नहीं घबराता, परीक्षा अनिल से घबराती है।

कुछ छात्र कालेज के खुलते ही अध्ययन भी प्रारंभ कर देते हैं। वे परीक्षा के दिनों तक पढ़ते रहते हैं। होटल, थियेटर या क्लब की ओर कभी झांकते तक नहीं। वे तो जन्म से ही पुस्तकों के संगी रहते हैं। मगर इससे क्या हुआ? फेल होने वाले छात्रों में इनकी संख्या ही अधिक रहती है। परीक्षा की माया ! और क्या कहा जाये?

बरामदे में हंगामा सुनाई दिया। कोई क्रिकेट मैच के अप्रत्याशित परिणाम चिल्ला-चिल्लाकर सुना रहा था। कोई एका-एक आउट हो गया है।

अनिल ने कहा, "अरे रेडियो ऑन करो, यार !"

देवदास ने मुंह-तोड़ जवाब दिया, "माफ करना!"

अनिल कुछ नाराज होकर कमरे से निकला और बरामदे के शोरगुल में शामिल हो गया।

अपराध पर क्षमा मांगने के मूड में देवदास ने पुस्तक खोली। पर वह पढ़ नहीं पा

रहा था। देवदास को पछतावा हो रहा था कि अनिल का दिल दुखाया। समय बह-सा रहा था। मन बेचैन था। वह कुछ बड़बड़ाता जा रहा था।

देवदास भी कमरे से निकला।

वह अनिल कुमार को लेकर अपने कमरे में लौटा और रेडियो ऑन कर दिया। देवदास का कमरा गूंज उठा।

दोपहर तक वे दोनों कमेंट्री सुनते रहे। भूख लगी तो, भोजनशाला चले गये। देवदास ने नींद से बचने के लिए नाश्ता नहीं किया था। तेज भूख लगी थी। उस दिन किसी कारणवश दावत भी थी।

देवदास ने डटकर खाया। कमरे में लौटते-लौटते वह थक चुका था। किताब खोलते ही नींद आ गयी। वह पलंग पर पसर गया।

उठते-उठते काफी देर हो गयी। पांच बज चुके थे। सिर भारी लग रहा था। मन बेचैन ! उदासी का शैतान पीछा करता-सा लगा।

देवदास एक प्याला चाय पीकर कुछ ताजा दम हुआ और बाहर निकल गया। वह सीधे छात्राओं के होस्टल की ओर गया। इन दिनों लक्ष्मी वहीं रहती थी। हर परीक्षा के दिनों में वह होस्टल में रहती थी। घर पर रहकर वह पढ़ नहीं पाती। पिताजी का स्थायी आदेश भी यही था।

लक्ष्मी को देखते ही देवदास के मन की व्यग्रता दूर हो गयी। उसके मन में हर्ष की हलकी-सी अनुभूति हो रही थी——जैसे जुगनू से ज्योति निकलती है।

गेस्ट-रूम में वे आमने-सामने बैठ गये। देवदास ने लक्ष्मी की तरफ देखा। उसने अपनी आंखों में लक्ष्मी को भर लिया। वह आज आसमानी रंग की प्लेन साड़ी, बड़ी लापरवाही में पहने थी। शैंपू से धुले सुनहले केश पंखे की हवा में फहरा रहे थे। बड़ी-बड़ी आंखों में प्रकाश तो था, पर रतजगे की थकान के निशान परछाई की तरह भरे थे। नाखून कटे नहीं थे। गले में हमेशा दिखाई देने वाली सोने की चैन नहीं थी। देवदास ने कल्पना की कि नंगी गर्दन से एक पतली-सी वेल लिपटी पड़ी है।

लक्ष्मी ने पूछा, "तुमने तो कहा था कि परीक्षा समाप्त होने के पहले नहीं मिलोगे।"

देवदास ने कहा, "मैं तो अपने को दिखाने आया था।"

लक्ष्मी के होठों पर शरारती हंसी छिटकी, "मगर मुझे देखना नहीं है।" वह फिर बोली, "खैर, पढ़ाई का क्या हाल है? पूरा-पूरा दुहरा लिया होगा न?"

"अभी छुआ तक नहीं है," देवदास बोला।

"सरासर झूठ।"

"तुम्हारी कसम!"

वह बड़ी कसम है। लक्ष्मी की कसम लेकर जो कहे वह झूठ नहीं होता। इन दोनों

न पांच साल पहले यह करारनामा स्वीकार किया था।

देवदास ने पूछा, "तुम्हारी बात तो बेहतर होगी।"

"गायनाकोलाजी पढ़ चुकी। उसमें नये कीर्तिमान स्थापित करने की योजना है।"

"वह तो तुम पहले भी बता चुकी हो ! तुमने मुझसे वादा किया था कि डा. तनूजा के प्रोफेसर डा. चट्टोपाध्याय से भी बड़ी गायनाकोलाजिस्ट बनोगी।"

"वह वादा पूरा करूंगी।"

"तुम तो भारत की सभी पहलौठी स्त्रियों के बच्चे जनाओगी। और, इस तरह तुम भारत माता बनोगी, मेरी पूरी उम्मीद है।"

"भगवान का आशीर्वाद हो।"

"क्या तुम विश्वास करती हो?"

"किस पर?"

"भगवान पर !"

"अवश्य ! वरना ये बच्चे कैसे बाहर आते? चेलविक ब्रिम से बच्चों का बाहर आना——हे भगवान !"

"फिर क्यों कुछ बच्चे खलास हो जाते हैं? उस वक्त भगवान क्या करते रहते हैं?" देवदास ने बहस शुरू की।

"वह तो धोखा है।"

"क्या?"

"भगवान की प्रकृति में भी थोड़ा-सा धोखा है," लक्ष्मी बोली।

"अच्छा ! अच्छा ! तुम, तुम्हारे भगवान और उसका धोखा ! मुझे सब बड़े चोर लगते हैं। चलो ! कुछ खुली हवा में सांस लेने को जी तरसता है।"

"किधर?"

"वहीं।"

"मैं नहीं जाती। मुझे डर लगता है," लक्ष्मी ने कहा, "घर वाले अगर सुनें कि बाहर गयी थी तो..."

"मेरी बला से," देवदास ने कहा।

वे कार्डियोलाजी पार करके और फिर मार्चरी को भी लांघकर पत्थर की सीढ़ियों से नीचे उतरकर नदी-किनारे पहुंचे।

नदी में ज्वार उतार पर था। नदी पूरब की तरफ मुड़ी हुई थी मानो कोई दोनों हाथों से खींचकर ले गया हो।

हिलोरें मानो किसी की प्रेरणा से दबी हुई हैं। गोधूलि वेला के लाल सूरज की थकी रोशनी जलराशि में सांत्वना-सी झलक पड़ी।

कोई दुबली-पतली अधेड़ औरत और ऐसे ही तीन-चार बच्चे नदी-किनारे कपड़े धोते हुए नहा रहे थे। लड़के हृष्ट-पुष्ट तो नहीं थे, पर नदी-जल उनको क्षणिक स्फूर्ति दे रहा था। वे दौड़ते-कूदते जल पर हाथ-पांव मारते तैरते, अपनी स्फूर्ति दिखा रहे थे।

एक मछुआरा किश्ती में बैठा हुआ कांटे से मछली पकड़ रहा था। उसकी बड़ी टोपी उसे और किश्ती को पूरबी हवा में खींचती जा रही थी।

देवदास ने रेतीले तट की ओर इशारा करते हुए कहा, "इसी जगह पड़ी-पड़ी कुंजम्मा ने अकेले बच्चे को जन्म दिया था। सावधानी से कदम रखना।"

लक्ष्मी ने आगे जोड़ा, "उसने अपने बच्चे को इसी रेत में गाड़ भी दिया था।"

देवदास ने कहा, "आओ ! हम पानी में उतरें।"

वे नदी में उतरे। पैर भिगोये। लक्ष्मी की पायल पर जमुना का झाग चढ़ा। उसके टखनों में ठंडक महसूस हुई। कोमल रोएं जाग उठे।

देवदास पैर जल की ओर बढ़ाये गीली रेत पर बैठते हुए बोला, "यहीं बैठें।" लक्ष्मी भी पांव समेटे बैठ गयी। छोटे जीव उन्हें जरा देखने के लिए झांक जाते थे। वे जिध र बैठे थे , उधर एक छोटी लहर बड़ी तेजी से आयी। लक्ष्मी ने साड़ी कुछ ऊपर चढ़ा ली। देवदास ने हथेली में पानी भरके लक्ष्मी की पायल पर चढ़ाया। फिर एक चुटकी धूल लेकर पैर के नाखूनों पर मल दी। उस समय उसके टखने की पेशियां ऊपर की तरफ तन गयीं।

सूरज गाढ़ा लाल और बड़े आकार का होता जा रहा था। दोनों उठे। मौन, पर मन-ही-मन वाचाल।

कुंजम्मा के प्रसव-स्थल रेतीले तट से, नवजात शिशु जहां गाड़ा गया था उस मिट्टी से, पत्थर की सीढ़ियां चढ़कर वे मार्चरी के पास आ पहुंचे।

उस समय पुलिस सर्जन की थकी आवाज सुनाई दी। एकाध सिपाही और रिश्तेदार तब भी बाहर इंतजार कर रहे थे। पोस्ट-मार्टम जारी था।

लक्ष्मी को कन्या-छात्रावास पर छोड़कर देवदास अपने कमरे में पहुंचा तो सात बज चुके थे। थोड़ी देर वह चारपाई पर पीठ के बल लेटा रहा। फिर कुछ सोचा। नींद रोकने की गोली निगली।

टेबिल लैंप का स्विच दबाया। लौ एंड बेल्लि की किताब खोली।...मानव-शरीर के भीतर के अंग देवदास की आंखों के सामने स्पष्ट दिखाई देने लगे। आचार्य चरक एंव सुश्रुत आकाश से पृथ्वी पर उतर रहे थे।

इकतीस

परीक्षा का ज्वर चरम सीमा पर पहुंच गया। थोड़े ही दिनों में डाक्टर होने के लिए भाग्यशाली छात्र मेडिकिल वार्ड के बाहर, किस्मत के खेल का टिकट लेने की तैयारी कर रहे हैं।

घंटी बजी।

द्वार के सामने पड़ी मेज पर छोटे स्टील के बर्तन से देवदास ने एक पर्ची उठा ली। उसमें लिखा था——नंबर छह।

देवदास के पैर छह नंबर बेड की तरफ बढ़े। यह रोगी कौन होगा? उसकी भाषा? उसका रोग?

देवदास ने अपने भावी जीवन के तराजू के बाएं पलड़े में पड़े उस रोगी को देखा। वह पड़े-पड़े एक स्वस्थ व्यक्ति की तरह एक पत्रिका के पन्ने पलट रहा था। रोग का विवरण पूछकर उसे जांच के दाएं पलड़े में वजन के बराबर रखते हुए, यदि तराजू के पलड़ों को बराबर खड़ा कर सका तो विजय निश्चित है। अगर नहीं, तो बाजी उलट जायेगी। फिर शुरू से शुरू करना पड़ेगा।

देवदास बेड के पास पहुंचा तो रोगी ने पत्रिका को अपनी तोंद पर लापरवाही से डालकर इस तरह से देखा कि जैसे कह रहा हो, 'हूं, जनाब क्या चाहते हैं?'

दो घंटे का समय है। उसके भीतर रोगी का पूरा रोग-इतिहास जानकर और जांचकर निदान लिखना होगा।

रोगी को खुश करके ही पूरी बातें समझ सकेगा। इसी की तैयारी में देवदास बड़ी मीठी हंसी हंसा, पर उस हंसी का रोगी पर कोई असर नहीं पड़ा। उसने अधिक गंभीरता से देवदास को देखा।

"नाम क्या है?" देवदास ने पूछा।

तोंद पर पड़ी पत्रिका फिर से हाथ में लेकर उसने उस पर सरसरी निगाह लापरवाही से डालते हुए वह बोला, "आपका इससे मतलब?"

देवदास दंग रह गया। अभी तक ऐसा जवाब नहीं सुना था। कोई भी रोगी रोग के बारे में बताने से नहीं हिचकता। यह तो बिलकुल उलटी हालत है।

"साहब ! वह जानने के बाद ही मुझे आपके रोग का पता लगेगा न !" देवदास ने विनयपूर्वक कहा।

"वाह ! अपना नाम बताऊं तो आप मेरे रोग का पता कर लेंगे? आप तो बड़े होशियार डाक्टर निकले!" पत्रिका अपनी तोंद पर डालकर उसने चश्मे के नीचे से देवदास पर नजर डालते हुए कहा।

"मैं डाक्टर नहीं हूं। डाक्टरी का छात्र हूं," क्षमा-याचना करते हुए देवदास बोला।

"अच्छा, डाक्टरी के छात्र हैं आप ! अरे ! बड़े-बड़े डाक्टर तक जांच करके मेरी बीमारी का पता नहीं लगा सके। फिर तुम्हारा...," उसने बात रोकी।

वह एक मेडिको छात्र के प्रति दिखाने लायक आदर बिलकुल नहीं दिखा रहा था। अगर और कभी 'अरे, तुम्हारा' आदि कहता तो मजा चखाता।

"साहब, आज हमारी परीक्षा है। मुझे आपको जांचकर रोग निश्चित करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी है। कोई गलती हो जाये तो मैं फेल हो जाऊंगा," देवदास ने फिर दीनता से कहा।

"ऐ युवक !" वह उठकर बैठ गया, "बहुत-से लोग मेरी जांच कर चुके। अब मेरे शरीर पर प्रयोग करने की जरूरत नहीं। तुम जाओ, और किसी को जांचो। रोग का पता करके परीक्षा में पास होने की कोशिश करो।"

उसकी पीठ पर किसी का हाथ अचानक पड़ा। देवदास ने मुड़कर देखा। डा. ख्वाजा फरिश्ते की तरह खड़े थे।

"हूं, व्हाट हैपेंड? क्यों, कुछ कर नहीं रहे हो?" डा. ख्वाजा ने पूछा।

निराश होकर देवदास ने कहा, "रोगी बिलकुल सहयोग नहीं दे रहा है।"

"बाबा ! मदद कीजिए। डाक्टर आपकी जांच कर सके !" ख्वाजा ने अनुरोध करते हुए रोगी की पीठ सहलायी।

रोगी हाथ जोड़े उठ बैठा। डा. ख्वाजा की तरफ देखा। केवल औपचारिक वंदना नहीं, उसके चेहरे पर सच्चा सम्मान था।

ख्वाजा ने देवदास का हौसला बढ़ाया——"डरो, मत ! जो भी शक हो, मुझसे पूछ लो।"

डा. ख्वाजा के महत्व को देवदास ने प्रणाम किया। डा. ख्वाजा ही निर्णय करते थे कि किसको परीक्षा में अंक देकर पास कराना है। फिर भी वे कह रहे थे, "यह एक प्रोब्लम केस है, फिर भी कोशिश करो।" ख्वाजा चलते हुए बोले, "विश यू आल सक्सेस।" ख्वाजा की आवाज दूर होती गयी।

'प्रोब्लम केस' सुनकर देवदास की शंका बढ़ गयी। साथ ही मन को संतोष भी हुआ। प्रोब्लम केस विजय में समाप्त होते हैं।

रोगी ने पूछा, "एम.बी.बी.एस. की परीक्षा है न?"

"जी हां," देवदास बोला।

"मुझे प्रायः एम.डी. परीक्षा के लिए ही ले जाते हैं," रोगी कहने लगा, "दो दिन यहां। फिर लखनऊ मेडिकल कालेज में। फिर कानपुर। उसके बाद आगरा, आगे मैसूर व मद्रास। गत सप्ताह बनारस में परीक्षा थी। मेरी जांच जिस छात्र ने की वह फेल हो गया। मुझे बाद में पता लगा। मेरी जांच करके आसानी से पास नहीं हो सकते। मैं ऐसा करने नहीं देता। कारण यह, कि मेरा रोग ही ऐसा है। मैं वर्षों से छात्रों को हराता रहा हूं। तुम डरना मत। तुम अपना काम शुरू करो। पर मैं एक भी क्लू नहीं दूंगा। ऐसा क्लू देना ठीक भी नहीं है न? यह परीक्षा है। इसमें प्रतिभावान विजयी निकलेगा। मूर्ख हार जाते हैं।" उसका भाषण समाप्त होने पर देवदास ने अपना काम शुरू किया। उसने डेढ़ घंटे में रोग-इतिहास, जांच करने की प्रविधि, उसका फल आदि रिकार्ड में लिखा।

रोगी निराला आदमी था। उसने प्रश्नों का नपा-तुला उत्तर दिया। जांच के समय वैज्ञानिक ढंग से सहयोग दिया। समय बिलकुल बरबाद नहीं हुआ।

सब पूरा करने के बाद रोगी बोला, "मैं कई चालें जानता हूं। अपनी नब्ज की गति बढ़ा और घटा सकता हूं। रक्त-चाप को उलट सकता हूं। पेट के भीतर गांठ बना सकता हूं। जानते हो कैसे? एक बड़ा टुकड़ा तमाखू कांख में रखकर कुछ देर प्रतीक्षा करें। बस, शरीर का ताप बढ़ेगा। एक रबड़ की गेंद कांख में रखकर दबाने से नब्ज की चाल रुक जायेगी। छात्र को देखते ही मैं तय करूंगा कि इसे फेल कराना है या पास कराना है। उसके अनुसार अपनी चाल चलूंगा।"

देवदास ने पूछा, "मेरे विषय में कैसी चाल चली? सीधी या टेढ़ी?"

"नतीजा आने दो। तब पता चलेगा," मुस्कुराते हुए रोगी ने कहा।

देवदास ने देखा कि लक्ष्मी जॉन बलदेव मिर्जा की परीक्षा कर रही थी। अकसर नये रोगियों की ही परीक्षा करते हैं। शायद निश्चित रोगी नहीं आया हो। मगर रोगी व रोग को जानने पर भी बड़ा लाभ नहीं होता। ऐसे मामलों में कठोर मौखिक परीक्षा चलती है। प्रश्न पूछते-पूछते तंग करते हैं। फिर भी लक्ष्मी सब-कुछ लिखकर विजयी होने के मूड में खड़ी थी।

तब तक बाहरी परीक्षक और डा. ख्वाजा देवदास के बेड के पास पहुंचे।

डा. ख्वाजा ने देवदास का परिचय दिया, "कुशल छात्र है।"

रोग निर्णय के मामले में देवदास निश्चित निष्कर्ष पर नहीं आ सका था। फिर भी उसने सारी प्रविधि वैज्ञानिक ढंग से समझायी। प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर भी दिया। कुल आधा घंटा परीक्षा चली थी और देवदास को संतोष हुआ।

"योर रोल नंबर?" परीक्षक ने पूछा।

देवदास ने अपना रोल नंबर बताया।

परीक्षक ने कहा, "ओ.के., गो एंड स्लीप !" वे अगले बेड की तरफ बढ़े।

परीक्षक अगर 'गो एंड स्लीप' कहते हैं तो उसका मतलब है कि पास हो गया। हर परीक्षक अपने-अपने ढंग से यह संकेत दे देते हैं।

वार्ड के बाहर लक्ष्मी देवदास की प्रतीक्षा कर रही थी। वह खुश थी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें चमक रही थीं। उससे भी परीक्षक ने कहा होगा——'गो एंड स्लीप।'

लक्ष्मी की आवाज मानो आसमान से उतर आयी——"हां, मुझसे भी यही कहा।"

वह मानो हवा में उड़ रही थी। मेडिसिन की प्रयोग-परीक्षा में पास होने का मतलब था एम.बी.बी.एस. की आधी परीक्षा पास कर लेना। आगे सर्जरी थी। वह तीन दिन बाद थी। पढ़ने व तैयारी करने के लिए काफी समय चाहिए। खूब सोना है।

देवदास ने पूछा, "तुम्हें जॉन बलदेव मिर्जा मिला न?"

लक्ष्मी ने कहा, "मैंने सोचा, मेरे बुरे दिन आ गये। वार्ड का परिचित रोगी परीक्षा में मिले तो वह मेडिको फेल हो जाता है।" लक्ष्मी आगे बोली, "डा. ख्वाजा की सिखाई बातें मेरी उंगली के छोर पर थीं। उनकी मेहरबानी ने बचाया।"

डा. ख्वाजा का मत था कि परीक्षा में छात्रों को फेल नहीं होना चाहिए। वे सफल होने के लिए थोड़ी मदद करते हैं, उनका हौसला बढ़ाते हैं। परंतु कुछ छात्र हठ करते कि 'मुझे मदद न देना, मैं कभी नहीं जीतूंगा।' ऐसे छात्रों को डा. ख्वाजा कैसे मदद देते?

देवदास और लक्ष्मी गलियारे से होकर चल रहे थे। उनके सामने से डा. रवींद्रनाथ, मेरी, मैट्रन, हेलन सिंह और अलफोंसा——सब आये और उन्हें पार करते गये। सब उन्हें देख मुस्कुराये। मैट्रन हेलन सिंह की हंसी में थकान थी। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। अलफोंसा के होंठ मानो कोई मंत्र रट रहे थे। डा. रवींद्रनाथ के हाथ में फाइलों का पुलिंदा, एक्स-रे प्लेटें और मोटी पोथियां थीं। मेरी के होठों पर मुस्कुराहट ही थी। उसने एक कली की बहार की याद दिलायी।

देवदास के मन में उस दुर्लभ मुहूर्त में लक्ष्मी को एक बार साथ सटा लेने की बड़ी अभिलाषा हुई। देवदास यह सोचकर आश्चर्य में पड़ा कि यह प्रेरणा उसे कैसे मिली!

वे उस फाटक पर पहुंचे जहां प्यारेलाल पहरा दिया करता है।

पिता की-सी वात्सल्य भावना से प्यारेलाल ने पूछा, "डाक्टर साहब, कैसा रहा?"

"अच्छा रहा," देवदास ने कहा।

प्यारेलाल ने सफेद भौंहे ऊपर उठकर लक्ष्मी की तरफ देखा।

लक्ष्मी भी बोली, "अच्छा रहा।"

प्यारेलाल ने खुशी जाहिर की।

"मेरी मिठाई पक्की हो गयी।"

लक्ष्मी और देवदास फाटक पारकर विदा हुए और अपने-अपने रास्ते चल पड़े।

एकाएक देवदास को एक बार लक्ष्मी को फिर से देखने की इच्छा हुई। वह मुड़कर

खड़ा हो गया।

लक्ष्मी नजर से ओझल हो गयी। एक पल में वह कैसे नदारद हुई? क्या वह भाग गयी? या तेज हवा उसे ठेलकर ले गयी?

इतनी परेशानी क्यों? आगे भी तो परीक्षा है। नहीं तो कल शाम क्या होस्टल जाकर मिला नहीं जा सकता?

एक अज्ञात दुख देवदास का पीछा कर रहा है। पांच वर्ष जाने कैसे बीत गये! अब सिर्फ उंगलियों पर गिनने लायक दिन रह गये हैं।

लक्ष्मी ऊंचे अंकों से पास होगी। वह अपनी इच्छानुसार गायनाकोलाजी में उच्चतर अध्ययन करेगी। बड़ी गायनाकोलाजिस्ट बनेगी।

देवदास ने अभी तक नहीं सोचा कि उसे भविष्य में क्या होना है या कौन-सा पेशा अपनाना है? उसे मालूम है कि दवा और मौत की दुनिया उसका इंतजार कर रही है। देवदास नहीं जानता कि दवा बड़ी है या मौत? एक दूसरी को निरंतर हराती रहती है।

देवदास को डा. ख्वाजा के शब्द स्मरण हो आये——'शरीर में मौत के प्रवेश करने के बाद दवा का कोई मतलब नहीं रहता। मगर मौत दवा से डरती है। दवा की दुनिया में मौत गिद्ध की तरह मंडराती रहती है। और मौका पाते ही वह झपट्टा मारकर शिकार को उठा ले जाती है।'

'आप डाक्टर लोग, दवा से मौत को हराने की कोशिश न करें। आप लोगों का प्रयत्न दवा से जान को बचाना होना चाहिए। जीवन अंगीठी का अंगारा है। वह जलते-जलते कभी-न-कभी बुझेगा। मगर बुझने तक, जीवन-दीप को दवा से जलाये रखना ही डाक्टर का धर्म है।'

देवदास को पता ही नहीं चला कि वह कब होस्टल आ पहुंचा। रात हो गयी थी। उसने कमरे में प्रवेश कर सिटकनी लगा दी। उसने मन-ही-मन प्रार्थना की कि कोई आकर तंग न करे।

उसने बत्ती जलायी। जूता खोले विना बेड पर पड़े-पड़े देवदास ने ऊपर देखा। वह अपनी आंखों पर यकीन नहीं कर सका। बिजली की बत्ती दुहरी दिखाई देती है। क्या? यह कैसा चमत्कार? एक बत्ती की जगह दो बत्तियां?

'हे भगवान ! क्या हो गया? क्या उसे डिप्लोपिया (इस रोग में रोगी को एक की जगह दो-दो चीजें दिखायी देती हैं) हो गया है?'

देवदास बिस्तर से उछल पड़ा। क्या उसकी आंखों को कुछ हो गया है? नहीं, कुछ नहीं। एक ही कुरसी, दीवार पर एक ही कैलेंडर——सब एक-एक ही हैं।

फिर से बेड पर लेटा और बत्ती की तरफ देखा। वह पहले की तरह दो-दो में विभक्त दिखाई देती है। बत्ती दो खंडों में जलती है।

देवदास उठकर अपने कमरे में टहलने लगा। तभी उसने कमरे में अपनी परछाईं देखी। उसकी परछाईं का सिर नहीं है।

बेसिर की परछाईं देखकर देवदास स्तब्ध रह गया।

मृत्यु के निमित्त देखे।
मस्तकहीन निज छाया देखी
एक दीप दो दीप दिखाई दिया !
एक ही छाया दुहरी दिखाई पड़ी !

बत्तीस

रानी आचारी का पैगाम लिये हुए उनका एक संदेशवाहक होस्टल आया। रानी आचारी श्री आचारी की धर्मपत्नी हैं।

देवदास ने एक दीप में दो दीप और अपनी बेसिर की परछाईं को देखा, तो पूरी रात मानसिक विभ्रांति में बितायी। सपने-ही-सपने। न जाने क्या देखता-सुनता रात भर वह जागता रहा। उषा-काल में ही आंखें लगी थीं।

दरवाजे पर दस्तक सुनकर देवदास ने चिट्ठी हाथ में लेकर खड़े संदेशवाहक को देखा। उसने काला लंबा चोगा पहना था। जरा विचित्र दूत लगा।

खत का मजमून था :

"श्री देवदास,

चिट्ठी लाने वाले संदेशवाहक के साथ मेरे घर तक आना। तुरंत, जरूरी बात करनी है। आशा है, देर न करोगे।

—रानी अम्मा

सब लोग श्री आचारी की पत्नी को 'रानी अम्मा' कहकर पुकारते थे। रानी अम्मा और टेरामाइसिन भवन सबके बीच चर्चा का विषय हैं। रानी अम्मा श्री आचारी के घर पर एक अलसेशन का अभाव खुद दूर करती हैं। श्री आचारी से लेकर विभाग का चपरासी तक उनसे डरते हैं। रानी अम्मा का नाम सुनने पर बच्चे रोना बंद करते हैं। ठंडा पानी भाप बन जाता है।

देवदास ने रानी अम्मा के विषय में बहुत कुछ सुन रखा था। रानी अम्मा श्री आचारी को यहां तक सलाह देती थीं कि सर्जरी परीक्षा में किसको फेल करना है।

दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर, देवदास ने पकड़े बदले और श्री आचारी के घर की तरफ चल दिया।

बरामदे में कोई नहीं था। मोटर भी नहीं। मतलब है कि आचारी घर पर नहीं है। घंटी बजायी तो एक लहर की तरह रानी अम्मा बाहर आयीं। उनका गोल चेहरा लाल था। एक चीनी महिला की याद दिलाती उनकी आंखें देवदास पर टूट पड़ीं। छोटी आंखों की दृष्टि तीक्ष्ण थी। कंधे तक कटे केश। स्लीवलेस ब्लाउज के नीचे थुलथुली बांहें। उन्होंने हाथ उठाकर विजिटर्स रूम की ओर इशारा किया। उनकी हथेलियां छोटी थीं। थोड़ी देर

वैसी ही खड़ी रहीं। कुछ नहीं बोलीं। इशारा समझकर देवदास विजिटर्स रूम के भीतर जा बैठा। पीछे रानी अम्मा पहुंचीं और दरवाजा बंद कर दिया।

प्रकाश होने के बावजूद देवदास को लगा कि कमरे में अंधेरा छा रहा था।

देवदास कुछ पूछ नहीं पा रहा था, कुछ बोल भी नहीं पा रहा था। कोई अज्ञात शक्ति उसका नियंत्रण कर रही थी।

क्या होगा? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मानो एक बलात्कार का गुलाम होने की प्रतीक्षा में बैठे देवदास की सारी ताकत जवाब दे गयी।

रानी अम्मा ने एकाएक पूछा, "क्या तुम देवदास हो?" उनकी आवाज रूखी थी। औरत की आवाज नहीं थी।

"जी हां," देवदास ने कहा।

"तुम्हारा गांव कहां है? धर्म कौन-सा है? जाति कौन-सी है? परिवार? तुम्हारा बाप कौन है? क्या करता है?" एक ही सांस में उन्होंने बहुत सारे सवाल किये।

रानी अम्मा हांफ रही थीं।

"श्री आचारी की बेटी से मुहब्बत करने की तुम्हारी लियाकत क्या है? क्या तुम लक्ष्मी के एक रोंए की कीमत के भी बराबर हो?"

रानी अम्मा की सांस घुट रही थी। इसके बावजूद वे हकलाती हुई कहने लगीं, "हाथी के पीछे महावत की तरह तुम उसके पीछे चलते हो। यह खबर कुछ समय से हमने सुनी थी। अगर पहले ही सुन लेती तो हम तुम्हें बचा सकते थे।" थोड़ी देर वे खामोश रहीं।

फिर बोलीं, "मगर अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। अब भी तुम बच सकते हो ! अपनी किस्मत समझो कि श्री आचारी के कानों में इसकी भनक नहीं पड़ी है। वह आदमी अगर जान ले तो बरबाद हो जाओगे और मेरी बेटी भी तबाह होगी। इतने दिनों से क्या तुम आचारी को समझ नहीं सके?

"क्रोध में आने के बाद उस आदमी के पास दया नामक चीज फटकने से डरेगी। वह सब कुछ तहस-नहस कर देगा। कोई सर्वनाश उसके लिए समस्या नहीं है।"

रानी अम्मा का क्रोध कुछ ठंडा हुआ। आवाज में कंपन कुछ कम हुई।

"खैर, तुम एक काम करो। आज से तुम मेरी बेटी की तरफ आंख उठाकर न देखना। रास्ते में कहीं मिल भी जाये तो पहचानने के आसार तक न दिखाना। अपने मन में जो भी कोमल भाव हो उसे मिट्टी में गाड़ दो, तभी तुम बचोगे। और वह भी। तुम युवक हो, अक्लमंद भी हो। परीक्षा पास करके अपने स्तर के लायक किसी लड़की को ब्याहकर आराम की जिंदगी बिताना। सारी शुभकामनाएं!"

देवदास सब-कुछ सुनते हुए आंखें जमीन पर गड़ाये बैठा रहा। रानी अम्मा की बातें मानो एक कान से भीतर पहुंची और दूसरे कान से निकल भी गयीं। देवदास की सूरत

यही बता रही थी।

देवदास पर आंखें गड़ाये रानी अम्मा ने पूछा, "क्यों, तुम कुछ बोल नहीं रहे हो?"

बड़े संतुलित भाव से देवदास ने कहा, "सब कुछ आप बता चुकी हैं न?"

"तो तुम्हारा इरादा क्या है? बचोगे या बरबाद होना चाहोगे?" पता नहीं लग रहा था कि रानी अम्मा की आवाज में गुस्सा था या विनय! तभी पोर्टिको में मोटर के आ जाने की आवाज सुनाई पड़ी।

रानी अम्मा चौंक उठीं।

उन्होंने दरवाजा खोला।

श्री आचारी अपनी अटैची लिये बरामदे पर चढ़े। देवदास को लगा कि वे कॉमिक पुस्तकों के राक्षस की तरह दैत्याकार होते जा रहे थे।

"गाड़ी छह घंटे लेट है।"

आचारी ने विजिटर्स रूम की तरफ देखा। देवदास को देखा तो वे बोले——"ओह! आप यहां पहुंच गये? पर मैंने इतनी जल्दी अपेक्षा नहीं की थी। वैसे मेरा पूरा विश्वास था कि आप यहां आयेंगे।"

बड़े अविचलित भाव से श्री आचारी अंदर चले आये।

रानी अम्मा का चेहरा कागज-सा सफेद हो गया। क्या वे बेहोश हो गिर पड़ेंगी? गिरें तो गिरें। देवदास तेजी से कमरे से बाहर निकला। फाटक पारकर सड़क पर पहुंचा। निकलते ही भागा।

श्री आचारी के घर का माहौल पहले से खराब था। उन्होंने क्रोधाकुल हो पूछा, "उसे किसने यहां आने दिया? तुमने या लक्ष्मी ने? मैं यही जानना चाहता हूं।"

आचारी का गुस्सा बढ़ रहा था, "मेरे कानों में भनक तो पड़ी थीं। मगर मैं सबूत के इंतजार में था। मुझे प्रमाण मिल गया।"

रानी अम्मा ने यथार्थ बातें समझाने की कोशिश तो की, मगर आचारी कुछ सुनने के लिए तैयार नहीं थे। वे ऊदबिलाव की तरह कमरे में तेजी से चहलकदमी कर रहे थे।

आचारी ने कहा, "लड़के प्यार जरूर करें। मुझे एतराज नहीं। मगर मेल होना चाहिए।"

रानी अम्मा कुछ कहने लगीं।

"जाओ मेरे सामने से!" आचारी ने अपनी स्टडी में प्रवेश कर, दरवाजा बंद कर लिया।

श्री आचारी जीवन में हारते जा रहे थे। पिछले दो तीन-मास से उनकी तबियत ठीक नहीं। गले में तकलीफ है। भोजन करते समय कुछ अटकता है। वे अपने कालेज के मित्रों से बात छुपाकर दूरस्थ किसी मित्र डाक्टर से सलाह लेने निकले थे। तभी गाड़ी बहुत लेट हो गयी। यात्रा और एक दिन के लिए स्थगित कर घर लौटे तो वहां भी अपशकुन।

कांच की अलमारी से आचारी ने गजलों की पुस्तक लेकर सामने रखी और पढ़ने लगे। मगर वे एक भी गजल पढ़ नहीं पा रहे थे। मन भारी था। कहीं श्रुति-भंग हो गया। अंतिम दिनों की यादें दिमाग में मंडराने लगी हैं।

आचारी ने बाहर आकर ऊंची आवाज में बुलाया——"लक्ष्मी !"

लक्ष्मी आचारी के सामने आकर खड़ी हुई। वह भीगी बिल्ली-सी खड़ी थी। उनींदी बड़ी-बड़ी आंखों में संसार का सारा शोक छाया था। जज के सामने फैसला सुनने तैयार खड़े मुजरिम की तरह वह पिता के सामने ध्यान से खड़ी थी। कौन उसके मन की पुकार सुने?

"लक्ष्मी !" दृढ़ स्वर में आचारी ने कहा, "तुम्हारी पढ़ाई बंद ! कल से कालेज मत जाना। मेडिकल कालेज में कदम नहीं रखना...!"

लक्ष्मी धरती की ओर देखती रही।

अभियोगपत्र सुनाने के बाद न्यायाधीश जैसे अपराधी से पूछते हैं, वैसे पूछा, "कुछ कहना चाहती हो?"

हकलाते हुए लक्ष्मी बोली, "अब परीक्षा ही बची है। रेगुलर क्लास खतम हो चुके।"

"तुम परीक्षा में न बैठना। डाक्टर भी न बनना। तुम्हारे नसीब में वही लिखा है।" आचारी ने आगे कहा, " मैं आज तक आश्चर्य में पड़ा था। तुम्हारी जन्मपत्री में कहीं नहीं लिखा है कि तुम डाक्टर बनोगी। जन्मपत्री को बदलने की खातिर मैं नक्षत्रों की गति में परिवर्तन नहीं ला सकता।"

रानी अम्मा बीच में बोलीं, "अब दो-तीन परीक्षाएं ही बची हैं न? जो भी हो, उसे डिग्री कंप्लीट करने दीजिए।"

आचारी बोले, "रानी अम्मा, मेहरबानी करके अपने कमरे में जाइए। इसमें दखल मत दीजिए। अगर रानी अम्मा अच्छी होतीं तो ये सब न होता।"

श्री आचारी के फैसले कभी नहीं बदलते। नदी में पुल बनाने के जैसे होते हैं।

आचारी ने फिर कहा, "रानी अम्मा, कमरे में जाइए। लक्ष्मी, तुम भी जाओ ! मुझे किसी से अधिक नहीं बोलना है।"

आचारी अकेले हो गये। वे अपने आपसे बोले, "जन्मपत्री बदलने वाला मैं कौन हूं?"

वह घर खमोश हो गया। कुहासे की तरह घर को मौन निगल गया।

रानी अम्मा ने अपने कमरे में आकर गहनों की पेटी खोली और सब गहने बिस्तर पर डाल दिये। घर में जब बड़ा द्वंद्व चलता है, तब रानी अम्मा यही करती हैं। एक-एक गहना बारी-बारी से पहनकर अपनी छवि आईने में देखी। आखिर सारे गहने पहन, माथे पर टीका लगाये बिस्तर पर पीठ के बल लेटी पता नहीं क्या रट रही थीं। रटते-रटते वे

सो गयीं। कमरे में रानी अम्मा के खर्राटे प्रतिध्वनित होने लगे।

लक्ष्मी ने कमरे में प्रवेश करके आइने में देखा। उसने दर्पण में ऐसी कन्या का मुखमंडल देखा, जिसने सारे संसार का शोक स्वयं आत्मसात कर लिया हो। उसका चेहरा लाल हो गया। आंखें भी लाल हो गयीं। चारों तरफ से पानी के स्रोत फूट पड़े। आंसू की अविरल धारा बह निकली। वह अपने आंसुओं को देखती खड़ी रही। लक्ष्मी ने अपने को समझाने-मनाने की कोशिश की। पर उससे नहीं हो पाता।

आचारी ने भी अपने बंद कमरे में बैठे हुए दर्पण में देखा। उन्होंने दर्पण में गहने या आंसू नहीं देखे। उन्होंने आइने में अपने गले को देखा। आचारी पूरा मुंह खोले अपनी कंठनली को दर्पण में देख रहे थे। वे इस कंठ के भीतर त्रिभुवन तो देख नहीं सके, मगर उस कंठनाल में अंकुरि॰ होने वाले किसी रोग के फूलों को देख सके।

दूसरे दिन दोपहर को आचारी ने लक्ष्मी को आवाज दी, और कहा, "लक्ष्मी, तुम अपनी पसंद के सुंदर कपड़े पहनकर, पांच बजे तक तैयार रहना। दो-तीन मेहमान आने वाले हैं।"

शाम को पांच बजे वे आये—एक मां, एक मामाजी, एक बेटा।

अलंकृत अतिथि-कक्ष में वे बैठे। आचारी और रानी अम्मा उनके सामने बैठे। उन्होंने मौसम की बातों से वार्तालाप शुरू किया।

मां ने छोटे तौलिये से माथा पोंछते हुए कहा, "तेज गरमी है।"

मामाजी ने कहा, "गरमी गत वर्ष से अधिक है। कमरे के भीतर बैठना मुश्किल है। बाहर भी चला नहीं जाता।"

रानी अम्मा ने कहा, "मैंने जिंदगी भर इतनी तेज गरमी के दिन नहीं देखे।"

श्री आचारी ने अपनी टिप्पणी दो शब्दों में सीमित की, "बिलकुल ठीक।"

बेटा कुछ नहीं बोला। उसके होंठों पर सिर्फ मुस्कुराहट थी।

मां मोटी-ताजी मारवाड़ी महिला हैं। प्रौढ़ होने पर भी उनमें यौवन शेष है। उनकी प्रकृति और चाल में जवानी है। उनके पहने कपड़ों व गहनों में भी जवानी है। उनके मुखमंडल की कुछ लकीरें उनके हृदय की कठोरता की घोषणा करती हैं। आंखों में भी कुछ क्षणों में क्रूरता दिखाई दी। उनके पति कई वर्ष पहले मर चुके थे।

स्त्री के लिए यात्रा एवं स्वागत-सम्मान के दौरान एक अधेड़ आदमी का साथ अनिवार्य होता है। इसलिए मामा साथ आये। वे अवधि पूरी करने के पहले पलटन से अवकाश-प्राप्त कर्नल हैं। न सिगरेट, न शराब; शुद्ध शाकाहारी हैं।

बेटा स्वर्गीय पिता के बहुत बड़े कारखाने का अकेला मालिक है। हजार लोग उस कारखाने में काम करते हैं। वहां ताले बनते हैं। उस कारखाने के ताले दुनिया भर में मशहूर हैं। एक बार बंद करने पर किसी तरह नहीं खुलने वाले ताले; सिर्फ अपनी चाभी से खुलेंगे।

बेटे की पोशाक बड़ी शानदार थी। वह विलायती लंच के लायक ड्रेस में था। उसकी चाल मशीनी थी। कुरसी पर हाथ रखना, बातचीत सुनने की दिशा में दृष्टि डालना, सिर घुमाना, हंसना——सब नपे-तुले ढंग से। उसने एक हलका टेरिकाट सूट पहना था। घड़ी वाली सोने की जंजीर से सोने का धागा लटक रहा था। मूंगे की दो-तीन अंगूठियां उंगलियों की शोभा बढ़ा रही थीं। किस्मत से नाक पर कील नहीं थी।

सेवक ने सूचित किया कि डाइनिंग रूम में सब-कुछ तैयार है।

दस आदमियों के बैठने योग्य डाइनिंग टेबिल थी। एक तरफ रेशमी कुशनों से दो कुरसियां सजा रखी थीं। रानी अम्मा ने लड़के को एक कुरसी पर बिठाया।

फिर आवाज दी——"लक्ष्मी !"

अपने प्रिय और सुंदर वस्त्र पहनकर लक्ष्मी आयी। रानी अम्मा ने उसे दूसरी कुरसी पर बिठा दिया।

लक्ष्मी की स्थिति का वर्णन न करना ही बेहतर है। वह एक पालतू जानवर की तरह कुरसी पर बैठी रही।

वे खाने-पीने लगे।

डाइनिंग टेबिल पर बातचीत का विषय मौसम से हटकर असाध्य रोगों की ओर बढ़ा। कैंसर पर चर्चा चली। कर्नल अपनी बड़ी बहन की दुर्दशा का वर्णन करते गये जो कैंसर से अंतिम दिनों में बड़ी व्यथा झेलती रही। इसी बीच मां ने बंगाली हलवे की तश्तरी खाली कर दी।

कर्नल मामा मां की ओर इशारा करके बोले, "आपको जरूर डायबिटीज हो जायेगी।"

मां बोली, "मैं अभी भी उसके कब्जे में हूं।"

"क्या इस पर भी इतना...?"

मामा को वाक्य पूरा करने दिये बिना मां ने कहा, "मिठास भले ही मुझे छोड़े, पर मैं मिठास को नहीं छोड़ूंगी।"

सभी हंस पड़े।

क्या लक्ष्मी हंसी?

सजा हुआ बेड-रूम दिखाकर आचारी ने उस लड़के और लक्ष्मी से कहा, "अच्छा, तुम दोनों उस कमरे में जाओ। वहां बैठकर कुछ बातचीत कर लो।"

लड़का पहले उठा।

फिर लक्ष्मी उठी।

मार्च-पास्ट की तरह वे दोनों आगे पीछे बेड रूम की ओर चले। लड़के ने कमरे का दरवाजा धीरे से बंद किया। एक बड़ा ताला लगने की आवाज गूंज उठी।

तैंतीस

देवदास लक्ष्मी का पत्र फिर से पढ़ने लगा। तभी दरवाजे पर दस्तक सुनी। देवदास ने खत तहाकर तकिये के नीचे रख दिया।

मुत्तुरामन इंजेक्शन की दवा लेकर देवदास के कमरे में पहुंचा। दवा लेकर देखने के बाद देवदास ने पूछा, "अरे, यह टी.बी. का इंजेक्शन है, किसके लिए है?"

"मेरे लिए," उसने कहा।

मुत्तुरामन होस्टल के फाटक के पास पान-सिगरेट की दूकान चलाता है। देवदास हर दिन फाटक पार करते हुए मुत्तुरामन से मिलता है। दूकान पर उसके अलावा पत्नी और दो-तीन संतानें रहती हैं। सब कोई-न-कोई काम करते रहते हैं। उसकी दूकान पर सिगरेट, पान, साबुन, पाउडर, डबल रोटी, मक्खन, चाकलेट, अखबार––सभी चीजें हैं। पांच-छह पैरगाड़ियां किराये पर देने के लिए रखी रहती हैं। मुत्तुरामन को देखने पर कभी महसूस नहीं होता कि वह तपेदिक का रोगी है। मगर दूसरा पहलू यह था कि उसके ओठों पर हर क्षण बीड़ी जलती थी। लगता कि वह होठों पर जलती बीड़ी लिये ही पैदा हुआ है।

मुत्तुरामन ने कहा, "नब्बे इंजेक्शन लेना होगा, डाक्टर सर!"

"ये सब चढ़ाने पर यह शरीर किस काम का रहेगा?" देवदास ने पूछा, "रोग से छूटना है न?"

मुत्तुरामन ने प्रार्थना की, "अस्पताल में रोज जाकर इंजेक्शन नहीं लेना है। मैं यहां रोज आऊंगा। मुझे इंजेक्शन देना।"

देवदास ने अभी तक किसी को इंजेक्शन नहीं दिया है। ये सब अनुभव हाउस-सर्जन होने के बाद ही होते हैं। फिर भी इंजेक्शन देने की इच्छा थी। जीवन में पहली बार एक रोगी दवा लेकर इंजेक्शन के लिए आया था। इससे इनकार नहीं करना चाहिए। जो होना है होता रहे। सिरिंज और सुई दराज में थीं।

मुत्तुरामन अपनी रामकहानी सुनाने लगा।

सिरिंज गरम हो गयी तो देवदास ने हीटर बुझाया। उसने सिरिंज में सुई लगाकर डिस्टिल्ड वाटर की शीशी फोड़ी। कमरे में कांच के छोटे टुकड़े बिखर गये। इंजेक्शन शीशी में पानी भरा और मिलाना शुरू किया। देवदास ने मुश्किल से पानी में घुला स्ट्रेप्टोमाइसिन

सिरिंज में भरा। देवदास के हाथ में पहली बार आयी दवा ट्यूबरक्लोसिस की थी।

देवदास को एक नौसिखिये की-सी कंपकंपी और घबराहट महसूस हुई। मांस में सुई लगायी तो हाथ उसे आगे बढ़ाने में हिचकता रहा। कच्चे गोश्त में सुई चढ़ाने की बात देवदास को बेचैन कर रही थी। फिर भी उसने मुत्तुरामन को दवा चढ़ा दी। कंधे में सुई के चुभते समय मुत्तुरामन वह हलका-सा दर्द दांत भींचकर सहन करता रहा। देवदास बड़ी हमदर्दी से उसे देखता रहा।

डाक्टरी की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पहले ही देवदास डाक्टर हो गया। वह एक स्मरणीय दिन था। उसने कंधा सहलाते हुए मुत्तुरामन को श्रद्धापूर्वक देखा।

मगर देवदास अधिक देर तक खुशी मना नहीं सका। उसकी लक्ष्मी का जीवन एकदम गड़बड़ हो गया है। उसने तकिये के नीचे रखा लक्ष्मी का खत निकाल लिया।

लिफाफे के ऊपर लक्ष्मी ने लिखा था, "यह लिफाफा आखिरी दिन की परीक्षा के बाद ही खोलकर पढ़ना। यह मेरी अंतिम प्रार्थना है।"

देवदास के मन में धीरज नहीं था। अंतिम परीक्षा में अभी कई दिन शेष थे। देवदास एक क्षण भी प्रतीक्षा नहीं कर सका। उसने लिफाफा खोलकर कई बार पत्र पढ़ा। वह फिर से पढ़ रहा था। लक्ष्मी ने सुंदर अक्षरों में लिखा था——

> मैं नहीं जानती कि यह पत्र कैसे शुरू करूं। इस पत्र के दोनों छोर नहीं मिलते। हम दोनों की जिंदगी के समान। या हम दोनों के रिश्ते की तरह।
>
> हम पहले पहल कब मिले? जरूर पिछले जन्म में ही। वरना मैं इस जन्म में देवदास से इतनी घनिष्ठ न हो पाती। मैं एक साथिन की तलाश में थी कि हमारे नामों के आद्यक्षरों ने हम दोनों को मिला दिया।
>
> मैं क्यों मर्दों का साथ पसंद नहीं करती थी? हो सकता है, मैंने जिस पिता को आदर्श पुरुष समझ रखा था उसके बुरे काम मुझे निराश कर गये हों। प्रत्येक बालिका का प्रथम आराध्य पुरुष उसका पिता ही होता है। उसका पिता, बचपन का साथी, प्रेमी, पति, अभिभावक, मालिक——सब कुछ उसे इस संसार को प्रदान करने वाला पिता ही होता है। मैं अपने पिता में बचपन का साथी, पति, अभिभावक और मालिक पाने की कोशिश करती थी। लेकिन मैं उसमें किसी को पा नहीं सकी, सिर्फ मालिक को छोड़कर। निराशा ही इसका कारण हो सकती है। उसी ने मेरे अवचेतन में पुरुष के प्रति विद्वेष उत्पन्न किया होगा।
>
> अपने मस्तिष्क की स्थिति के विषय में क्या कहूं? मैं मोटे पत्थरों से भरी कच्ची देहाती सड़क पर बैलगाड़ियों और मवेशियों के चलने की

आवाज ही सुनती हूं। फिर भी उसके बीच हमारी मुलाकात की आकस्मिकता का स्मरण कर दुख हो रहा है। हम पहले-पहल कहां मिले थे——एनाटमी हाल में? रैगिंग कक्ष में? याद नहीं आ रहा। किसी भी हालत में हमारे मिलने के योग्य स्थान पर ही मिले थे।

हम अंधेरे में टटोलते फिरते हैं। पहचानने में समर्थ न होने के कारण हमारे स्नेह-पात्रों की हानि होती है, न जानने से अफसोस होता है। मगर असल बात वह नहीं है। असल बात यह है कि उन भूलों और दुखों के बीच में भी हम परस्पर प्यार करते हैं। हम संसार में आये हैं, यहां कई लोगों से मिलते हैं। फिर समय हमें खींचकर ले भी जाता है। ऐसा कितनी ही बार घटित हो चुका है ! आगे भी कई बार यह दुहराया जायेगा। यह सुख और दुख दोनों मिलकर ही जीवन को पूर्ण बनाते हैं। मगर मेरा खयाल है कि ये शोक व दुख जीवन की यात्रा में बाधा डाल सकते हैं।

मैं दूसरों की सहज जीवन-यात्रा में बाधा डालकर सब की हमदर्दी को शामिल करना नहीं चाहती। अपने लिए किसी को मेरे रास्ते से हटने का अनुरोध नहीं करूंगी। सब अपनी-अपनी इच्छानुसार चलें। सबके साथ स्वयं मैंने भी चलने का निश्चय कर लिया है।

अपना दुख मैं खुद सहन कर लूंगी। बाहरी लोगों को उसकी असली हालत का पता नहीं लगेगा। बाहरी ढाढ़स और हमदर्दी के शब्द मुझे अपमानजनक लगेंगे। कुछ दिनों तक किसी को, यानी मेरी साथिनों को, मेरे पास इस मतलब से नहीं भेजना कि वे मुझे ढाढ़स दे सकेंगी।

मेरा इरादा था कि बड़ी डाक्टर बनकर पिताजी के पापों की मुक्ति के लिए या उनके अपराधों के प्रायश्चित के रूप में निस्वार्थ सेवा करनी चाहिए। मगर मुझे स्पष्ट मालूम हो गया कि अपनी आशाओं से पिता का शाप ही अधिक बलवान है। मेरा ध्येय था, गायनाकोलाजी में सारी-की-सारी बातें सीखना, अनुसंधान करना। अब तो ध्येय की पवित्रता ही शेष रह गयी। सारे दुखों को भुलाने पर भी यह पीड़ा मुझे कभी छोड़ेगी नहीं। जब सभी दुख अनुभव करते हैं, तब अकेले उससे मुक्ति पाने की आशा रखना उचित नहीं है। इसलिए अपने व्यक्तिगत दुख की पीड़ा वहन करते हुए जीवन की यात्रा जारी रखूंगी।

तुम इसे विरह-व्यथा से तड़पती किसी युवती का खत न समझ बैठना। इसमें यथार्थ विरह का रुदन बहुत कम है। शेष रुदन शब्दों के बीच में तड़प रहा है।

मैं मौत की घंटी सुन रही हूं। मुझे लगता है कि जीवन का घड़ियाल सुस्त-सा हो गया है। समय गतिशील नहीं है। फिर भी मैं अपने कमरे में बंद होकर लेटी हूं। मुझे नहीं लगता कि कोई जिम्मेदारी का काम आगे मेरे लिए करने को शेष है।

यह चिट्ठी पढ़ते समय तुमने परीक्षाएं समाप्त कर ली होंगी और निश्चिंत होंगे। इसीलिए मैंने लिफाफे पर यह महत्वपूर्ण सूचना लिखी है। उसे कोई आदेश, तिरस्कार या धृष्टता नहीं समझना। बेहद प्यार से लिखा है।

हम दोनों ने करीब पांच वर्ष एक-दूसरे के अत्यंत आत्मीय होकर समय बिताया है। हमारा नाता कैसा था? वह प्रेम था? स्नेह? वासना या और कुछ? जो भी हो, उस संबंध की सबसे बड़ी विजय यह रही है कि हम दोनों ने एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचान लिया, समझ लिया।

इस अर्से में तुमने मुझे एक बार भी नहीं छुआ। एक बार चुंबन तक नहीं किया। वासना-भरे मन से देखा तक नहीं। हमारे संबंध की सबसे बड़ी विजय भी वही है। इस विजय का कारण यह है कि हम सस्ती भावुकता का शिकार नहीं हुए। आखिर मैं उस स्थान पर पहुंच गयी हूं जिसे आगे लोग मेरा स्थान बतायेंगे। आगे, मैं लगातार कई परिवर्तनों के अधीन हो सकती हूं। फिर भी मैं आत्मविश्वास नहीं छोड़ूंगी। इस परिस्थिति में मुझे अनुभव हो रहा है कि मेरे ही मन में दो विपरीत शक्तियां सक्रिय हैं। उनमें से एक शक्ति मुझे समाप्ति की ओर ले चलती है। दूसरी मुझे विश्राम नहीं करने देती। अतएव एक दिशा में पीड़ा अनुभव महसूस होती है, दूसरी दिशा में चेतना। कभी आशा, कभी निराशा। यही आज की मेरी दशा है।

कोई भी बात दूसरों को समझाना बड़ा कठिन होता है, क्योंकि मानव स्वयं आत्मप्रवंचना को नहीं पहचानता। कारण यह कि आत्मप्रवंचना के लिए अधिक प्रयत्न करना पड़ता है। मानव उससे अधिक प्रेम भी अनुभव करता है।

ये सारी बातें पढ़कर यह नहीं समझना कि मैं जीवन-व्यथाओं से दूर भागना चाहती हूं। वही जीवन-पथ श्रेष्ठ पथ है। नदी की धारा में तिरते जाने से नदी को लांघना संभव नहीं। नदी-जल में कूदकर छाती और बांहों से धारा के विरुद्ध तैरने से ही दूसरे पार पहुंच सकती हूं। नदी पार करने की यह प्रक्रिया जीवन को समझा-बुझाकर अपना लेने के समान है। मैं अब हाथ-पांव मारती तैर रही हूं। इसका यह अर्थ नहीं कि अब बुद्धि के प्रौढ़

हो जाने से मैं सारी बातें समझ गयी हूं। मैंने जीवन के कंधे पर अपने तुच्छ दुख का भार रख लिया है। इससे जीवन एक बोझ बना है। जिस जीवन को खेल की तरह हलका होना था, उसके पैरों को मैंने काट डाला है।

मुझे कभी छुटकारा नहीं मिलेगा। औसतन लड़की की जिंदगी ही ऐसी होती है। पिता उसके जीवन का पहला खंड बर्बाद कर देता है। शेष खंड पति बर्बाद करता है। इसलिए उसके आकाश में मुक्ति का उदय कभी नहीं होता। यही नहीं, मैंने अपने जीवन के पथ पर कर्तव्य की टेक बनायी है। इसका निर्माण भी पिता ने ही मुझे सिखाया है। इसलिए मेरी अकेली आशा अगला जन्म है। किंतु यदि मैं अगले जन्म में भी मनुष्य ही के रूप में जन्म लूं, तो !

इस छोटे-से कागज पर मैं बेसिर-पैर की बातें लिखती जा रही हूं। किसी तरह लिखकर इसे समाप्त करना चाहती हूं। फिर भी इन पंक्तियों में मेरे दुख का चीत्कार अव्यक्त रूप से छिपा है। ऐसी स्थिति में अपने दिल से समझौता करना चाहती हूं।

उसका परिणाम कल रात सिद्ध हो गया। कल की रात मेरी प्रथम सुहाग-रात्रि थी। मैंने जीवन में पहली बार एक पुरुष की दासता स्वीकार की। अपने माता-पिता द्वारा मेरे लिए निश्चित पुरुष की। आगे संसार इसी पुरुष को मेरा पति मानेगा।

वे सुंदर हैं, धनी हैं। उनकी कमाई का स्रोत ताला बनाने का कारखाना है। आगे मेरा जीवन उनके निर्मित ताले के समान रहेगा। मेरी सारी अभिलाषाएं उस ताले में बंद हैं। वरना कल रात मुझसे बलात्कार न किया जाता।

उन्होंने मुझसे करुणापूर्वक ही व्यवहार किया। मेरे कपड़े खींचे या उधेड़े नहीं, न मुझे बिस्तर पर धकेला ही। अपने कोमल शब्दों से उन्होंने मुझे हराया और अपने आदेश का अनुसरण कराया। स्वयं मैंने अपने को संपूर्ण रूप से नग्न किया। आज्ञाकारी जानवर की तरह मैं बिस्तर पर लेट गयी। मैंने कल जीवन में पहली बार फिजियोलाजी लैब के ऊद बिलाव की गंध वाले शुक्ल की गंध पहचानी।

इस प्रकार मैं पूर्णतया दूसरे की संपत्ति हो चुकी हूं। तथापि जब कभी वे मुझे भंगते रहेंगे, हर क्षण मेरे मन में देवदास का चित्र रहेगा। यदि कभी मेरे एक बच्चा होगा तो उसकी मुखाकृति देवदास की होगी। मैंने कामशास्त्र में कहीं पढ़ा है कि जो स्त्री संभोग की घड़ी में अपने प्रेमी का चेहरा याद

करती है, उस संभोग में जन्म लेने वाले बच्चे की मुखाकृति उसी पुरुष की हो सकती है। वह शास्त्रीय सिद्धांत मेरी रक्षा करे ! अगर यह सच निकले तो मैं हर्षित होऊंगी। वह हर्ष, मुक्ति का हर्ष होगा। यह पूर्णतः अध्यात्मिक बात है।

मैं पत्र समाप्त करती हूं।

उंगलियां आगे बढ़ने से इनकार करती हैं। अक्षर कांप रहे हैं। मैं शापित भट्टी पर पड़े लोहे की तरह गल रही हूं। खुली खिड़की से आसमान की लकीरों की ओर देख रही हूं। बादल घिर रहे हैं। पर बारिश के आसार नहीं हैं। अगर कोई पानी नीचे गिरा भी तो वह मेरा अश्रु-कण होगा।

सोच नहीं पाती। लिखना भी मुश्किल है। इसलिए इतना ही। हमेशा के लिए इतना ही।

तुम्हारी अपनी
लक्ष्मी।

एक शब्द और,

देवदास, तुम कर्मठ हो। विष्णु के लिए गरुड़ की तरह संसार तुम्हारे लिए सवारी का साधन भी है। उस सवारी पर तुम्हारा चढ़ना ही पर्याप्त है। संसार तुम्हें खुद ले चलेगा। कारण यह कि तुम ऐसे यात्री हो जिसने अपना वजन कम कर दिया है।

चौंतीस

मेडिसिन, सर्जरी, सोशल एंड प्रिवेंटिव मेडिसिन, आप्थेमोलाजी आदि की परीक्षाएं समाप्त हो गयीं। देवदास ने लिखित व मौखिकी——सब में अच्छे ढंग से किया है, अच्छे अंकों से पास होने की उम्मीद है। मगर सर्जरी के मामले में उसको कोई उम्मीद नहीं। आचारी की धोखा धड़ी उसमें प्रकट हो सकती है। कोई भी आदमी रातों-रात थोड़े ही सुधरेगा!

देवदास ने अपने पाठ पढ़े, वार्ड के रोगियों को जांचकर प्रैक्टिकल परीक्षाएं दीं, पर सब कुछ जैसे सपने में ही कर रहा था। न तारीख याद रही, न दिन, न वक्त ! वे सब समय के किसी अंधेरे कोने में जा छिपे। देवदास को अपने शरीर की पांचों इंद्रियों का अस्तित्व तक महसूस नहीं हुआ। देखना, सुनना, छूना, चखना और सूंघना——केवल किताब में पढ़े शब्द रह गये। वे शरीर से अलग होकर मानो अन्यत्र कहीं के हो गये। फिर भी दुख या व्याकुलता ने देवदास को विचलित नहीं किया। वह यह चाहता भी नहीं था। वह अपमानजनक था।

लक्ष्मी का पत्र पढ़ने के बाद, दो-तीन दिन देवदास बड़ा ही व्यग्र रहा। फिर वह पत्र पेटी में सबसे नीचे सुरक्षित रखा। प्रिय बंधुजन के चिता-भस्म की तरह।

देवदास भावुक न होने की कोशिश कर रहा था। उसके लिए ज्यादा कोशिश नहीं करनी पड़ी। कारण यह, कि चाहने पर भी वह भावुक नहीं हो सकता था। उसकी प्रकृति ही ऐसी थी।

देवदास ने पुस्तक सामने खोलकर रखी। वह कमरे में भीतर से सिटकनी लगाये रखता, ताकि कोई तंग न करे। बरामदे व लान में भी शोर-शराबा कम है। पिछवाड़े में अमरूद के बगीचे से आती हवा सन-सन सुनाई पड़ती है। माली फल में चोंच मारने के लिए आने वाली चिड़ियों को भगाने के लिए बीच-बीच में पटाखे दागता है।

अब एक ही परीक्षा शेष है, गायनाकोलाजी की। वह उसकी तैयारी करने लगा। तभी गड़बड़ी शुरू हुई।

वह पुस्तक के पृष्ठ पलटने लगा। मगर पृष्ठ के अक्षर दिखाई नहीं दे रहे थे। देवदास तेजी से पन्ने आगे-पीछे पलटता रहा। मगर पोथी एक खाली पेटी-सी नजर आ रही थी। छपे अक्षर कहां गायब हो गये?

देवदास ने पोथी बंद करके जिल्द को उलट-पुलटकर देखा। जिल्द सूनी थी।

उसने संदेह दूर करने के लिए फिर से पुस्तक खोली। किसी पन्ने पर अक्षर नहीं। उलटे हर पृष्ठ पर दो आंखें उभर रही हैं। जल-धारा में डूबी-सी दुख-भरी दो आंखें प्रत्येक पृष्ठ पर छा रही हैं। तिर रही हैं।

देवदास बौखलाया बिलकुल नहीं। उसने अलमारी खोलकर लौ एंड बेल्ली की सर्जरी की पुस्तक निकाली। उसमें कोई समस्या नहीं थी। अक्षर साफ थे। देवदास पढ़ने लगा।

फिर से देवदास ने गायनाकोलाजी की पुस्तक निकालकर खोली। पहले की तरह सूने और सफेद कागज पर दो आंखें ही दिख रही हैं।

खूबसूरत, गहरी नीली और बड़ी-बड़ी दो आंखें। लक्ष्मी की आंखें। हां, लक्ष्मी की ही आंखें।

मन में चैन नहीं रहा। देवदास से अपने कमरे में रहा नहीं गया।

बाहर गोधूलि की वेला थी—सूर्यास्त के पहले की मंद धूप।

देवदास विशाल प्रांगण में उतरा। एक बड़ा वृत्ताकार लॉन था जो चारों होस्टलों को घेरे हुए था। ऐसा कोई पौधा या फूल नहीं जो वहां नहीं खिलता। गरमियों के बावजूद पौधे फूलों से लदे थे। माली बड़ा दयालु था।

प्रांगण की घास में और कंक्रीट की बेंचों पर छात्र पाठ्य-पुस्तकें लिये बैठे थे। कुछ लोग पुस्तकों में नजर गड़ाये हुए थे। शेष कथांत की त्रासदी के नायकों की तरह भविष्य की प्रतीक्षा में थे।

देवदास दो होस्टलों के बीच के उस छोटे फाटक से बाहर निकला जहां किसी का प्रवेश मना था। वहां अमरूद का एक बगीचा था। उस के फल पेड़ों पर पके थे। अमरूद की मादक सुगंध हवा में अनुभव हो रही थी। बूढ़ा माली पक्षियों को भगा रहा था।

सूखी पत्तियों पर हवा और पैरों की आहट महसूस करके बूढ़े ने पटाखा दागने से अपने को रोका।

उसने एक आदमी को बगीचे में उस फाटक से भीतर आते देखा जिससे आम लोगों का प्रवेश मना था।

"कौन? डाक्टर साहब?"

"हां, मैं ही हूं।"

"फरमाइए ! क्या सेवा करूं?"

"मैं यहां थोड़ी देर बैठना चाहता हूं। ऐसे फाटक से भीतर आया हूं जहां से प्रवेश करना मना है।"

"परवाह नहीं, डाक्टर साहब ! आप बैठिए। जितनी देर चाहें बैठें।"

बड़ी पगड़ी और सफेद दाढ़ी और मुगलों की मुखाकृति वाले उस बूढ़े ने अपनी झोंपड़ी की बैठक धूल झाड़कर साफ की। बंदूक नीचे रखकर हाथ खूब धोये। दो-तीन पके लाल

अमरूद काटकर मसाला भरके पत्ते पर देवदास की सेवा में भेंट किये।

वृद्ध ने पूछा, "मुत्तुरामन का हाल कैसा है?"

"इंजेक्शन नियम से लेता है।"

देवदास को भी इतना ही पता है। एक्स-रे में ही रहस्य अंकित है कि क्षय रोग ने मुत्तुरामन की क्या दशा बनायी है। उसके फेफड़े ही बता सकते हैं, मगर दुनिया को उसका पता नहीं हो सकता।

"क्या चंगा हो जायेगा?"

विशेषज्ञ की तरह देवदास ने कहा, "मुश्किल है। टी.बी. है न?"

बूढ़ा कुछ देर तक मौन रहा। उसके चेहरे पर हलकी उदासी का काला रंग छा गया था। उसने कहा, "मेरे बेटे को भी टी.बी. थी।"

"अव कहां है?" देवदास ने पूछा।

आंखें बंदकर वृद्ध ने झुक कर धरती को छूते हुए कहा, "इसके अंदर।" कुछ देर रुककर वृद्ध आगे बोला, "वह आराम से सो रहा है।"

अमरूद के बगीचे में अंधेरा छाने लगा। चिड़िया घोंसले की तरफ उड़ती गयीं। वृद्ध ने बंदूक खंभे पर लटका दी।

उसने कुछ नहीं कहा। क्या वह मुत्तुरामन के रोग की चिंता से व्याकुल है? या अपने मृत पुत्र की स्मृतियां उसे व्यथित कर रही हैं?

अमरूद के पेड़ के तने से पीठ टिकाकर बैठा हुआ माली पैर पसारे गाने लगा——

लकड़ी जल कोयला भयी
कोयला जल भयी राख।
मैं पापिन ऐसी जली
कोयला भई न राख।

देवदास धीरे से उठा और सूखी पत्तियों के ऊपर से, कम-से-कम आहट करते हुए चला गया। उसने वृद्ध से विदा नहीं ली। वह वृद्ध गाने में लीन था——

"अभी रात है कुछ बाकी
जरा नकाब उठा दो साकी...!"

देवदास अपने मन का संतुलन बनाये रखने की पूरी कोशिश कर रहा था। किंतु अधिक-से-अधिक मानसिक शक्ति रखने वाले भी जीवन के भविष्य के चौराहों पर स्तब्ध खड़े रह जाते हैं।

देवदास दैनिक जीवन के ताल-लय से छूट गया है। उसे न भूख है, न प्यास। वजन एकदम घट गया है। वैसे भी देवदास को खाने-पीने का शौक नहीं था।

रात को देवदास ने फिर से पढ़ने की कोशिश की, पर कामयाब नहीं हुआ।

गायनाकोलाजी की पुस्तकें खोलते ही लक्ष्मी की आंखें दिखती हैं। उसकी आंखों के सिवा और कुछ नहीं दिखता।

देवदास ने पुस्तक मेज पर पटक दी। मेज की जगह फर्श पर ही पुस्तक जा गिरी। क्षमा-याचना की अदा में उसने झुककर किताब उठायी। कहीं लक्ष्मी की आंखों को दर्द तो नहीं हुआ! बड़ी व्यथा से देवदास पुस्तक को सहलाता रहा।

वह कमरे में बड़ी रात तक टहलता रहा——एक छोर से दूसरे छोर तक। पता नहीं, कब तक। आधी रात हो गयी। सारे दीपक बुझ गये। अमरूद के बगीचे की गजल भी थम गयी। देवदास टहलता रहा। चलते-चलते उसके पैरों के नीचे एक नहर-सी बन गयी। वह उसी पर कदम रखता गया। फिर कदम और आसानी से बढ़ते चले। वह चलता रहा, चलता रहा।

सूरज निकला। होस्टल में चहल-पहल हो गयी। अमरूद के बगीचे से वही चिड़ियों को भगाने की आवाज आने लगी।

डा. तनूजा की डिमांस्ट्रेशन की क्लास थी। आखिरी क्लास ! आगे वे इस बैच के छात्रों को संबोधन नहीं करेंगी। परीक्षा के तुरंत पहले। सारे छात्रों को आशीर्वाद देने का अंतिम अध्याय।

देवदास जब कक्षा में पहुंचा तब क्लास शुरू हो चुकी थी।

"व्हाई आर यू लेट, डाक्टर देवदास?" अपने कोमल स्वर में डा. तनूजा ने पूछा।

किसी ने पीछे से टिप्पणी की——"साथिन चली गयी है न? अब पहले आने से क्या लाभ?"

"ओ.के... वि विल कंटिन्यू...प्लीज टेक योर सीट, डा. देवदास!" तनूजा ऐसी टिप्पणियों को अनसुना करती हैं। उन्हें इनमें कोई दिलचस्पी नहीं है। कितनी ही टिप्पणियां सुनने का मन आदी हो चुका है।

क्लास के सामने एक गर्भिणी स्त्री को लिटाया गया था।

"डाक्टर देवदास, विल यू प्लीज एक्जामिन दि पेशेंट?" अपनी जगह पर बैठे देवदास से डा. तनूजा ने कहा।

देवदास आगे बढ़ा।

तनूजा बोलीं, "हिस्टरी लेने की जरूरत नहीं। सिर्फ जांचना है। रिपोर्ट भी देख लो। इसके बाद अपनी टिप्पणी सुना दो।"

देवदास ने गर्भिणी पर दृष्टि डाली। सूखे नेत्र। सूजी पलकें। आंखों के तट पर हलकी कालिख से मिश्रित लाली। चेहरा पीला है। होंठ सफेद। नाक की नोक पर पसीने की बूंद। कंधे की हड्डियां ऊपर उठी हैं। दूध चुवाने के लिए अधीर पृथुल स्तन ! छाती की हड्डी

तक फूलकर आगे की ओर बढ़ा हुआ पेट। गुब्बारे की तरह मुलायम व फूले पेट पर खिड़की से आता प्रकाश पड़ रहा है। भीतरी नयन की तरह गर्भपात्र के भीतर सिमट-सिकुड़कर बैठा हुआ दुनिया को देखने के लिए अधीर शिशु। गर्भिणी बांहों से शिथिल होकर बिस्तर पर पड़ी है। जांघ में मांस अधिक नहीं। पैरों में भी सूजन। कीचड़-सने नाखूनों में खून की कमी की सफेदी। बढ़ा रक्तचाप ! देवदास ने रिपोर्ट पढ़ी। मगर वह कुछ नहीं बता सका। रिपोर्ट नीचे रखकर वह दोनों हाथ बांधे खामोश खड़ा था।

"कुछ कहो तो...," डा. तनूजा ने देवदास को प्रोत्साहन दिया।

देवदास सिर झुकाये खड़ा रहा।

"डांट स्पायल माई टाइम। हरि अप!"

नीचे की ओर दृष्टि डाले देवदास ने कहा, "आइ एम सॉरी, मैडम! वेरी सॉरी !"

"बट व्हाई?"

"आइ डोंट नो एनिथिंग।"

"इटिस सरप्राइजिंग। परसों परीक्षा है। अपनी जगह पर जाकर बैठो।"

डा. तनूजा ने कुछ नाखुश होकर देवदास को देखा।

उस समय रोगी की आंखें ऊपर चढ़ी थीं। सिर एक तरफ टेढ़ा पड़ा था। गरदन की नसें कसी थीं। हाथ-पांव धनुष की तरह टेढ़े होने लगे। गर्भिणी कराहती हुई टेढ़ी हो चली। फिर हाथ-पांव पलंग पर मारने लगी। पलंग के खूंटे हिलने लगे। ऐसा संदेह होने लगा था कि गर्भ में स्थित शिशु कहीं दब जायेगा।

"यही रोग है--प्रसूति के पहले की मिर्गी।" डा. तनूजा अपना अंतिम भाषण देने लगीं।

उनके भाषण की कोई बात देवदास के कानों में नहीं पड़ी। देवदास ने सोचा नहीं था कि ऐसी स्पेशल क्लास में बैठकर उसकी ऐसी दुर्गति होगी। लक्ष्मी के बिना यह पहली क्लास थी और अंतिम भी।

क्लास के बाद सारे मेडिको छात्र डा. तनूजा के पीछे लग गये। प्रोफसर होने के बावजूद डा. तनूजा शिष्यों पर कभी घमंड नहीं दिखातीं। छात्रों को वे मित्रवत मानती थीं।

एक मेडिको ने उनसे प्रार्थना की--"मैडम, एक सवाल बता दीजिए न?" उन्होंने ही परीक्षा का प्रश्न-पत्र तैयार किया था।

डा. तनूजा मुस्कुरायीं।

"मुझे कुछ याद नहीं।"

"तो कम-से-कम एक छोटा सवाल?"

"किसी को डरने की जरूरत नहीं," डा. तनूजा ने अपने छात्रों को ढाढ़स देते हुए कहा, "मैं सबको पास कर दूंगी। आल दि बेस्ट!"

मेडिको उनके पीछे-पीछे चल दिये।

देवदास अपनी सीट पर बैठा था। कुछ सोचता हुआ कहीं देख रहा था।

चलते हुए डा. तनूजा ने देवदास पर ध्यान दिया।

दिन-रात होस्टल के कमरे में किसी तरह बिताने के बाद देवदास अंतिम परीक्षा के लिए कमरे से निकला।

परीक्षा-भवन के बाहर मेडिको छात्र आखिरी क्षण की तैयारी में व्यस्त थे। सब-कुछ पढ़कर आगे एक नजर और देख लेना चाहते थे। भाग्य पर विश्वास करने वाले, तथा कुछ भी पढ़े बिना, असफल होने के लिए कमर कसकर आये हुए लोग——सब-के-सब उन आखिरी क्षणों में परेशान ही नजर आते हैं।

देवदास पहले ही परीक्षा-भवन में प्रवेश कर अपनी जगह पर आ बैठा था।

मेडिको छात्र बड़ी तेजी से हाल में प्रवेश कर अपनी-अपनी सीट पर बैठ गये।

घंटी बजी।

निरीक्षक प्रश्न-पत्र बांटने लगे।

देवदास को अपना प्रश्न-पत्र मिला। प्रश्न-पत्र लेते समय उसके मन में कोई घबराहट या परेशानी नहीं थी।

देवदास ने प्रश्न-पत्र पर दृष्टि डाली। कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। उस कागज पर न बड़े प्रश्न थे, न टिप्पणी वाले छोटे सवाल। बारंबार देखने पर सफेद कागज पर दो आंखें नजर आ रही थीं। वे आंखें अधिक प्रकाशमय होती जा रही थीं।

खूबसूरत, गहरी, नीली, विकसित, गीली, और बड़ी-बड़ी दो आंखें——लक्ष्मी की आंखें ही।

सारे विश्व को प्रतिबिंबित करने वाले लक्ष्मी के नयन।

यों ही, लक्ष्मी की सीट की तरफ उसने दृष्टि डाली।

सीट और डेस्क खाली पड़े थे। डेस्क पर लक्ष्मी का रोल नंबर था। मगर वहां सीट पर देवदास को दो आंखें दिखाई पड़ीं। शरीर से रहित दो नेत्र हवा में तैर रहे थे।

देवदास अब आंखें खुली नहीं रख सका। उसने आंखें बंद कीं, सिर झुक गया। डेस्क पर दोनों हाथ एक-दूसरे से उलझाये। देवदास सिर डेस्क पर टेके पड़ा रहा।

निरीक्षक ने उसके कंधे का स्पर्श किया, तो उसने सिर उठाया।

निरीक्षक कुछ पूछ रहे थे। कोई दिखाई नहीं देता था।

सिर्फ आदमकद दो आंखें।

देवदास भयभीत होकर चीख उठा। वह एक प्रेत का-सा चीत्कार था। उस चीत्कार ने पूरे परीक्षा-हाल को दहला दिया।

परीक्षार्थी और निरीक्षक——सभी ने देवदास की तरफ देखा।

परंतु देवदास किसी को देख नहीं पा रहा था। हाल में, आकाश में अनेकानेक नेत्रों की जोड़ियां दिखाई दीं। उत्कंठापूर्ण नयनयुगल उसे घूरकर देख रहे थे। कुछ उसकी ओर बढ़ रहे थे।

देवदास चिल्लाता हुआ परीक्षा-भवन से बाहर भागा। बरामदे के बाहर घास के लान के कंटीले पौधों के बीच में देवदास मुंह के बल गिर पड़ा।

पैंतीस

मर्सी किलिंग (दया-वध) पर एक सेमिनार चल रहा है। ब्रिगेडियर ताजउद्दीन, डा. ख्वाजा, श्री आचारी, डा. संतुकुमार, डा. रवींद्रनाथ आदि सेमिनार में भाग ले रहे हैं।

सम्मेलन हाल में आज श्रोताओं की भीड़ है। चर्चा का विषय है सुख-मृत्यु (यूथनेजिया)। इसलिए श्रोताओं में विशेष कुतूहल है। बड़ी जटिल समस्या है। एक तरफ भारतीय दंड संहिता। दूसरी तरफ जीवित शव के रूप में जीने वाले इंच-इंच मरते रोगी के प्रति दया——इनकी तुलना करके एक समझौते पर आना है; कितनी ही बाधाएं बीच में खड़ी हैं।

डा. ख्वाजा एंव ब्रिगेडियर ताजउद्दीन——दोनों मंच के दो छोरों पर बैठे हैं।

ताजउद्दीन नेक-टाई और ऐश रंग का सूट पहने हैं। ख्वाजा तो खादी से मिलती मोटी कमीज और थुलथुली पैंट पहने हैं। मगर उनकी आंखें तेजमय हैं। मंच पर बैठे हुए संतुकुमार बीच-बीच में अपनी दाहिनी बांह के पुट्ठों को आजमा रहे हैं। श्री आचारी का चेहरा मुरझाया है। रंग से सांवले होने पर भी उनके मुखमंडल से प्रसन्नता कभी गायब नहीं होती थी। क्रोध का पारा चढ़ने पर भी उसमें प्रकाश का कोई कण छिपा मिलता था। लेकिन आज वे बिलकुल उदास नजर आते हैं।

डा. रवींद्रनाथ के सामने मोटी पोथियां और फाइलों का अंबार है। उसके मुखमंडल पर हमेशा निस्संगता रही है। उसका व्यवहार ऐसा रहता है कि लो, अभी सोना चाहता हूं। उसकी चाल में न ताल है, न क्रम।

सेमिनार हाल में एक व्हील चेयर आयी। इसमें जॉन बलदेव मिर्जा को बिठाकर आया ले आयी है।

जॉन बलदेव मिर्जा का चेहरा पहले से अधिक पीला है। बचे-खुचे केश भी झड़ चुके हैं। आंखों में सूनापन और उम्मीद बारी-बारी से झलकती हैं। बीच-बीच में वह कुछ चौकन्नी दृष्टि से चारों तरफ देखता है।

फिर एक स्ट्रेचर आया। स्ट्रेचर के साथ आर्टिफिशल रेस्पीरेशन (कृत्रिम श्वास) यंत्र भी है। उसमें एक मूर्च्छित रोगी पड़ा है। रोगी का सिर घुटा हुआ है। चमचमाते घुटे सिर पर नीली पेंसिल से कुछ निशान बनाये गये हैं।

माडरेटर (बहस के नियंत्रक) श्री आचारी भाषण-स्टैंड पर आकर बोलने लगे। गंभीर

कंठ-ध्वनि वाले आचारीजी को आज क्या हुआ? उनकी आवाज नियमित रूप से एक रेडियो की आवाज-सी गूंजा करती थी। प्रत्येक अक्षर साफ सुनाई देता था।

मुंह से अक्षरों के बाहर निकलते समय गले के भीतर की हड्डी ऊपर की तरफ उभरती।

आज आचारी के शब्द जब बाहर आ रहे थे तब पुराने ग्रामोफोन रिकार्ड की घिसी सुई चलाने पर निकलते गीत जैसे थे, आवाज फटी-फटी थी। उनके होंठ कांप रहे थे और गर्दन कसी थी।

आज आचारी युद्ध-क्षेत्र में शस्त्र चलाते थके योद्धा जैसे दिखाई पड़े। क्या वे शब्द ढूंढ़ रहे हैं? क्या शब्द नहीं मिल रहे हैं? जो भी हो, आचारी ने आज तीन-चार मिनट में माडरेटर का संक्षिप्त भाषण करके ब्रिगेडियर ताजउद्दीन को विषय-प्रस्तुति के लिए आमंत्रित किया।

एक फिल्मी कलाकार की अदा से ब्रिगेडियर ताजउद्दीन आ गये। उन्होंने माइक को प्रेयसी युवती को सहलाने की कोमलता से थाम लिया। होठों पर मुस्कुराहट छा गयी। मुसकान में भी उस पद की गरिमा नजर आती थी।

वे बोलने लगे——

"हमारे सामने दो शरीर पड़े हैं। दोनों जिंदा लाशें हैं। एक को लाश ही समझिये। मगर ये मनुष्य के रूप में जन्मे हैं। इसलिए डाक्टरों का कर्तव्य हो जाता है कि जीवन के अंतिम क्षण तक इन्हें बचाने की कोशिश करें।

"लकवे का रोगी जॉन बलदेव मिर्जा महीनों से इस अस्पताल में पड़ा है। उसकी जान बचाने के लिए कितना ही धन खर्च किया, कितनी ही दवाएं दीं, नर्सों ने उसकी सजगता व प्रेम से सेवा की। हाउस-सर्जन जाने कितनी रातें बिना सोये उनका इलाज करते रहे, बड़े डाक्टरों ने कितने सिगरेट फूंके——इन सबका कोई ठिकाना नहीं। महीनों तक वह सिर्फ एक मशीन रहा। एक नली से दिया जाने वाले द्रव-भोजन को दूसरी नली से पेशाब में परिवर्तित करने वाले यंत्र। महीनों से बिस्तर पर अचेत पड़े रहने पर भी उसे एक बेडसोर तक नहीं हुआ। इसके लिए मैं अपने स्टाफ की अत्यधिक प्रशंसा करता हूं। एक दृष्टि से उनकी प्रशंसा करने की जरूरत नहीं, क्योंकि वे अपना कर्तव्य ही करते हैं। फिर भी उनकी हार्दिक करुणा के सामने मैं हाथ जोड़ता हूं। एक दिन सबेरे-सबेरे खुदा के रहम से वह होश में आया——मैं जान-बूझकर इसे खुदा का रहम कहता हूं।

"दवा की अजीब दुनिया के उस पार कोई अनजान ताकत काम करती है। बीच में वही डाक्टरों की मदद के लिए आ पहुंचती है। उस ताकत को मैं सिर नवाता हूं।

"बलदेव मिर्जा होश में तो आया, मगर ऊंची आवाज में बोलने की ताकत हमेशा के लिए नष्ट हो गयी है। वह खुद उठने या चलने में कामयाब नहीं होगा। शेष सारा जीवन उसे किसी और की सेवा पर निर्भर रहना ही पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, और किसी की सेवा

पर ही उनका निर्वाह निर्भर है। महंगी दवा और सजग सेवा देकर इस बैगन जैसे शरीर को सुरक्षित और जीवित रखकर हम कौन-सा कमाल करने जा रहे हैं? नहीं तो, जॉन बलदेव मिर्जा खुद क्या कमाल करेगा? उससे समाज का क्या लाभ होने वाला है? सोचने पर, वह समाज-सेवा एक घाटे का सौदा है। परंतु इस रोगी को मूर्छा से होश में लौटाना ईश्वर की इच्छा से चिकित्सा-विज्ञान की प्रगति माना जा सकता है--ए गुड प्रोग्रेस।

"अब हमारे रोगी की बात लें। नकली सांस की मशीन के साथ या उस मशीन के पुर्जे के रूप में वह अपनी जान को बचाये रखता है। कोई उसका नाम-धाम कुछ नहीं जानता। तीर्थ-यात्रियों से भरी एक बस रास्ते में अचानक एक खड्ड में उलट गयी। कुछ तीर्थ-यात्री मर गये। वे खुशकिस्मत हैं। प्रभु की सन्निधि में शरीर से पहुंचने के पहले मोक्ष पा गये। यह अभागा तो सिर पर गंभीर चोट लगने से मूर्च्छित हो गया। इसमें हिलने-डुलने की शक्ति नहीं है। दर्शन-शक्ति वापस नहीं मिलेगी। मुंह से एक अक्षर भी बाहर नहीं आयेगा। उसकी सांस की गति पूर्णतः थम गयी है। हमने नकली सांस देने की मशीन की मदद से इसको जीवित रखा है। यह कितने समय तक इस मशीन के भरोसे जीवित रह सकेगा? वैसे जीवित रहने से लाभ भी क्या है? धरती का बोझ बढ़ाने के लिए? इसलिए जल्दी-से-जल्दी इस आदमी के शरीर से यह श्वास-यंत्र हटा देना चाहिए। इसे भी अपने साथी तीर्थ-यात्रियों के साथ मोक्ष-पथ पर जाने की अनुमति देना ही बेहतर है।"

ब्रिगेडियर ताजउद्दीन चश्मा उतारकर अपना चेहरा रूमाल से पोंछकर सभा को और एक बार सलाम करके बैठ गये।

अब श्री आचारी ने डा. ख्वाजा को बोलने के लिए बुलाया।

डा. ख्वाजा धीरे से उठे और चुपचाप बिना जूते की आवाज किये माइक के पास आ गये। उनके पतले होठों पर सभा में बैठे लोगों के प्रति प्रेम-सम्मान प्रकट हुआ।

वे बोलने लगे--"प्रिय छात्रो ! सज्जनो ! देवियो ! मैं एक बड़े महत्वपूर्ण प्रसंग पर कुछ कहने के लिए उपस्थित हूं। इस घड़ी का महत्व यह है कि मुझे आयुर्विज्ञान के एक जटिल प्रश्न का अपना समाधान प्रस्तुत करना है।

"पैगंबर ने कहा है कि किसी को मत मारो। पैगंबर का मतलब था कि तुम्हें किसी को नहीं मारना चाहिए। मगर उनके शागिर्दों ने उसका नया मतलब बताया कि तुम आदमी को मत मारो। उन्होंने इस व्याख्या से आदमी को छोड़ शेष सब को मारने का अधिकार मानो प्राप्त कर लिया। उस व्याख्या के सहारे वे जानवरों, पक्षियों को मारकर खाते हैं और मोटे-तगड़े बनते हैं। ऐसे महानुभाव भी हठ करते हैं कि मनुष्य को नहीं मारना चाहिए। फिर भी मनुष्य के प्राणों को सुरक्षित रखने के लिए ईश्वर के भेजे हुए डाक्टर लोग अपनी दलीलों से साबित करना चाहते हैं कि आदमी को जान से मार डाला जा सकता है! यह कैसी विडंबना है, मन की कैसी बेरहमी है! कितनी दीनता की दशा है !

"ईश्वर की अनुकंपा से ही सही, बलदेव मिर्जा एक दिन एकाएक होश में आया। वह महीनों नलियों सहित चारपाई पर पड़ा था। ऐसे व्यक्ति को जान से मारना इन लोगों के मत में अच्छा रहेगा। ऐसे लोग आस्तिक नहीं हैं। मगर जब मिर्जा होश में आया तब यही लोग प्रभु की महानता मान रहे हैं। खैर, जो भी हो, जॉन बलदेव मिर्जा को दया-वध से ईश्वर ने बचाया। अब वह डाक्टरी धमकी से बचकर दुनिया में आजादी से जीवित रह सकेगा।

"दूसरा तीर्थ-यात्री इधर कृत्रिम श्वसन-यंत्र की सहायता से जीवन-कणों से खेल रहा है। इस खेल में वह अपनी कीमती जान को सुरक्षित रखे हुए है। मैं यह बात, यह तथ्य छिपाकर नहीं कहता कि उसे हम डाक्टरों की सहायता मिल रही है। यह तीर्थ-यात्री किसी आदमी की, किसी चीज की सहायता से हमारे बीच में सांस ले रहा है। मोक्ष-मार्ग पर जाने से बचा हुआ, जी रहा है। यह मेरी दृष्टि में उसके जीवन की सबसे हर्षदायक घटना है।

"कौन भविष्यवाणी कर सकता है कि इस तीर्थयात्री रोगी की रोग-गति में सुधार नहीं होगा? यह भी कहीं बच जाये तो? कोई अंतिम रूप से नहीं कह सकता कि दवा और कुदरत, दोनों इस पर अपनी सारी मेहरबानी दिखायें तो यह बचेगा नहीं। अगर बच गया तो वह घटना एक चमत्कार मानी जायेगी। महीनों तक मूर्छित रहे किसी रोगी को एक शुभ-घड़ी में होश आया। महीनों से, वर्षों से चलने में असमर्थ, बोलने में असमर्थ अब वह समय व्यतीत कर रहा है। कौन जाने, एक शुभ घड़ी फिर से नहीं आयेगी ! अगर आयेगी तो वह शायद बोलेगा भी। नहीं तो चलने की ताकत फिर से पाकर हमारे बीच से, अपने पैरों पर चलते यह व्यक्ति चलता हुआ जायेगा।"

डा. ख्वाजा भावाकुल हो गये। उनका चेहरा आरक्त हो गया। भौंहें चढ़ गयीं। आंखें पहले से भी तेजमय हो गयीं। उन्होंने जीभ से अपने होठों को संवारा। फिर बोलने लगे––

"मैं दूसरी दलील पर आ रहा हूं। यह सच है कि उस प्रकार इस तीर्थ-यात्री के जीवित रहने से समाज का या इसका कोई लाभ नहीं। मगर इस कारण उस तीर्थ-यात्री को जान से मारने का हक किसी को नहीं। अतएव जीवन की आखिरी बूंद के रहने तक इस तीर्थ-यात्री को सुरक्षित रखने का दायित्व डाक्टरों के समाज का है।

डाक्टरों को रोगी को जान देने का अधिकार तो हैं। उनकी जान लेने का अधिकार उन्हें किसी ने नहीं दिया है। इसलिए मुझे एक ही बात का निवेदन करना है––मत मारो। जैसा कि पैगंबर का पैगाम है सिर्फ आदमियों को ही नहीं, किसी को नहीं मारना चाहिए।"

डा. ख्वाजा के करुणापूर्ण दृष्टि से सभासदों की तरफ देखने के बाद माडरेटर आचारी उठे।

वे बहुत कमजोर नजर आ रहे थे। सेमिनार के समाप्त होते-होते वे पहले से भी अधिक थके थे।

वे बहुत कम शब्द बोले——

"मैंने सब कुछ ध्यान से सुना। जॉन बलदेव मिर्जा जिंदा रहे। मगर कृत्रिम श्वसन यंत्र वाले बेचारे आदमी को आगे और परेशान नहीं करना है तो और एक क्षण भी देर किये बिना यंत्र हटाना ही बेहतर है।"

ब्रिगेडियर खुशी से अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे ही जोर से बोले, "मैं इस कथन का फिर से समर्थन करता हूं।"

"नहीं, वह गलत है।" डा. ख्वाजा ने चिल्लाते हुए मेज पर से आवाज उठायी। उन्होंने जीवन में पहले कभी इतनी ऊंची आवाज मुंह से नहीं निकाली होगी।

ब्रिगेडियर ताजउद्दीन मंच से उतरे। उनके जूतों की चरमराहट सेमिनार हाल में गूंज उठी। वे तीर्थ-यात्री के नजदीक गये। हाल में खामोशी थी। उन्होंने एक उद्घाटन वेला में बटन दबाने की सहजता से श्वसन-यंत्र का रोगी से संबंध काट दिया।

ब्रिगेडियर ने अपनी नेक-टाई फिर से ठीक की। उनकी आंखों में अपने विजयी होने का नशा दिखाई दे रहा था।

चार-पांच मिनट गुजरे।

तीर्थ-यात्री का शरीर कुछ हिला। उसने तीन-चार बार सांस ली। फिर छाती पाताल की तरह गहराई में धंस गयी। धंसी छाती थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठने के बाद निश्चल हो गयी। हमेशा के लिए। चेहरे पर पीलापन छाने लगा। अधमुंदी आंखें और भी मुंद गयीं।

एक बड़ी मक्खी एकाएक आकर तीर्थ-यात्री के माथे पर बैठी और उड़ते मंडराते हुए बाहर चली गयी। ब्रिगेडियर ताजउद्दीन ने दिवंगत तीर्थ-यात्री के शरीर को सफेद कपड़े से पूरा ढंक दिया।

जॉन बलदेव मिर्जा सारे हृदयों को एक छोटे बालक के कुतूहल से देख रहा है। उसके नेत्रों में प्रकाश फैल रहा है।

आया जॉन बलदेव मिर्जा की व्हील चेयर ठेलते हुए हाल के बाहर ले गयी।

छत्तीस

श्री आचारी सर्जरी विभाग के अपने विशाल कक्ष में बैठे हैं। नियमानुसार बनियान पर ऐप्रन पहने हुए हैं। वे बहुत कमजोर हो गये हैं। गरदन की नसें उभरी हुई और टेढ़ी हैं। कंधे की हड्डियों के बीच का छोटा-सा गड्ढा और भी गहरा बन गया है।

मेडिको छात्र आखिरी क्लिनिकल क्लास के लिए आचारीजी के कक्ष में आ गये। आचारीजी ने इशारे से उन्हें बैठने को कहा।

उनकी मेज पर 'लौ एंड बेल्ली' रखी थी। थोड़ी देर उस पर उन्होंने नजर दौड़ायी। उसके बाद छात्रों को देखकर कुछ कहना चाहा। लेकिन गले के भीतर की हड्डी ऊपर तो चढ़ी, पर आवाज बाहर नहीं निकल रही थी।

श्री आचारी का चेहरा फीका पड़ रहा था। उनके होंठ कांप रहे थे। वे फिर से कुछ कहने लगे। मगर शब्द बाहर आने को तरसते रह जाते थे।

आचारीजी ने हाथ हिलाकर इशारे से छात्रों को चले जाने को कहा। आश्चर्यचकित छात्र भय व श्रद्धा से धीरे से उठकर बाहर की ओर चलने लगे।

आचारीजी को खांसी आयी। आवाज खरखराई-सी थी। वह बूढ़े कुत्ते के भूंकने की आवाज से मिलती थी। बेचैन श्री आचारी बड़ी देर तक कमरे में चहलकदमी करते रहे।

आखिर कांपते हाथ से छुट्टी की अर्जी लिखकर मेज पर छोड़ दी। कमरा बंद किये बिना ही वे गलियारे में उतर गये।

वह आचारीजी की सर्विस में उनकी पहली छुट्टी की अर्जी थी।

केस-रिकार्ड एवं एक्स-रे प्लेट लेकर मेरी आचारीजी के कमरे में पहुंची तो आचारीजी की कुर्सी खाली पड़ी थी। यही नहीं, उनके निजी कमरे में ताला भी लगा था। उनकी अटैची भी नहीं थी। तभी उसकी नजर छुट्टी की अर्जी पर पड़ी।

श्री आचारी को क्या हो गया? मेरी को थोड़ी-सी निराशा हुई।

दो बड़े गंभीर आपरेशन करने आये हुए आचारी छुट्टी का पत्र छोड़कर चले गये, इस पर संपूर्ण सर्जरी विभाग आश्चर्य में पड़ गया। आचारीजी के आपरेशन केवल स्वयं वही कर सकते थे। उनके मरीज का आपरेशन आज तक और किसी ने नहीं किया। सर्जरी विभाग में आज तक ऐसी घटना नहीं हुई।

विभाग में उस दिन की सारी बातचीत आचारीजी के विषय में थी। हाल ही में उनमें

आया परिवर्तन, उनके शरीर व मन की कमजोरी, उनकी खामोशी, उनकी विराग भावना––सब बातें सर्जरी विभाग में चर्चा का विषय बनीं।

श्री आचारीजी का अंतरंग सहायक, लेक्चरर इस अवसर पर किसी को खबर दिये बिना अपने स्वामी की वस्तुस्थिति जानने के लिए उनके घर गया।

घर पर दरवाजा रानी अम्मा ने खोला। सहायक अंदर आकर बैठा रहा, मगर आचारीजी बाहर नहीं आये। वे अपने कमरे में दरवाजा बंद करके लेटे थे।

रानी अम्मा का चेहरा बिलकुल सूखा था। लग रहा था कि किसी गहरी चिंता ने उनको ग्रस लिया है। वे अपने पूरे गहने पहने थीं। वे व्यग्र थीं।

रानी अम्मा ने कहा, "तीन-चार दिन से भोजन नहीं करते। अब तो कहते हैं––पानी तक पीना मुश्किल है।"

"क्या हुआ?" अचरज से अंतरंग सहायक ने पूछा।

रानी अम्मा कहने लगीं, "किसे पता? नौकर से पूछना होगा। मुझसे वह नहीं हो सकता। उससे पूछकर कोई बात समझना––हाय ! हाय ! बड़ी शर्म की बात है।" युवा डाक्टर बड़े दुख से, देर तक अपनी जगह बैठा रहा।

"तुम अब जाओ। मुझे सोना है," रानी अम्मा ने कहा।

हिचकते हुए वह बोला, "मैं उनसे मिलना चाहता हूं।"

"देख लो, देख लो, उस कमरे में हैं," रानी अम्मा सीढ़ियां चढ़ते हुए बोलीं। अंतरंग सहायक ने भीतर प्रवेश करके श्री आचारी के दरवाजे पर दस्तक दी। आचारी ने दरवाजा खोला।

युवा डाक्टर ने आचारी को देखा। वे केवल हाड़ का ढांचा रह गये थे। प्रेत-से हो गये थे। कुछ नहीं बोले। मगर उनकी आंखों में अनेक वर्षों की बातें भरी पड़ी थीं।

श्री आचारी ने एक शब्द तक नहीं कहा। होंठ हिले तक नहीं। उन्होंने तकिये के नीचे से एक लिफाफा निकालकर उसके हाथ में रखा। उसने लिफाफा खोलकर पढ़ा। उसमें सिर्फ एक वाक्य था––

"मुझे अस्पताल में भर्ती न करना।"

क्या यह प्रार्थना थी? या आदेश था?

वे फिर से आंखें बंदकर चारपाई पर लेट गये। आचारी ने उसी स्थिति में दो दिन व्यतीत किये। वे बूंद भर पानी गले के नीचे नहीं उतार पा रहे थे।

आचारी का रोग दुस्साध्य हो रहा था। वे रोग से जूझ रहे थे। उनका रोग क्या है? वह किसी को पता नहीं। वह उन्हीं को मालूम है। वह एक पेशेगत राज़ है। अनेक रोगियों के जटिल रोगों का निदान करने वाले आचारी ने अपना रोग भी पहचान लिया। उनका आग्रह था कि दूसरे सर्जन का हाथ मेरे ऊपर न पड़े।

आचारीजी की दशा बड़ी करुणाजनक थी। उनकी सेवा-टहल करने वाला कोई नहीं रहा। रिश्तेदार या दोस्त उनसे मिलने नहीं आये। सेवक तक ने उनको छोड़ दिया। जीवन भर उन्होंने किसी से ममता नहीं रखी, प्यार नहीं किया।

आचारीजी के रोग ने एक दिन बड़ा गंभीर रूप ले लिया। आचारी मृत्यु की ओर कदम-कदम बढ़ रहे थे। श्वास की गति कम होने लगी। नब्ज की चाल धीमी होती गयी। आंखों में अंधेरा छाने लगा। आखिरी बत्ती भी बुझने लगी। मन पारब्रह्म की तरफ चल पड़ा। आत्मा शरीर का त्याग करने लगी।

आचारी के प्राण उनके शरीर से अलग हो गये।

आचारीजी का मृत शरीर चारपाई पर पड़ा था। मगर जादू ही समझिये कि वे अब एक पोप की पोशाक में बिस्तर पर मृत पड़े थे।

परम पिता का पवित्र दंड (क्रोसीर), शिरोलंकार (मित्रे), पदारोहण के समय पहनने का किरीट (तियारा)——सब उनके शरीर से अलग किये गये। मोटे, सफेद धागे से बंध ा पूजा का चोगा उन्हें पहनाया गया। परम-प्रसाद के समय उपयोग किये जाने वाले दिव्य पात्र—चालीस और पेटेन[1] उनके हाथों में पकड़ा दिये गये।

आचारी के क्वार्टर पर तब तक बंधु-जन, बिरादरी के लोग और मित्र आ गये। किसी के मर जाने पर लोग उसकी बुराई और लोभ आदि को भुला देते हैं।

वे आचारीजी का यश गाने लगे। आचारी के मृत शरीर पर फूलों के हार बराबर चढ़ाये जा रहे हैं।

रानी अम्मा और लक्ष्मी पास बैठी रो रही हैं।

लोग आचारीजी के घर पर आते रहे, जाते रहे। रिश्तेदार और बिरादरी वाले आये। अस्पताल के स्टाफ के सदस्य, मेडिको छात्र——सभी आ पहुंचे।

अंतिम-संस्कार की तैयारी प्रारंभ हुई। फूलों के हार शव पर से हटाये गये।

वे पोप की पोशाक वाले आचारी की लाश लेकर श्मशान चल दिये।

अस्पताल परिसर के भीतर का श्मशान दूर था। शव को कंधे पर उठा लिया गया। उनके श्मशान पहुंचते-पहुंचते लाश दफनाने के लिए कब्र तैयार थी।

सबने मिलकर लाश कब्र के भीतर उतारी।

कब्र मिट्टी से भरने के बाद शव-यात्रा के साथी विदा होने लगे।

उस समय जज के फैसले की प्रति लिये अमीन, सब-इंस्पेक्टर शर्मा, जल्लाद तथा कुछ सिपाही वहां आ पहुंचे। श्री आचारी को उनके जुर्मों की कानूनी सजा सुनायी गयी है।

---

1. स्वर्गीय पात्र

अमीन ने फैसला पढ़ना शुरू किया——

"आचारी ने रोगियों को बड़ी पीड़ा दी है। उनसे रिश्वत ली है, रिश्वत न देने वाले रोगियों की मौत का कारण बना है। वह व्यभिचारी है, लंपट है, बलात्कार करने वाला, दुराचारी, परिवार से बिलकुल प्रेम न करने वाला और शिष्यों पर अन्याय करने वाला व्यक्ति है। उसके सारे अपराध प्रमाणित हो गये हैं। इसलिए यह न्यायालय फैसला देता है कि आचारी को फांसी का दंड दिया जाये। उसके हाथ-पांव काटकर जमुना में फेंक दिये जायें।"

श्मशान में अचानक अंधेरा छाने लगा।

सब-इंस्पेक्टर शर्मा के नेतृत्व में पुलिस वालों ने लाश कब्र से खोदकर बाहर निकाली।

वह एक प्राचीन श्मशान था। अनेक वृक्षों और झाड़-झंखाड़ों से भरा श्मशान। सैकड़ों वर्ष पुराने किसी पेड़ के नीचे कब्र तैयार की गयी थी।

जल्लाद ने बाहर निकाली लाश की गरदन पर फांसी का फंदा डाला। उस पुराने वृक्ष की दक्खिनी दिशा की शाखा पर उस लाश को फांसी दी। आचारी दुबारा मरा। कानून अमल में लाया गया।

लटकती लाश के हाथ-पांव जल्लाद ने बड़ी तलवार से काट डाले।

श्नशान कांप उठा। समय के प्रवाह में घिसी हुई श्मशान की स्मारक शिलाएं जाग उठीं। श्मशान का वातावरण भारी होकर और भयावह लगने लगा।

निस्संग खड़े, शताब्दियों पुराने, विशाल वट-वृक्ष की दक्खिनी शाखा पर हाथ-कटे और पैर-कटे आचारी की लाश भविष्य के यात्रियों की प्रतीक्षा करती रही।

सैंतीस

रानी अम्मा और सेवक ने मिलकर ताला-लगा आचारीजी का कमरा बलपूर्वक खोला।

श्री आचारी बेहोश थे। अत्यंत दीन और असहाय-से वे मामूली रोगी की तरह कराह रहे थे।

बेहोशी की दशा में भी आचारी ने किसी-किसी के पैरों की आहट को पहचाना। मन-ही-मन वे उन्हें बाहर चले जाने का हुक्म दे रहे थे। उन्होंने हाथ उठाकर उन्हें इशारा करके बाहर करना तो चाहा, पर हाथ नहीं उठ रहे थे। आचारीजी कभी प्रकाश में और कभी अंधेरे में, बारी-बारी से फिसल रहे थे।

आचारी का शरीर सूखा था। चमड़ी सिकुड़ी हुई। होंठ फीके और निश्चेष्ट।

कई दिनों से कुछ न खाने-पीने के बावजूद उनके भारी शरीर का वजन उसके अनुपात में कम नहीं हुआ था। सबने मिलकर बड़ी मुश्किल से उन्हें एंबुलेंस में चढ़ाया।

एंबुलेंस कैंसर वार्ड की तरफ गयी।

आचारी को वी.आई.पी. कमरे में लिटाया गया। उनकी जांच करने रेडियोलाजी विभाग के अध्यक्ष प्रो. राममूर्ति स्वयं आये।

प्रो. राममूर्ति नाटे कद के मिलनसार व्यक्ति थे और उनके चेहरे पर हमेशा मुस्कुराहट खेलती रहती थी। कैंसर विभाग में विख्यात डा. राममूर्ति को जब आचारी का इलाज करने का अवसर मिला तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा।

प्रो. राममूर्ति आचारीजी के बेड के पास कुर्सी पर स्वयं उनकी जांच करने बैठ गये।

कालीन बिछा था। मद्धिम तापमान की पृष्ठभूमि में सामने कांच के झरोखे से सर्दियों की धूप पड़ रही थी। इस प्रकाश में डा. राममूर्ति आचारी की जांच कर रहे थे।

जब अपनी इच्छाओं एवं जीवन की अभिलाषाओं के विरुद्ध अपने शरीर पर एक दूसरे आयुर्विज्ञानी का हाथ पड़ा तब बेहोशी की हालत में भी आचारीजी कुछ गुर्राये। उन्होंने आंखें एक बार खोलीं। फिर धीरे-धीरे बंद हो गयीं।

जांच के बाद राममूर्ति ने बड़ी सहानुभूति से रानी अम्मा की तरफ देखा। वह दृष्टि बहुत कुछ बता रही थी। रानी अम्मा की आंखें गीली हो गयीं। डूबते जहाज के कप्तान की तरह वह एक कोने में चुपचाप बैठ गयीं।

प्रो. राममूर्ति ने कहा, "आचारीजी महान हैं। अभी तक अपने दर्द को किसी पर

प्रकट नहीं होने दिया। पीड़ा को स्वयं सहन करने में भी सुख है। अपनी पीड़ा को अपने में ही समेटकर स्वयं सहन करने में जो सुख है वह धन-दौलत से प्राप्त सुख भी बड़ा होता है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस भी ऐसे थे। उन्हें नितंब पर नासूर हुआ था। रोग की चरम-सीमा पर पहुंचने तक वे सहन करते रहे। किंतु अंत में स्वामीजी भी एक बार रो पड़े। लेकिन आचारीजी तो अभी तक नहीं रोये। मैंने इतनी सहनशक्ति रखने वाले दूसरे किसी को नहीं देखा है। श्री आचारी सचमुच आचार्य हैं...ठीक है, मैं अपना काम शुरू करूं।"

आचारी को आपरेशन थियेटर ले जाया गया। रानी अम्मा बड़ी व्यग्रता से वह दृश्य देखती रहीं। दो घंटे बाद आचारी को स्ट्रेचर पर वी.आई.पी. कमरे में ले गये।

अब उनके शरीर पर अस्पताल की वर्दी थी। सफेद रंग पर नीली धारियों वाली कमीज और पाजामा। आराम से सांस लेने के लिए गला बाहर से चीरकर टेकियोस्टमी ट्यूब भीतर चढ़ायी गयी थी। नेक-टाई की जगह अब वह नली थी। नाक में नली और पेशाब के लिए एक नली। एक कलाई में खून चढ़ा रहे थे, दूसरी में ग्लूकोस। फिर भी वे होश में आये थे। आंखों में नमी आने लगी।

वे आश्चर्य से चारों तरफ देख रहे थे। उन्होंने बंधुओं और बिरादरी के लोगों को पहचाना। उनसे उन्होंने बलपूर्वक दृष्टि हटायी। वे बहुत कुछ कहने के लिए उतावले दिखाई दे रहे थे। होंठ फड़कते-फड़कते टेढ़े हो जाते थे। टेकियोस्टमी नली से झाग बाहर आ रहा था। उन्होंने झरोखे से बाहर की ओर देखा——हेमंत का सूर्य, पत्तों के झड़ते-झड़ते आसमान की ओर हाथ फैलाये खड़े ठूंठ वृक्ष ! उन्हें पेड़ की डाल पर एक मैना को देखने की बड़ी अभिलाषा हुई।

उन्होंने अब आंखें मूंद लीं।

तभी वह भीतर आया था।

किसी ने उसे नहीं देखा।

लेकिन वह सबको देख रहा था।

वह गलियारों में एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलता रहा। वह दीन और असहाय रोगियों की तलाश में चला। डाक्टरों के आते समय वह रास्ते से खिसक जाता था। उनके पैरों की आहट जब दूर चली जाती तब वह फिर से चलने लगता।

आज कुछ करतब दिखाना चाहिए। आज का अपना चमत्कार अप्रत्याशित रहेगा।

दबे पांव वह धीरे-से मेडिकल वार्ड में घुसा। ड्यूटी-रूम में सिस्टर इंजेक्शन तैयार कर रही थी। चुपके से मेजों के बीच से सरककर धीरे से वह ऊपर चढ़ा और एक पेंसिलिन की शीशी के भीतर समा गया। अब सब ठीक है।

सिस्टर इंजेक्शन लेकर बेड नं. 6 के पास गयी। निमोनिया का रोगी था। रोग काफी कम हुआ था। नौ इंजेक्शन दिये जा चुके थे।

सिस्टर ने दसवां इंजेक्शन लगाया। इंजेक्शन के लगते ही रोगी बेहोश हो गया। उसकी आंखों की पुतलियां ऊपर की तरफ चढ़ गयीं। चेहरा पीला पड़ गया। शरीर के रोएं एक-एक कर उठ खड़े हुए। पूरा शरीर लाल हो गया। फौरन उसके गले से कराह सुनाई पड़ी। सांस लेने में बाधा पड़ रही थी।

सिस्टर चिल्ला उठीं——"डाक्टर दौड़कर आइए। पेंसिलिन रिक्शन।"

हाउस-सर्जन और सुपरिंटेंडेंट दौड़े आये।

आपतकालीन चिकित्सा की तैयारियां क्षण भर में कर ली गयीं। प्रतिविष की औषधियां व आक्सीजन आदि रोगी के शरीर में चढ़ाये जाने लगे। पूरे घंटे के अथक प्रयत्न से रोगी मौत से बच सका।

वह निराश होकर धीरे से बाहर निकला। संध्या हो चुकी थी। दीपक जल उठे। आचारीजी जग पड़े थे। बत्तियां जलने पर उन्हें थोड़ा-सा हौसला मिला। दीपक दुहरा दिखाई दे रहा था। उनकी आंखों की प्रगतिक्रिया देख रानी अम्मा पास आयीं। आचारीजी दीवार में प्रतिबिंबित रानी अम्मा की परछाईं को कई टुकड़ों में छितरा हुआ पा रहे थे। उनका दिल बैठ रहा था। प्राण तड़प रहे थे।

आचारी के होंठों पर एक वाक्य आया, मंत्र की तरह–"रानी अम्मा ! मुझे दफना न देना।"

मगर शब्द बाहर नहीं सुनाई पड़े। टेकियोस्टमी नली से छोटे-छोटे बुलबुले उठे और क्षण भर में फूट गये।

आचारीजी के नयन फिर एक बार विस्फारित हुए। आंखों में कुहासा प्रवेश कर रहा था। फिर भी वे रानी अम्मा से विदा ले रहे थे——"विदा, विदा रानी अम्मा, विदा !"

वी.आई.पी. कमरे से बाहर निकलकर वह बिलकुल संतुष्ट नहीं था। एक लाश को मारने में क्या मजा? वह एक शोक-गीत सुनने के लिए कान खड़े किये, खड़ा रहा। वह गीत दूर से प्रवाहित होता आ रहा था——

कल मैंने अपनी आंखों से मृत्यु को देखा।
मेरी दादी कोई चीज ढूंढती, आंख में अंधेरा लिये
अस्सी वर्षों के बेकार कुहरे से निस्तेज बनी,
उभरी अस्थियों का पिंजर शरीर लिये
अत्यंत भीतिभाव से पड़ी सिसकती कराह रही थी।
उस की चारपाई के पास मैं उनींदी-सी बैठी थी।
तब आधी रात का घंटानाद
जलवितान पर गिरता शिला-खंड बना
और भय की तरंगें उठाते हुए

किसी दूरस्थ तीर से टकराने के बाद मुझमें फिर लहराया।
जीर्ण-शीर्ण वक्ष के भीतर प्राण फड़फड़ा रहे थे।
दादी शिथिल होती बांह पसारकर, मेरी सशक्त
दाहिनी भुजा को कसकर पकड़ रही थी,
तब भी अतल गहराई की ओर अंधाधुंध फिसल रही थी।
वह बेचारी हकलाती जीभ से "मैं क्या करूं?" कहती
मेरी जवानी से साथ देने की याचना करती है।
("मुसाफिर ! मैं क्या कर सकती हूं?
तुम्हारी यात्रा की सुगमता की कामना कर पाती हूं।")
हिचकते हुए मैंने कहा——"भगवान का नाम जपिए,
सारी दीनता अपने आप दूर होगी।"
बाढ़ के बहते जल में तिनका पहुंचाकर
मैं मौन रहती हूं।
रात के समय कुहरे की तरह रहस्यमय गहनता
दौड़ी आती है।
आंखों में भय उदित होता है।
धीरे से किसी दूसरी दुनिया की
शीतलता हथेली में बढ़ती है।
वह हथेली लिये कांपते होठों से
रामनाम जपने की कोशिश कर रही थी।
एकाएक मैंने देखा——
मैं अकेली नहीं हूं।
मैंने कल अपनी आंखों से मृत्यु को देखा——
वह सिर झुकाये पलंग की दूसरी तरफ बैठी थी।
लाल साड़ी लपेटे, लाल केश बिखराये
क्या दुख के कारण चेहरा झुकाया है?
"कौन हो तुम?" मेरे सूखे होंठ से नहीं!
वह सवाल, वह रुदन मेरी आत्मा के भीतर के भय से निकला था।
क्या उसने नहीं सुना? क्या वह सुन नहीं पाती?
हाथ बढ़ाकर मैंने उसे रोका। फिर भी देखा नहीं।
क्या वह देख नहीं पाती?
फिर चारों ओर छाया गाढ़ा-काला पर्दे-सा अंधेरा

सिसकने लगा।
तब वह चेहरा एक बार ऊपर की ओर उठा !
मैंने देखा। हाय ! वे थिर व लाल नयन तारों-से सूने हैं।
मैं चौंक गयी ! पहचान लिया मैंने
यह विधाता की प्रिय मानसपुत्री है।
इसकी गोद में मानव माता की छाती की तरह
सारी व्यथाओं को भूल सिर टेके सोता है।
इसके शीतल करों की शीतलता मिलने पर
महारोग, अपमान, भय, प्रेम की व्याधि,
मानव आत्मा की सैंकड़ों व्यथाएं और अभाव——
सब-के-सब दूर हो जाते हैं !

यह कन्या काल के प्रभात में
तात की सन्निधि में रोती पहुंची और बोली——
"नहीं, नहीं हो पाता मुझसे आपका दिया काम,
मैं वह नहीं कर पाऊंगी !" आंसू बहाती प्रार्थना करने लगी।
"पिता की गोद से प्रिय पुत्र को,
पति के हाथों से प्राण-प्रेयसी वधू को,
मां की छाती से बच्चे को,
सती के पवित्र आलिंगन से पति को
छीनकर खींचकर हटाती हूं तो
जो दुखदायी दृश्य नजर आते हैं
उन्हें देखने में असमर्थ हूं मैं।"
पिता ने कहा——"जाओ ! देवताओं द्वारा
तुम्हारे लिए निर्धारित यह महायत्न करना ही होगा तुम्हें।
मैं एक वर देता हूं——तुम्हें भाई-बंधुओं के
आंसू देखने नहीं पड़ेंगे,
तुम्हारे नयन आगे से कुछ देख नहीं पायेंगे।"
यों वह मृत्यु नित्यांध बनी। फिर से वह
संसार में प्राणों की फसल काटने चली।
और किसी दिन वह कन्या
ढूंढती टटोलती फिर से पिता की सन्निधि में

अश्रु बहाती आयी।
"मेरी बिटिया की आंखों में फिर से आंसू कैसे?"
"नहीं, नहीं, जब मैं पहुंचती हूं तब आर्तनाद उठता है।
लोग फफक-फफककर रोते हैं।
लोग मरने वाले का नाम पुकार-पुकारकर
दीन रुदन करते हैं।
वह सुनना मेरे लिए अत्यंत कठिन है।"
करुणा-भरी दृष्टि से पिता ने कहा——
"आगे से तुम न कुछ देखोगी, न सुनोगी।"
इसी तरह अंध और बधिर बन
वह कन्या चलती है सिर झुकाये,
तंबियाये केश बिखराये !
वह आंसू को नहीं देखती, रुदन को नहीं सुनती,
आकर चुपचाप साथ दूर ले जाती है।

अपलक नयनों से छाती की धड़कन पहचाने बिना
मैं शिला-सी स्तब्ध रही। तब
क्या मैंने भ्रांत दृष्टियों से देखा——
दादी का थका माथा धीरे से सहलाती,
आंखों को धीरे से संवारती बंद करती,
चौंकती छाती में अपने कर-स्पर्श से
भीतरी ताप बुझाती,
धीरे से दीपक की बुझती लौ को
खींचकर बुझाती-सी !
अत्यंत दया से, शांतिपर्वूक वह
कांपती सिहरती बेचारी दादी का
थका हाथ लिये मुड़कर चल रही है !
शायद पिता की सन्निधि में जाती हो !
आंखों से कुछ भी देखने में असमर्थ
रास्ता टटोलते वह कन्या जब चलती हैं
तब उसका हाथ थामे हुए घबरायी
मेरी दादी भी साथ ही परछाईं-सी दूर-दूर जाती है।

वह चल रहा था। चलते-चलते वह भूतकाल के नियोग के कारण लगातार घटी हुई मृत्युओं पर विचार करता रहा। अनादि व अनंत मरण। कोई मृत्यु को प्रत्यक्ष नहीं देखता। मां के मरने पर उसके बच्चे मौत की गंभीरता समझे बिना हंसते हैं। बंधु-जन लंबे अरसे से बीमार पड़े लोगों का शीघ्र मरण चाहते हैं। वह सब समझ चुका है। उसने असाध्य रोगियों को बोट में बैठकर ज्ञान-गंगा में डुबकी लगाते देखा है। कुछ लोग गंगा-तट पर लेटकर मृत्यु के आदेश का पालन करते हैं। किंतु उनसे उसकी कोई ममता नहीं रही। जो आदमी सामना करते हैं, जूझते हैं, उन्हें वह सम्मान की दृष्टि से देखता है। उन पर हाथ चलाने से वह डरता है। किसी के मर जाने पर आश्रित लोग 'तुम्हारा सर्वनाश हो गया' चीखते हुए बंधु-जनों को बहुत चौंकाते हैं, व्यथित करते हैं। उसने देखा है कि रात को बेवक्त मौत की खबर सुनने वाले मानसिक आघात का शिकार बनते हैं। यह देखकर वह मन-ही-मन हंसता है। दीपक के मंद प्रकाश में मृत्यु का समाचार सुनकर चौंक उठने वालों को देखकर वह खुश होता है। मृत्यु की सूचना की निष्ठुरता को समझाने वाले बालकों के निश्छल मन के सामने वह सिर नवाकर खड़ा रहता है। मां की मौत की खबर बच्चों के लिए क्या है? कुछ नहीं। एक खिलौना खो जाने की सहजता से वे उसका सामना करते हैं। पर वैसा दृश्य देखने से वह दुखी व व्यथित होता है। किंतु मृत्यु का रूप सुख-निद्रा की तरह शांत एवं मनोहारी है। उस सुंदर संकल्पना ने उसे प्रोत्साहन दिया। जीवन और जीवन के अंत के बीच की दरार दृष्टिगत नहीं होती। जब मृत शरीर को दरवाजे के बाहर ले चलते हैं और बंधु-जन श्मशान तक उसका अनुगमन करते हैं, तब दुख बंधु-जनों को तूफान की तरह हिला देता है। यह दृश्य मृत्यु को विचलित कर देता है। जब बंधु-जन यह स्मरण करते हैं कि श्मशान गये हुए लोग अब घर लौटकर घर के कामों में नहीं लगेंगे, तब वे पहले से अधिक शोकाकुल होते हैं। यह सचमुच खेद की बात है। किंतु छोटे, नन्हें-मुन्ने बड़भागी हैं। मृत्यु उनके मन पर कोई गहरी चोट नहीं करती। इस पर वह संतुष्ट है। शैशव जीवन की सहजता, कठोर मृत्यु के दुख का सामना अनायास करती है। मगर उम्र के बढ़ने पर मृत्यु-दुख का सामना करना उतना आसान नहीं होता। जब अप्रत्याशित रूप से मृत्यु आ घेरती है और प्रत्यक्ष जीवन के एक पक्ष पर अचानक दरार डालती है, तब आदमी हैरान हो जाता है। वह हैरानी मरण के लिए बड़ी मनोरंजक है। उस समय वह दूसरों से छुपकर तालियां बजाता, खिलखिलाता है। देह, प्राण, हृदय तन आदि का स्वामी मानव अपने को शाश्वत मानता है। वही एकाएक सपने की तरह झड़ जाता है। वह शेष बची हुई चीज और नष्ट वस्तु, दोनों में समझौता कराने की कोशिश करता है। जीवन की नली से उसे जो गहरा अंधेरा दिखाई पड़ता है, वह उसे दिन-रात आकर्षित करता है। घूमते-फिरते वह वहीं जाकर खड़ा होता है और इस अंधेरे की तरफ देखता है। वह सोचा करता है कि नष्ट वस्तु की जगह अब क्या रह गया है? मन से शून्यता पर विश्वास करना संभव

नहीं। जो नहीं है मिथ्या है। जो मिथ्या है वह अस्तित्वहीन है। अतएव वह ऐसी जगह पर कुछ देखने की चेष्टा करता है। वहां कुछ दिखाई नहीं देता। फिर भी वह यह प्रयास जारी रखेगा। अंधेरे में रोपा हुआ पौधा अंधेरे को सौंपकर किसी-न-किसी तरह प्रकाश में अपना सिर ऊपर उठाये रखना चाहता है। मृत्यु भी उसी तरह है। मनुष्य यह दुखद सत्य नहीं पहचानता कि जीवन में कोई अचूक शक्ति नहीं होती। यही सत्य उसे व्यग्र कर देता है। मानव व्यर्थ आशा करता है कि विश्वव्यापी सांसारिक भार का वह स्वयं नियंत्रण कर सकता है। इसीलिए मृत्यु बीच-बीच में उन पर आक्रमण कर देती है और उन्हें शाश्वत अंधकार में ढकेल देती है। मानव विराग के साथ प्रकृति की रमणीयता पहले से अधिक अनुभव कर सकता है। जब जीवन के प्रति मानव की अतिशय आसक्ति बढ़ती है तब वह उनके रास्ते में बंधन बनती है। मानव यह नहीं समझता कि जगत को संपूर्ण एवं सुंदर देखने के लिए जितनी दुष्टता चाहिए, मरण उतनी दुष्टता नहीं करता। उसे बड़ी देर तक रोने की इच्छा हुई। मानव नहीं सोचता कि मृत्यु-दुख से संसार का दुख कहीं अधिक होता है। उसे ये बातें लोगों को चिल्ला-चिल्लाकर सुनाने की इच्छा हुई...

वह मेडिकल वार्ड में पहुंचा।

हाउस-सर्जन, असिस्टेंट और आया मिलकर जॉन बलदेव मिर्जा को दूसरे बेड पर लिटा रहे थे। क्या वे चाहते हैं कि वर्षों से उन्हें कष्ट देने वाली यह बला टल जाये? कौन जाने? कर्तव्य पूरा करना है। धर्म में जो अस्पताल वाले विश्वास करते हैं—— या अपने मन की बात कुछ भी हो——कर्म को अधिक महत्व देते हैं। इसलिए वर्षों से वे जॉन बलदेव मिर्जा की सेवा करते हैं।

बलदेव मिर्जा बहुत कमजोर है। यह सबसे अच्छा मौका है। वह उसके बेड के पास जाकर खड़ा रहा। बेड के पास पके बालों वाली एक आया स्टूल पर बैठकर बाइबिल पढ़कर सुना रही थी। सुसमाचार के भक्तिपूर्ण वचन सुनते हुए बलदेव मिर्जा आनंद का अनुभव कर रहा था। वह शरीर की कमजोरी को भक्ति के द्वारा दूर कर रहा था।

आया भावपूर्ण होकर बाइबिल पढ़ने में लीन थी। होठों से ध्वनि निकल रही थी। वह क्षण भर झिझका। फिर उसने बलदेव मिर्जा की आंखों में देखा। इसकी आंखों में प्रकृति की सुंदरता से विराग अधिक दिखाई दिया।

नहीं, समय नहीं आया है !

वह मृत्यु-राज्य का झंडा हाथ में लिये शिला के बंदनवार वाले द्वार के छेद से बाहर निकला।

अगले दिन जॉन बलदेव मिर्जा के बिस्तर पर प्रभात की प्रथम किरणें फिर से बिखरीं।

अड़तीस

नर्सों के होस्टल के फाटक पर एक रिक्शा आकर रुका। काला बुर्का पहने एक औरत उससे उतरी।

"मेरी से मिलना चाहती हूं।"

बुर्के के भीतर से आयी आवाज सुनकर चौकीदार कुछ झिझका। यह आवाज कहीं सुनी हुई-सी लग रही थी। समय के साथ आवाज घिस गयी है। फिर भी उस आवाज का सोता सूखा नहीं था। वह कान खड़े करके खड़ा रहा, तो अतीत के जाले की दरार से फिर से आवाज आयी।

"क्या मेरी यहां है?"

चौकीदार ने कहा, "जी हां, है। कौन आया है? क्या बताऊं?"

चौकीदार की स्मृतियां लड़खड़ा रही थीं।

"इधर बुला लाना।"

"अंदर आइए। विजिटर्स रूम है।" क्षमायाचना-सा करता हुए चौकीदार बोला।

"नहीं, मैं यहीं खड़ी रहूंगी। मेरी से यहीं पर मिलना चाहती हूं।"

बगल में कागज का एक पुलिंदा लिये बुर्के में खड़ी औरत को देखकर मेरी ने पूछा, "कौन?"

"पहचाना नहीं?"

मेरी के मन में गिरजाघर की घंटी-सी बज उठी——आसमान से ईस्टर का गीत सुनाई पड़ा।

मेरी ने पूछा, "कौन? दीदी?"

"हां, मैं ही हूं, छुटकी!"

कुंजम्मा ने बुर्का ऊपर उठाया।

वे दोनों भीतर चल दीं।

कुंजम्मा होरिल बच्चे की तरह संसार को अचरज से देख रही थी। उसका छोटा-सा संसार, जहां कितनी ही रातें और दिन बिताये थे।

वही फाटक, वही चौकीदार। वही लान, वही बरामदा। वही विजिटर्स रूम!

कुंजम्मा मेरी के बिस्तर पर बैठ गयी। वर्षों जिस बेड पर वह सोयी थी उस बेड

पर अब कोई दूसरी बैठी थी। वह बाइबिल का संकीर्तन बड़े आनंदविभोर होकर गा रही थी। उसे अपने कमरे में दो व्यक्तियों के आने तक का पता नहीं चला।

कुंजम्मा ने बुर्का उठा दिया।

मेरी कुंजम्मा को सिर से पांव तक देख रही थी। सिर घुटा हुआ था। आंखों में अब वासना नहीं है। कुंजम्मा के विस्फारित नयन अब संसार को देख रहे थे। होठों पर न मुस्कुराहट है, न शरारती हंसी। चेहरा कुछ पीला पड़ गया है। शरीर बहुत कमजोर तो नहीं दिख रहा था, फिर भी कुछ दुबली हो गयी थी। हमेशा आगे की ओर उछलती छातियां अब कुछ दबी हुई थीं।

मेरी ने पूछा, "क्या जेल में बड़ी तकलीफ हुई?"

कुंजम्मा ने बगल का कागज का पुलिंदा बेड पर रखकर कहा, "कोई तकलीफ नहीं थी।"

"यह क्या है?" पुलिंदे को छूकर मेरी ने पूछा।

"आत्मकथा। जेल में मैं इसी से समय बिताती रही।"

"पूरी कर ली?"

"नहीं, पूरी नहीं हुई।"

"इतने समय के बाद भी...?" मेरी ने अचरज से पूछा।

"जिंदगी अभी शेष है न? अदाएं बदलनी हैं।"

"दीदी! जाकर नहा लो। हम कुछ नाश्ता करें।"

"नहाने की कोई जरूरत नहीं। आदी हो गयी हूं। आगे भी वही क्रम रहेगा।"

मेरी ने झट से पूछा, "दीदी, तुम्हें यहां से गये कितने वर्ष हुए?"

"मैं समय की बात पर विश्वास नहीं करती। हिसाब लगाना भी मैं भूल चुकी हूं," कुंजम्मा ने कहा, "जीवन का एक क्षण गुजर चुका और एक क्षण अभी बाकी है।" बातों के बीच मेरी कुछ देर कुंजम्मा की तरफ देखती रही।

कुंजम्मा बोली, "सबसे पहले मुझे मैट्रन से मिलना है।"

मैट्रन के कमरे में पहुंचने पर कुंजम्मा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। नयी मैट्रन एक नाटी औरत थी——झींगुर की तरह बोलती मिसेस जोसफ।

मिसेस जोसफ ने पूछा, "तुम आ गयीं? सजा पूरी हो गयी?"

वह कमरा एकदम बदल गया था। पुरानी शान या ठाट-बाट नहीं था। कमरा पुराना गोदाम-सा दिखाई दिया।

"कुंजम्मा... एक खुशखबरी है——कालेज की समिति ने तुम्हें फिर से नौकरी पर बहाल करने का निश्चय किया है। उसने तुम्हें माफ कर दिया है। बधाइयां!" मिसेस जोसफ बड़ा उपहार भेंट करती-सी बोली।

परंतु कुंजम्मा के चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई दी। वह गहरे चिंतन में डूबी थी।

मिसेस जोसफ ने पूछा,——"क्या सोच रही हो?"

मिसेस जोसफ जोर से हंसी—उपहास और विद्वेष की हंसी।

"वह बहुत खेलती रही। कुंजम्मा! उसका भ्रम था कि खूबसूरत बदन से बहुत कुछ पा सकेगी। उसने अपनी जिंदगी के दाव पर जुआ खेला। शुरू-शुरू में वह विजय पाती गयी। कई गिद्ध उस शरीर पर चोंच मारने आते रहे। वह बारंबार दावा करती रही कि मेरी ये आंखें दुनिया भर को गुलाम बना सकती हैं। वह हमेशा कहा करती थी——मेरी आंखों में पूरा संसार छाया है। अंत में वे नयन मरी हुई मछली की आंख-से हो गये।

शुरू-शुरू में वह शराब पीती थी। बाद में नशीली दवाएं लेने लगी। वह पेथिडीन की गुलाम हो गयी। अस्पताल का प्रशासन एकदम गड़बड़ा गया। ब्रिगेडियर ने शीघ्र ही कार्रवाई की। एक दिन उन्होंने हेलन सिंह की छुट्टी कर दी।

वह यहां से लड़खड़ाते पैरों से बाहर निकली थी। सुना है कि अब किसी कानवेंट में अंतःवासी बनी रहती है।

हद पार करने पर तो यही नतीजा होगा। खासकर शरीर का खेल। देखो! मेरा यह बदन सूखी लकड़ी-सा है। कोई मर्द मेरी तरफ आंख उठाकर नहीं देखता। फिर भी मैं सब कुछ हासिल कर सकी। मेरी पूंजी है——ईमानदारी और कड़ी मेहनत।

अच्छा, कब ज्वाइन करोगी? यहां स्टाफ की कमी है।

"बताऊंगी मैडम, अभी चलूं!"

बाहर निकलने पर कुंजम्मा ने कहा, "कालेज और अस्पताल जाना चाहिए। मैं सबसे मिलूंगी।"

चौकीदार प्यारेलाल कुंजम्मा को पहचान नहीं सका। फिर भी वह हंसा। उस हंसी में घनिष्ठता नहीं महसूस हुई, तो कुंजम्मा ने कहा, "मुझे पहचाना नहीं, प्यारेलाल? मैं तुम्हारी सिस्टर कुंजम्मा।"

प्यारेलाल विस्फारित नेत्रों से कुंजम्मा की तरफ देखकर कुछ कहने लगा कि कुंजम्मा आगे निकल गयी।

वे पहले एनाटमी विभाग में पहुंचीं। कडावर टंकी में लाशें तैर रही थीं। सोना और साथी नदी से लट्ठे उठाने की तरह लाशों को हटा रहे थे। फार्मलिन की गंध फैल रही थी। नथुनों में धुआं उठ रहा था।

डा. कुमार 'ग्रेज्स एनाटमी' शीर्षक की पुस्तक के सामने प्रणाम की मुद्रा में बैठे थे। उनके केश पहले से अधिक श्वेत थे। चेहरा खुश था। उस कमरे के कोने में डा. हसन का अस्थि-कंकाल! आंखों के कटोरों में गंधक की ज्योति दिखाई दे रही थी।

वे गलियारे में आ गयीं। रोगियों के बहाव की उलटी दिशा में चलने लगीं। श्री आचारी का कमरा खाली पड़ा था। एक अशरीरी की वाणी की तरह उसके भीतर से गजलें सुनाई दे रही थीं। आचारी की जगह नया डाक्टर अभी नहीं आया था। ब्रिगेडियर आचारी जैसे कुशल डाक्टर की तलाश में थे।

गर्भिणियों की चीख-पुकार और उसके बीच डा. तनूजा की मीठी आवाज में सांत्वना के शब्द कुंजम्मा को सुनाई दिये।

सिर्फ डा. ख्वाजा की आवाज सुनाई नहीं दी।

"क्या हुआ उन्हें?" कुंजम्मा ने पूछा।

"वे वापस लंदन चले गये। वे ब्रिगेडियर से समझौता कर नहीं सके। सुना है कि लौटेंगे नहीं। ब्रिगेडियर ने उन्हें विदा करके मेडिको छात्रों को भारी नुकसान पहुंचाया है। कुछ मेडिको छात्रों ने अनशन तक किया, लेकिन डा. ख्वाजा भारत छोड़ गये।"

"अच्छा, हम चलें।" कुंजम्मा का जी मानो मर गया।

वे फाटक पार करके मुख्य मार्ग लांघकर, पश्चिमी दिशा में सड़क से चलने लगीं।

"आओ! हम होस्टल चलें," मेरी ने निमंत्रण दिया।

"नहीं, छुटकी! नहीं! सब देख लिया। अब मेरे पास यहां के लिए फुरसत नहीं। मेरी गाड़ी का वक्त हो गया है। मैं चलूं?"

मेरी अचरज से ताकती रही, तो कुंजम्मा ने कहा, "मैं बदरीनाथ जा रही हूं। शेष जीवन वहां बीतेगा। वहां मैं अपनी शेष आत्मकथा पूरी करूंगी। अगले क्षण की आत्मकथा।"

"मैं भी चलती हूं।"

"कहां? बदरीनाथ?"

"नहीं, रेलवे स्टेशन!"

"अच्छा!"

रेलवे स्टेशन पर भीड़ कम थी। गाड़ी आने में अभी वक्त था। उस बीच मेरी देवदास और लक्ष्मी की कहानी सुना रही थी। सुनकर कुंजम्मा की आंखें छलछला आयीं।

लंबी सिसकी-सी सीटी बजाती रेलगाड़ी आकर प्लेटफार्म पर रुक गयी। निश्चित को अनिश्चित में बदलती हुई रेलगाड़ी आगे बढ़ गयी।

मेरी कुंजम्मा के हिलते हाथों को आंखों से ओझल होने तक देखती रही। आखिर रेलगाड़ी एक काले टीके की तरह आंखों से ओझल हो गयी।

मेरी का मन सिसक उठा।

संध्या हो रही थी।

स्टेशन शांत था।

मेरी बाहर निकली।

अस्पताल-परिसर पहुंची तो मन होस्टल की ओर जाने का इच्छुक नहीं था।

मेरी कार्डियालाजी के सामने से मार्चरी को लांघने की कोशिश कर रही थी कि मार्चरी के सामने छोटी-सी भीड़ दिखायी दी। उसने सुना कि मार्चरी में एक लाश हिल रही है, जैसे कि उसमें जान लौट रही हो। लोग उस चमत्कार को कुतूहल से देख रहे थे।

"आश्चर्य है कि बच गया। पैदल यात्री ने अगर देखा न होता तो जान चली जाती।"

"खुशकिस्मती कहिए।"

"पुनर्जन्म की बात है।।"

लोग फुसफुसा रहे थे। मार्चरी के पीछे की सीढ़ियों से उतरकर मेरी जमुना-तट पर पहुंची।

रेत पर चलते-चलते मेरी के पांव राख में अटक गये। वह श्री आचारी की चिता के अवशेष थे। आचारी के भौतिक शरीर का शेष चिह्न। अगर इस स्थान पर आचारीजी की दाह-क्रिया संपन्न हुई होती, तो मेरी के पांव झुलस जाते। उस सबसे अनजान मेरी उस अवशेष को दोनों पैरों से बारी-बारी से ठेलती रही।

तलुओं पर लगी मिट्टी रेत में साफ करते हुए वह आगे की ओर बढ़ गयी।

ठंडी बयार बह रही थी। नदी में अंधेरा छाया था। एक छोटा-सा टिमटिमाता जहाज लंगर डाले खड़ा था। जहाज का मंद प्रकाश जलराशि में प्रतिबिंबित था। दूर छोटी-छोटी नावों में टिमटिमाती लालटेनें जुगनू-सी लग रही थीं।

मेरी ने नदी की तरफ गौर से देखा। उसके होंठ कांप उठे। वह धीरे-धीरे पानी के पास पहुंची। पतली-सी झाग-भरी लहरें मेरी के चरणों से लुका-छिपी खेलती रहीं।

मेरी ने नदी को संबोधन करके कोई बात धीमी आवाज में कही। वह नदी-जल में और आगे बढ़ी। उसका स्पर्श करने झुकी। हथेलियों में जल लेकर अपने चेहरे पर छिड़का। उसकी देह सिहर उठी। फिर दायीं हथेली में पानी लेकर पिया।

अंधेरा छा रहा था। काले बादल नदी को छूते-से लग रहे थे। पानी के जीव सिमट रहे थे।

मेरी फिर किनारे पहुंची। वह रेत पर चलने लगी।

मेरी उस रेत पर बैठी जिस पर कुंजम्मा ने बच्चे को जन्म दिया था। नदी की हवा कुंजम्मा की गंध वहन करती बह चली।

मेरी ने उस समय एक नवजात शिशु का रुदन सुना। वह रुदन एकदम पास से सुनाई दे रहा था। हलके अंधेरे में मेरी टटोलने लगी। उसका हाथ एकाएक गुनगुने, नन्हें, कोमल शरीर पर पड़ा।

हां, एक नवजात शिशु ही था। मेरी ने पूरे भावावेश और वात्सल्य से उस बच्चे को उठाकर अपनी गोद में ले लिया।

नदी की तरफ दृष्टि करके बैठी मेरी ने अपनी अंगिया खोली। सुंदर गुलाबी स्तनों पर जल से भीगी हवा लगी, तो वे और थोड़े बड़े हुए।

मेरी ने शिशु को छाती से लगाकर उसके मुंह के भीतर स्तन रख दिया। बच्चे को दूध पिलाने लगी तो मेरी के होंठ चकित, नन्हीं आंखों की तरफ झुक गये।

यमुना नदी वह दृश्य देखकर उसांस लेकर झूम उठी।

मुद्रक : भारत मुद्रणालय, 1/11835, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032